Scanned with CamScanner

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री पीताम्बरजी कृत

श्री विचार चन्द्रोदय

Scanned with CamScanner

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री पीताम्बरजी कृत

श्री विचार चन्द्रोदय

व्याख्याकार

योगी पूर्णनाथ

Scanned with CamScanner

निवेदन

पूज्यपाद परम आदरणीय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री पीताम्बर जी कृत **'विचार चन्द्रोदय'** वेदांत शास्त्र की प्रथम पोथी-रूप होने से सभी आचार्यगण, संन्यासी-महात्मा एवं विद्वज्जन, मुमुक्षुजनों को इस ग्रन्थ की प्रश्नोत्तर-रूप व्याख्या सहित पाठन-श्रवण कराते हैं। मूल-ग्रन्थ की भाषा प्राचीन होने से वर्तमान साधकों की बुद्धि में सुगमता से ग्राह्य होने में कठिनाई होती है, ऐसा अनेक संतजनों एवं जिज्ञासुओं के अनुभव में आया है। किन्तु फिर भी ऐसा उपयोगी अन्य ग्रन्थ देखने में नहीं आया। इस हेतु वर्तमान प्रयास किया गया है।

मूल-ग्रन्थ के प्रश्नोत्तर की प्रक्रिया, प्रश्नोत्तर अंक एवं टिप्पणी आदि सभी को प्राय: ज्यों का त्यों रखा गया है। छपाई की अशुद्धियों को दूर कर, प्राचीन-भाषा को आंधुनिक बोल-चाल की भाषा में लिखा गया है। कुछ स्वतन्त्र टिप्पणों, लेखों व पदों का भी कई स्थानों पर, उनकी उपयोगिता को ध्यान में रखते हुए, मुमुक्षु जनों के हितार्थ समावेश किया गया है। मूल-ग्रन्थ के भाव कहीं भी भंग न हों, इसकी सतर्कतापूर्वक चेष्टा की गई है। मूल कला के छन्दों के नीचे ही उनका सरल शब्दार्थ भाषा में लिखा गया है, जिससे कि साधकगण कला के भावों को सुगमतापूर्वक हृदयंगम कर सकें।

ग्रन्थ का कलेवर सीमित रखने की दृष्टि से इस आवृत्ति में श्रीश्रुतिषट्लिंग संग्रह को नहीं रखा गया है व पू. पं. पीताम्बर जी के जीवन-चरित्र एवं ग्रन्थ की अनेक प्रस्तावनाओं में से कुछ चुने हुए उद्धरण देकर ही संतोष कर लिया गया है। साधकों को इनका पूरा विवरण मूल ग्रन्थ में देखना चाहिए।

इस पुस्तक में जो कुछ भी भाव आदि हैं, वे सब गुरुओं के प्रसाद एवं ईश्वर और संतों की कृपा के फल ही हैं। मैंने तो कुछ युक्ति ही अपनी ओर

Scanned with CamScanner

से पुरूषार्थ रूप से संजोई है। अत: जो भी त्रुटियां आदिरह गई हैं, वे सब मेरी ही अल्प बुद्धि-दोष जन्य हैं। कृपालु साधक-गण उसके लिए क्षमा करेंगे।

यदि इस प्रयास से जिज्ञासुओं की निज आत्माभिन्न ब्रह्मदर्शन करने की ओर किंचित् भी प्रवृत्ति होती है, तो मैं अपने आपको कृत-कृत्य मानूंगा। सभी कृपालु आचार्यों, महात्माओं, पंडित, विद्वानों एवम् जिज्ञासुओं से करबद्ध नम्र निवेदन है कि इस ग्रन्थ में जो भी त्रुटियां रह गईहों, अथवा अन्य कोई साधक उपयोगीसुझाव सामग्री उनके ध्यान में हो, उन सभी को नि:संकोच लिख कर भिजवाने की कृपा करें ताकि ईश्वर इच्छा से, जब दूसरी आवृत्ति छपवाने का समय आवे, तब पुस्तक की उपादेयता में विकास हो सके और जन साधारण का कल्याण हो सके।

प्रस्तुत पुस्तक लिखने की प्रेरणा समय-समय पर विभिन्न स्थानों पर अनेक सत्संगी जिज्ञासुओं एवं संतजनों से मिलती रही है, परन्तु इस वर्ष जोधपुर में सरदारपुरा स्थित मीराबाई के सत्संग-भवन में चातुर्मास अवधि में ही इसने साकार रूप लिया। इस प्रयास में अनेक प्रेमी भगवद्भक्तों का संकलन, भाषा रखना तथा छपाई के लिए कागज की उपलब्धि से लेकर मुद्रण पर्यन्त: और स्वास्थ्य की देख-रेख व सेवा-सुश्रुषा का अत्यधिक सहयोग मिला।

इन सभी ज्ञात-अज्ञात प्रेमियों व साधक मुमुक्षुओं को ही यह कृति सप्रेम समर्पित है।

परम पिता परमात्मा इन सभी के अन्त:करण को, सर्व मल, विक्षेप व आवरण दोषों से निवृत्त कर निर्मलता प्रदान करें एवं वे आत्मानन्द का रसास्वादन करें। यही मेरी हार्दिक प्रार्थना है।

सर्वे भवन्तु सुखिन: सर्वे सन्तु निरामया:।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दु:ख भाग्भवेत्॥

ॐ शान्ति: शान्ति: शान्ति:।

योगी पूर्णनाथ

Scanned with CamScanner

प्राक्कथन

ॐ श्री औपनिषद् पुरूषाय नमः॥

आदिनाथ शिवारम्भां शिवगोरक्ष मध्यमाम्।
अस्मद् सद्गुरु पर्यन्तां वन्दे गुरु परम्पराम्॥
विद्या वेदान्त तत्त्वज्ञं सर्वतन्त्र स्वतन्त्रकम्।
ब्रह्मनिष्ठं तमाचार्यं वन्दे सोमगुरुं सदा॥

यह चराचर विश्व जिसमें कल्पित है उस कल्पना के अधिष्ठान ब्रह्म तत्त्व को ही अनेक शास्त्रों में 'शिव' कहा गया है। यथा - ''बोधे-बोधे भासते चन्द्रचूडः।'' ब्रह्माकार वृत्ति से आवरण भंग हो जाने के उपरान्त जो शेष रह जाता है, वह मनवाणी का अविषय ही चन्द्रचूड़ का शुद्धत्तम स्वरूप है। तहाँ श्रुति -

''प्रपञ्चोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यते स आत्मा स विज्ञेयः।''

उसी आत्म स्वरूप का बोध कराने के लिये अपनी माया शक्ति से परब्रह्म परमात्मा अनेक उपाधियों में प्रकट होते से प्रतीत हो जाते हैं। कभी 'योग ज्ञान प्रवर्त्तकम्'। योग=रास्ता, ज्ञान=गन्तव्य बताने वाले आद्याचार्य जगद्गुरू श्री गोरक्ष के रूप में और कभी ''औपनिषद् विद्या प्रवर्त्तकम्'' आचार्य शंकर के रूप में।

मूलतः यह ज्ञान गंगा शिव से ही प्रारम्भ होती है और शिव में ही इसका पर्यवसान होता है। जैसे एक ही समुद्र नाना तरंगों के रूप में उद्वेलित होता रहता है और तरंगे सागर में ही समाती रहती है। वैसे ही गुरु व शिष्यों के सभी रूपों को धारण करने वाले वास्तव में एक शिव ही हैं। अस्तु! सुना जाता है कि शिव ने ब्रह्म विद्या स्वरूपा अपने से अभिन्न जगज्जननी पार्वती (भगवती उमा) को निमित्त बना कर क्षीर सागर तट पर उपदेश देना प्रारम्भ किया। एक मछली तट के समीप स्थिर हुई, उसके गर्भस्थ शिशु ने उस गम्भीर ज्ञान को अक्षरशः सुनकर हृदयंगम

Scanned with CamScanner

कर लिया। सम्भवत: वह मत्स्य अवतार भगवान विष्णु ही हो। शिवाज्ञा से वह योगी श्री मत्स्येन्द्र नाथ जी के रूप में प्रकट हो गये। आगे साक्षात् शिव ने ही आचार्य जगद्गुरु श्री गोरक्षनाथ जी महाराज का अवतार लेकर शिष्य रूप से पुन: उसी ज्ञान को ग्रहण कर अनेकानेक शिष्यों को दिया, उन्हीं विशिष्ट शिष्यों में से एक राजयोगी भर्तृहरि जी हुए, जो सिद्ध श्री विचारनाथ जी नाम से जाने जाते है। भर्तृहरि और गोपी चन्द ये दोनों नाथ (मामा भानजा) राजा होने के कारण पूर्व नामों से ही प्रसिद्ध हुए। इस गोरक्ष भगवान् द्वारा स्थापित नाथ सम्प्रदाय में भर्तृहरि जी के शिष्य ''भर्तृवैरागी'' कहलाते हैं। हमारे गुरूजनों की गुरु परम्परा यही है। प्रसंग वशात् यह भी समझ लेना चाहिये कि वास्तव में महापुरूषों की कोई सम्प्रदाय नहीं होती। ''ब्रह्मरूप अहि ब्रह्मवित्''। ''ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति'' -महापुरूष केवल ब्रह्म ही होते हैं। अत: वे सम्प्रदायातीत, आश्रमातीत होते हैं। व्यवहारिक दृष्टि से सम्=अच्छी प्रकार से, दाय=प्राप्त-यानि अविच्छिन्न परम्परा से प्राप्त ज्ञान को ही सम्प्रदाय कहते हैं।

नाथ सम्प्रदाय में गुरूजनों को प्रणाम करते समय आदेश-आदेश-आदेश ऐसे बोला जाता है। 'शत्रुवदादेश:'' आदेश शत्रुवत् होता है - जीव भाव को नष्ट करके शिवभाव की स्थापना करता है। यह वही आदेश है जो 'श्वेतकेतु' के पिता ने श्वेतकेतु से पूछा था - कि क्या तुमने गुरु से वह ''आदेश'' समझ लिया है ? जिस एक के जानने से सबकुछ जाना हुआ हो जाता है। ''तमादेशमप्राक्ष्य:''॥१.६.२॥ येनाश्रुतं श्रुतं भवत्यमतं मतम् अविज्ञातं विज्ञातमिति॥३॥ छान्दोग्य॥ फिर स्वयं पिता ने ही पुत्र के पूछने - 'कथं नु भगव: स आदेशो भवतीति॥३॥, पर इस ''आदेश'' यानि ब्रह्मतत्त्व का उपदेश दिया। साथ ही ''आदेश'' बोलने से गुरु की स्तुति भी हो जाती है। वैसे ही आपस में सत्संगी लोग बोलते हैं - 'जय श्री नाथ जी की'। नाथ कहते हैं अधिष्ठान को (स्वामी को) जिसके आश्रित यह विश्वप्रपञ्च भास रहा है। 'जय' शब्द के उपसर्ग लगकर

Scanned with CamScanner

बनता है 'विजयते' - जिसका अर्थ होता है व्यापकता। तो सर्वत्र वे नाथ ही व्यापक हो रहे हैं। नाथ कहो विश्वनाथ कहो, शिव कहो, ब्रह्म कहो - बस सर्वत्र वही है। जिस अपने शुद्ध स्वरूप का आदि में शिव ने उमा को उपदेश दिया था।

इसी परम्परा में श्री चिड़िया नाथ जी महाराज बड़े सिद्ध पुरूष हुए। आगे श्री बनानाथ जी महाराज हुए, जिनकी 'वाणी कल्याणी जाहिर जाणी' - पूरे राजस्थान में प्रसिद्ध है। 'अविद्या की हाणी' यानि दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा ''परम कल्याणी'' - परमानन्द की प्राप्ति कराने वाली। आपके शिष्य श्री नवलनाथ जी महाराज महायोगेश्वर हुए, जिनका तेज सूर्यवत् था।

'नवहुं नाथ के तेज युत नवलनाथ अति नूर।
करत शिष्य यूं विनती सिद्धन के कुल सूर॥'

आपने साधकों के साधना स्थल रूप में जोधपुर व बीकानेर दोनों जगह मठों की स्थापना की। आपके शिष्य ब्रह्मविद् वरीयान् तपस्या के मूर्तिमान स्वरूप श्री उत्तमनाथ जी महाराज हुए, जिन्होंने अपने उपदेशों से अनेकों जीवों के अन्त:करण को परिवर्तित कर परमेश्वर की आराधना के योग्य बना दिया, तथा वेदान्त की नींव को अति दृढ़ किया। प्रवचन के प्रारम्भ एवम् समापन में आप बोलते थे - दु:खी मत। दु:खाई मत। रोई मत, रूलाई मत। यानि आनन्दघन तेरा स्वरूप है दु:खी होकर रोना नहीं, और सर्वत्र तेरा ही स्वरूप है, तेरे से भिन्न कुछ भी नहीं है, अत: अन्य जानकर किसी को रूलाना मत, दु:खाना मत। आपके दो विचित्र प्रतिभाशाली शिष्य हुए, मानो साधन चतुष्टय में से, आपके तपोबल के प्रभाव से साक्षात् विवेक-वैराग्य ही मूर्त रूप में प्रकट होकर आपकी सेवा में उपस्थित हुए हों। श्री विवेकनाथ जी महाराज द्वारा भगवती भागीरथी की पावन रेणुका में दिये गये प्रवचनों की अमिट छाप ने ही प्रकृत ग्रन्थ के व्याख्याता का हृदय झकझोर दिया। उन्हीं के शब्दों में -

Scanned with CamScanner

ज्ञान महोदधि व्यासपिता, अवतार रहे बहुधा समझाये।
छानि त्रिवेदन काढि सुधा, श्रुति सम्मत निश्चित राह दिखाये॥
आग विराम जली तन में, सुकदेव हि उत्तर एक न भाये।
''पूरणनाथ'' अड्यो जिमि अंगद, रावन कोटि डिगो न डिगाये॥

तृणवत् संसार को त्यागकर 'पुण्यापुण्य विवर्जित पन्थं' पर चल पड़े और अपना लक्ष्य पूर्ण किया। अत: श्री वैराग्यनाथ जी महाराज ने संन्यास देकर सम्बोधन में नाथ से पहले पूर्ण लगा दिया, मानो पूर्णता का समर्थन कर दिया। जब जोधपुर मठ का कार्यभार सम्भालने की आवश्यकता हुई, वास्तव में मठों का कार्यभार क्या है ? गुरूजनों के ज्ञान को शिष्य परम्परा के द्वारा अक्षुण्ण रखना, उसकी धारा टूटने नहीं देना ही है। यह तभी सम्भव है जब आगे से आगे अध्ययन अध्यापन होता रहे। ''वेदो नित्यमधीयताम्'' वेद वेदान्त का नित्य स्वाध्याय करते कराते रहने से ही ग्रन्थों की सुरक्षा होती है। वैसे भौतिक दृष्टि से पुस्तकाकार रूप में भी ग्रन्थों की रक्षा करने का अर्थ साथ ही समझ लेना चाहिये। आज प्राचीन वेदान्त के ग्रन्थ दुर्लभ प्राय: हो रहे है। कई ग्रन्थ तो सर्वथा मिलते ही नहीं है। यदि एकाध प्रति मिल जाये तो कम से कम उसका भाचित्र तो बनवा लेवें। अत: मठों (आश्रमों) में ग्रन्थ सुरक्षित रहने चाहिये। यह सब व्यवस्था, सुरक्षा, मठों में कोई विशिष्ट पुरूष ही कर सकता है पूर्ण दृढ अपरोक्ष ब्रह्म निष्ठा के साथ साथ गुरु चरणों में अपार श्रद्धा की भी अति आवश्यकता है। अत: यह मठ का उत्तराधिकार रूप दायित्व गुरुजनों की आज्ञा व योगी श्री निरञ्जन नाथ जी महाराज, श्री पूर्णनाथ जी महाराज आदिक गुरुभाइयों के स्नेह बन्धन में बन्धकर हमारे परम पूज्य सद्गुरुदेव श्री सोमनाथ जी महाराज जो श्री विवेकनाथ जी बाप जी के वरिष्ठ शिष्यों में से एक थे, आपने वहन किया।

धिन 'सोम' भाग जागे, विवेक वैराग सागे, पागे
प्रेम पीयूष सो दिवस सुहावणो।

Scanned with CamScanner

योगी श्री पूर्णनाथ जी महाराज ने इस - ''विचार चन्द्रोदय'' नामा ग्रन्थ की व्याख्या करके सभी जिज्ञासुओं पर अपार कृपा करी है। वास्तव में महापुरूष करूणा सिन्धु होते ही है। कहा भी गया है -

गुरु जी करी अति दाया ए, अपनो बिरद
सम्भाल के मोहे चरणों में लाया ए।

ग्रन्थों में जैसे अनुबन्ध चतुष्टय जानने अनिवार्य होते हैं, वैसे ही ग्रन्थ के व्याख्याता को जानना भी अनिवार्य होता है।

उदाहरण – जैसे स्वामी श्री विद्यारण्य मुनि रचित पंचदशी पर अब तक लिखी गई टीकाओं में पीताम्बरी टीका ही सर्वोपरि एवं सभी विद्वानों को मान्य है।

यह बात इसलिये कही है कि हमने एक जगह देखा था - एक महात्मा ने यही ''विचार चन्द्रोदय'' छपाया है और व्याख्याता 'योगी पूर्णनाथ' की जगह अपना नाम देकर इसी को अक्षरश: छपा दिया। अत:

Scanned with CamScanner

मूल ग्रन्थ की प्रस्तावनाओं से संकलित कुछ उद्धरण

तावद्गर्जन्ति शास्त्राणि जम्बुका विपिने यथा।
न गर्जति महाशक्तिर्यावद्वेदान्त केसरी।

श्री वेदान्त सिद्धान्त सर्वमत शिरोमणि है। मंदमति, परम आस्तिक, शुद्ध चित्तयुक्त अधिकारी के हितार्थ सरल, श्रेष्ठ और अल्प वेदान्त प्रक्रिया का कोई विख्यात ग्रन्थ नहीं होने से **विचार चन्द्रोदय** नामक वेदान्त प्रक्रिया के प्रश्नोत्तर रूप ग्रन्थ की रचना की गई। इसमें सोलह प्रकरण हैं उनका **'कला'** नाम रखा गया है।प्रत्येक कला में मुमुक्षु को **ब्रह्म** साक्षात्कार में निश्चित् रूप से उपयोगी, एक एक विलक्षण प्रक्रिया संक्षेप से वर्णन की गई है। सोलहवीं कला के पश्चात् **'लघु वेदान्त कोश'** दिया गया है। जिसकी धारणा अन्य महाग्रन्थों के श्रवण में बहुत उपयोगी रहेगी। इस ग्रन्थ को श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु मुख से श्रद्धापूर्वक पढ़ने अथवा श्रवण करने के उपरान्त, अर्थ सहित सिद्धान्त के रहस्य को बुद्धि में धारण करने से, मुमुक्षु के चित्त-रूप आकाश में ज्ञान-रूप युवा अवस्था को धारण करने वाला विचार-रूप चन्द्रमा अवश्यमेव उदय होकर, संशय और विपरीत भावना सहित, अज्ञान-रूप अन्धकार को दूर करेगा। इसलिए इस ग्रन्थ का नाम 'विचार चन्द्रोदय' रखा गया है।

'एक परमात्म-तत्व बिना जो कुछ प्रतीत होता है सो सर्व माया कृत भ्रांति से ही प्रतीत होता है', ऐसा प्रतिपादन करने का वेद का अभिप्राय, जगद्गुरू श्री मच्छंकराचार्य भगवान् ने उपनिषदों के भाष्य में सिद्ध किया है। सद्गुरु के मुख से श्रवण करने से ही वेदान्त विद्या की महत्ता का भान होता है।

जन साधारण मनुष्य बालपन से ही जगत् के पदार्थो को क्षणिक और नाशवान देखते हुए भी, यथार्थ ज्ञान के अभाव में, उनमें सत्यता की बुद्धि को धारण करके सुख की मिथ्या आशा रखते हैं और कई पुरुष तो जगत् के पदार्थो को ही सत्य मानते हैं, इनके अतिरिक्त कुछ भी सत्य नहीं मानते। इस प्रकार मनुष्य-मात्र माया से संशय व शंका-रूप कंटक

Scanned with CamScanner

से ग्रसित, भ्रांत व पीड़ित हैं। फिर भी क्वचित् कोई ही, 'मैं कौन हूं?' 'जगत् क्या है?' 'मेरा और जगत् का अवसान क्या है?' ऐसे प्रश्नों से प्रेरित होकर मुक्ति के लिए उत्कंठित होते हैं। 'श्रीमद्भागवत्' की सप्ताह पारायण असंख्य जन श्रवण करते हैं, किन्तु राजा परीक्षितवत्, निश्चित मरण-भय के अभाव में, महामुनि श्री शुकदेव जी का उपदेश हर किसी को मोक्ष-प्रदत्त नहीं होता।

अत: श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ महात्मा के मुख से ही विधिवत् इस ग्रन्थ का श्रवण कर, उनके सामीप्य में अभ्यास करना चाहिए।

'वेद उदधि बिन गुरु लखै, लागै लोन समान।
बादर गुरुमुख द्वार है, अमृत सैं अधिकान॥

विधि पूर्वक इस ग्रन्थ का अध्ययन, मनन करने के उपरान्त 'विचार'-सागर' एवं 'पंचदशी' ग्रन्थों का अध्ययन, मनन और निरन्तर अभ्यास की पुनरावृत्ति करने से नि:सन्देह ब्रह्मविद्या में कुशलता प्राप्त होती है। ब्रह्मनिष्ठ होना असंभव तो नहीं लेकिन अत्यन्त विकट जरुर है, क्योंकि उसके लिए तो जगत् में सत्यता की बुद्धि का बाध कर निज शुद्ध निर्विकार ब्रह्मस्वरूप में दृढ़ स्थिति करनी होती है, क्षणमात्र के लिए भी हिलना नहीं चाहिए, तभी संभव है, इसीलिए भगवान ने कहा है :-

मनुष्याणां सहस्रेषु कश्चिद्यतति सिद्धये।
यततामपि सिद्धानां कश्चिमां वेत्ति तत्त्वत:

(गीता अ.७-(३))

उपरोक्त अभ्यास की पूर्णता होने पर भगवान् श्री मच्छंकराचार्य कृत 'उपनिषद् भाष्य', 'सूत्र भाष्य', 'गीता भाष्य' आदि के अवलोकन से आनन्द सहित ब्रह्मनिष्ठा की दृढ़ता में अधिकता होगी। इस प्रकार दीर्घकालीन निरन्तर अभ्यास से ही वास्तविक लाभ होगा। ब्रह्मज्ञान के लिए बहुत सारे ग्रन्थ पढ़ना अनिवार्य नहीं। उत्तम अधिकारी इस ग्रन्थ के बाद मात्र एक 'विचार सागर' अथवा 'पंचदशी' श्रद्धापूर्वक गुरु द्वारा अध्ययन, श्रवण कर नियमित विचार पूर्वक अभ्यास करें तो भी ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति अवश्य होती है।

Scanned with CamScanner

* श्री विचार चन्द्रोदयः *

॥ अथ प्रथम कला ॥१॥

उपोद्घात[1]

॥ मनहर[2] छन्द॥

पुरुष इच्छा विषय पुरुषार्थ जोई सोई।
दुःख नाश सुख प्राप्ति रूप मोक्ष मानहु॥
हेतु ताको ब्रह्मज्ञान सो परोक्ष अपरोक्ष।
तामें अपरोक्ष दृढ़ अदृढ़ दो गानहु॥
मोक्ष को साक्षात् हेतु दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान।
हेतु[3] ता विचार जीव ब्रह्म जग जानहु॥

***

॥ अथ द्वितीय कला ॥२॥

प्रपञ्चारोपापवाद

॥ मनहर छन्द॥

प्रपंचारोपापवाद करि निष्प्रपंच वस्तु।
ब्रह्म जानिके अवस्तु-मायादिक भानिये॥
ब्रह्म माया सम्बन्ध रु जीव ईश भेद तिन।
षट् ये अनादि तामें ब्रह्मानन्त मानिये॥
वस्तु में अवस्तु कर कथन आरोप बाधि[33]॥
अवस्तु वस्तु कथन अपवाद गानिये॥

Scanned with CamScanner

गुरु के प्रसाद यह युक्ति जानि पीताम्बर।
तज[३४] तम कारज आरज निज जानिये।।२।।

***

।। अथ तृतीय कला प्रारम्भः।।३।।

देह तीन का मैं द्रष्टा हूँ

।। मनहर छन्द।।

द्रष्टा तीन देह को मैं स्थूल सूक्ष्म कारण ये।
तीन देह दृश्य अरु अनात्मा मानियो।।
पंचीकृत पंचभूत के पचीस तत्त्वन को।
स्थूल देह एह भोग आयतन गानियो।।
अपंचीकृत भूत के सप्तदश तत्त्वन को।
सूक्ष्म देह होई भोग साधन प्रमानियो।।
अज्ञान कारण देह घटवत् दृश्य एह।
पीताम्बर द्रष्टा आप जानि दृश्य भानियो।।३।।

***

।। अथ चतुर्थ कला प्रारम्भः।।४।।

* मैं पञ्च कोशातीत हूँ *

।। मनहर छन्द।।

पंच कोशातीत मैं हूँ अन्न प्राण मनोमय।
विज्ञान आनन्दमय पंच कोश नातमा[६१]।।

Scanned with CamScanner

स्थूल देह अन्नमय-कोश लिङ्गदेह[६२] प्राण-।
मन रु विज्ञान तीन कोश कहें मातमा।।
कारण आनन्दमय-कोश ये[६३] कारज जड़।
विकारी विनाशी व्यभिचारी हीं अनातमा।।
अज चित अविकारी नित्य व्यभिचारहीन।
पीताम्बर अनुभव करता मैं आतमा।।४।।

***

।। अथ पंचम् कला प्रारम्भः।।५।।

* तीन अवस्था का मैं साक्षी हूँ *

।। मनहर छन्द।।

अवस्था तीन को साक्षी आतमा अन्वय[६७] याको।
व्यभिचारी अवस्था को व्यतिरेक[६८] पाइयो।।
त्रिपुटी चतुरदश करि व्यवहार जहाँ।
स्पष्ट सो जाग्रत जूठ ताकूं दृश्य ध्याईयो।
देखे सुने वस्तुन के संस्कार से सृष्टि जहाँ।
अस्पष्ट प्रतीति स्वप्न मृषा लोक गाईयो।।
सकल करण लय होय जहां[६९] सुषुप्ति सो।
पीताम्बर तुरीयहीं प्रत्यक[७०] प्रत्याईयो[७१]।।५।।

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ षष्ठम् कला प्रारम्भः ॥६॥

* प्रपञ्च मिथ्यात्व वर्णन *

॥ ललित[८३] छन्द ॥

सकल दृश्य सो-ऽध्यास छोड़ना।
जग अधार में चित्त जोड़ना॥
त्रयदशाहि[८४] जो जाग्रदादि हैं।
सब प्रपञ्च सो भिन्न नाहिं हैं॥६॥

रजत आदि हैं सीपि में यथा।
त्रयदशा सु हैं ब्रह्म में तथा।
रजत-आदिवत् दृश्य ये मृषा।
शुगतिकादिवत् ब्रह्म अमृषा[८५]॥

व्यभिचरै मिथो[८६] रजत आदि[८७] ज्यों।
इनहि की मिथो व्यावृती[८८] जु त्यों॥
शुगति सूत्रवत्[८९] अनुग एक जो।
अनुवृतीयुतो[९०] ब्रह्म आप सो ॥८॥

शुगतिका महीं तीन अंश[९१] ज्यूँ॥
अजड़ ब्रह्म में तीन अंश त्यूँ॥
उभय-अंश[९२] कूँ सत्य जानिले।
त्रतिय[९३] त्याग दे मोक्ष तौ मिले॥९॥

Scanned with CamScanner

भिद-भ्रमादि[९४] जो पंचधाभवं[९५]।
त्रिविध तापता तप्त सो दवं[९६]॥
परशु[९७] पंचधा-युक्तियों करी।
करि विचार तूँ छेद ना डरी॥१०॥

न हि जु जाहि में तीन काल में।
तहँहि भान व्है मध्य काल में॥
शुगति रौप्यवत् ध्यास सो भ्रमं।
अरथ-ज्ञान[९८] दो-भाँति का क्रमं॥११॥

द्विविध[९९] वेम है ज्ञान अर्थ को।
अरथ-भ्रांति[१००] वा षड् विधा बको॥
सकल ध्यास जे जगत में दसे[१०१]।
सब सु याहि के बीच में धसे[१०२]॥१२॥

निज चिदात्म कूँ ब्रह्म जानिके।
सकल वेम को मूल[१०३] भानिके॥
परम-मोद[१०४] कूँ आप बूजिले।
इहहि मुक्ति पीताम्बरो मिले॥१३॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ सप्तम् कला प्रारम्भः ॥७॥

* आत्मा के विशेषण *

॥ इन्द्र विजय छन्द[१३२] ॥

आत्म विशेषण हैं जु दुभाँति।
विधेय निषेध्य कहों निरधारे॥
वे[१३३] सब जानि भले गुरु शास्त्र सु।
सो अपनो निज रूप निहारे॥
सच्चिदानन्द रु ब्रह्म स्वयं पर-।
काश कूटस्थ रु साक्षि विचारे॥
द्रष्ट्ट अरु उपद्रष्ट्ट रु एकहि।
आदि विधेय विशेषण धारे॥१४॥

अन्त - विहीन[१३४] अखण्ड असङ्ग रु।
अद्वय जन्म-विना[१३५] अविकारे॥
चारि अकार-विना[१३६] अरु व्यक्त।
न मानन[१३७] को विषयो जु निकारे॥
कर्म करीहि बढ़ै न घटै इस।
हेतुहि अव्यय वेद पुकारे॥
अक्षर नाशविना कहिये इस।
आदि निषेध्य पीताम्बर सारे॥१५॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ अष्टम् कला प्रारम्भः ॥८॥

❋ सत्-चित्-आनन्द का विशेष वर्णन ❋

॥ इन्द्रविजय छन्द॥

सच्चिदानंद सरूपहि मैं यह।
सद्गुरु के मुख सैं पहिचान्यो॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति जु आदिक।
तीनहुं कालहि मैं परमान्यो॥
जागृत आदि लयाविध तीनहुँ।
कालहि हों इसतैं सत मान्यो॥
तीनहुँ काल विषै सब जानहुँ।
या हित मैं चिदरूपहि जान्यो॥१६॥

मैं प्रिय हूँ धन पुत्र रु पुद्गल[१४०]।
आदिक तैं त्रयकाल अगान्यो[१४१]॥
आतम अर्थ सबे प्रिय आतम।
आपहि है प्रिय दुःख नसान्यो॥
या हित मैं सब तैं प्रियतम्म रु।
हों परमानन्द दुःखहि भान्यो॥
देह दशादि[१४२] अतीत सु आतम।
पूरण ब्रह्म पीताम्बर गान्यो॥१७॥

❋❋❋

Scanned with CamScanner

* अवाच्य सिद्धान्त वर्णन *

॥ इन्द्र विजय छन्द॥

ब्रह्म अहै मनबानि - अगोचर।
शास्त्र रु सन्त कहैं अरु ध्यावैं॥
वेद वदें लछनादिक रीति रु।
वृत्ति विआप्ति जनो मन लावैं॥
हैं जु सदादि विधेय विशेषण।
वे असदादिक भिन्न कहावे॥
सत्य अपेक्षिक आदि विरोधि[१४४] जु।
अंस तजी परमार्थ[१४५] लखावैं॥१८॥

हैं जु अनन्त अखण्ड असङ्ग रु।
अद्वय आदि निषेध्य रहावैं॥
वे परपञ्च निषेध करी अव-।
शेषित वस्तु गिरा बिन गावैं॥
यूँ परमातम आतम देवही।
वेद रु शास्त्र सबे सुरटावैं॥
पण्डित[१४६] त्यागि अभास पीताम्बर।
वृत्ति अहं अपरोक्षहि पावैं॥१९॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ दशम् कला प्रारम्भः ॥१०॥

* सामान्य विशेष चैतन्य वर्णन *

॥ इन्द्र विजय छन्द॥

चेतन हैं जु समान विशेष सु।
दोविध सत्य सुजान समानै ॥
भ्रान्ति सरूप विशेष जु कल्पित।
संसृति आश्रय सो तिहि भानै ॥
ज्यों रवि को प्रतिबिम्ब जलादिक।
सो रविरूप विशेष पिछानै ॥
त्यों मति में प्रतिबिम्ब[१५०] परातम।
सो कलपीत विशेषहिं जानै ॥२०॥

आवत जावत लोक प्रलोक हिं।
भोगत भोग जु कर्म[१५१] निपानै ॥
सो सब चित-अभास[१५२] करे अरु।
शुद्ध समान महीं नहिं आनै ॥
अस्ति रु भाति प्रियं सब पूरन-।
ब्रह्म समान सु चेतन मानै ॥
नाम रु रूप तजी सत् चेतन।
मोद पीताम्बर आप पिछानै ॥२१॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ एकादश कला प्रारम्भः ॥११॥

❋ तत्त्वं पदार्थैक्य निरूपण ❋

॥ इन्द्र विजय छन्द ॥

वाच्य रु लक्ष्य लखी तत्-त्वंपद।
लक्ष्य दुहूँकर एक दृढ़ावै ॥
भिन्न जु देशहि काल सु वस्तु रु।
धर्मसमेत उपाधि उडावै ॥
जन्म थिती लय कारक मायिक[१५७]।
जाननहार सबी जग भावै ॥
ईश्वर वाच्य सु है ततपादहि।
ब्रह्म सु लक्ष्य उपाधि अभावै ॥२२॥

संसृति मानत आपहि में पर-।
तन्त्र अविद्यक[१५८] अल्प जनावै॥
त्वंपद वाच्य सु जीव विवेचित।
लक्ष्य सु साक्षि उपाधि ढ़हावै॥
वाच्य दुअर्थ हि भेद बि है पुनि।
लक्ष्य विभेद न रंचक गावै ॥
ब्रह्म अहं इस भाँति जु जानत।
सोई पीताम्बर ब्रह्महि पावै ॥२३॥

❋❋❋

Scanned with CamScanner

॥ अथ द्वादश कला प्रारम्भः ॥१२॥

* ज्ञानी के कर्म निवृत्ति का प्रकार वर्णन *

॥ तोटक छन्द[१६१] ॥

जिन आतमरूप पयो[१६२] जु भले।
तिस त्रैविधकर्म मिटे सकले ।।
तम[१६३] आवृत्ति आश्रित संचित ले।
निज बोध सु पावक सर्व जले ॥२४॥

जड़ चेतन गांठ विभेद बले।
दृढ़राग दवेष कषाय गले ॥
जल में जिम लिप्त न कंजदले[१६४]।
परसे न अगामि जु कर्म मले ॥२५॥

इस जन्म अरंभक कर्म फले।
सुखदुःखहि भोगत होत प्रले ॥
इस भाँति जु होवत जन्म विले।
पिख[१६५] रूप पीताम्बर स्वं विमले ॥२६॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ त्रयोदश कला प्रारम्भः॥१३॥

* सप्त ज्ञान भूमिका वर्णन *

॥ तोटक छन्द॥

निज बोध कि भूमि सु सप्त अहैं।
इस भाँति वसिष्ठ[१६६] मुनीश कहैं॥
शुभसाधन सम्पत्ति आदि लहै।
श्रवणादिविचार द्वितीय वहै॥२७॥

निदिध्यासन तीसरभूमि गहै।
अपरोक्ष निजातम चौथि चहै॥
हमता ममता बिन पंचम है।
छटवी सब वस्तु अकार दहै॥२८॥

सतमी तुरिया जु वरिष्ठित है।
सबवृत्ति विलीन चिदात्म रहै॥
इव[१६७] गाढ़सुषुप्ति न जागत है।
परमानन्द मत्त पीताम्बर है॥२९॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ चतुर्दश कला प्रारम्भः ॥१४॥

✻ जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति वर्णन ✻

॥ तोटक छन्द ॥

जब जानत है निजरूपहिकूँ।
तब जीवन्मुक्ति समीपहि कूँ॥
भ्रमबंध निवृत्ति सदेहहिकूँ[१६९]।
सुख सम्पत्ति होवत गेहहिकूँ॥३०॥

विदवान तजै इस देहहिकूँ।
तब पावत मुक्ति विदेहहिकूँ॥
तम लेश भजे सद नाशहिकूँ।
तज देत प्रपञ्च अभासहिकूँ॥३१॥

सरिता[१७०] इव सागर देशहिकूँ।
चिनमात्र मिलाय विशेषहिकूँ[१७१]॥
चिद होय भजे अवशेषहिकूँ।
नहि जन्म पीताम्बर शेषहिकूँ॥३२॥

✻✻✻

Scanned with CamScanner

॥ अथ पंचदश कला प्रारम्भः ॥१५॥

* वेदान्त प्रमेय (पदार्थ)[१७४] वर्णन *

॥ ललित छन्द (गोपिका गीतवत्)॥

जन तु जानिले[१७५] ज्ञेय अर्थकूँ।
सकल छेद सं-दे अनर्थकूँ ॥
मुगति कौन है हेतु ताहिको।
जनक[१७६] बीचको कौन वाहिको॥३३॥

विषय बोधको कौन जानिले।
प्रतक ईशको तत्त्व मानिले॥
अहम[१७७] अर्थकूँ खूब सोजिले।
'तत' पदार्थकूँ शुद्ध खोजिले॥३४॥

परमआतमा[१७८] एक मानिले।
तहँ सदाहि ऐश्वर्य आनिले॥
सत चिदात्म सो सर्वदा[१७९] अहै।
इस पीताम्बरो ज्ञानकूँ गहै॥३५॥

***

Scanned with CamScanner

॥ अथ षोडश कला प्रारम्भः ॥१६॥

* षोडश कला वर्णन *

॥ ललित छन्द ॥

निष्कलं निजं वेदहिं वदे।
षटदशं कला ब्रह्ममें नदे॥
निरवयेव जो निष्कलंक सो।
इकरसं सदा अंगता न सो॥३६॥

हिरण्यगर्भ और श्रद्धया नभो।
पवन तेज कं भूमि इन्द्रिभो॥
मन अनाज औ शक्ति[१८०] सत्तपो।
करम लोक नामा मनूजपो[१८१] ॥३७॥

षटदशं कला एहि जानिले।
जड़उपाधि को धर्म मानिले॥
अनुगताश्रयो पुष्पसूत्रवत्।
निज चिदात्म पीताम्बरो हि सत् ॥३८॥

***

Scanned with CamScanner

पूज्य पंडित पीताम्बरजी का संक्षिप्त जीवन चरित्र

कच्छ (सौराष्ट्र) के अंजार नगर के राज-पूज्य महाज्योतिषी पं. 'नरेड्य' के वंशज पं. 'पुरुषोत्तम जी' के द्वितीय पुत्र भगवत् स्वरुप'पीताम्बरजी' का जन्म विक्रम संवत् १९०३ के ज्येष्ठ शु. १०मीं, रूपगंगा जयन्ती के दिन माता वीरबाई (वीरवती) की कोख से बहुत उत्साहपूर्ण वातावरण में हुआ। इनके गर्भवास काल में इनकी माताश्री द्वारा नारायणसर आदि तीर्थ यात्रा और वेदांत श्रवण एवम् अनवच्छिन्न सत्संग करने से जन्म से संस्कार युक्त पीताम्बरजी को बाल्यावस्था से ही वेदान्त शास्त्रों में रुचि हो गई। लोकोक्ति भी है कि षट्मास के गर्भ होने के बाद यदि माता सत्-शास्त्र का श्रवण करे तो पुत्र भी प्रह्लाद, अष्टावक्रादि के समान शास्त्र संस्कारवान् होता है।

अस्तु, बाल्यकाल से ही सत्-शास्त्रों के श्रवण, कथा, कीर्तनादि से सुसंस्कारों में वृद्धि होती रही। आठ वर्ष की आयु में विधिवत् उपनयन संस्कार हुआ। इसके उपरांत दो वर्ष तक श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु श्री बापु महाराज ब्रह्मचारीजी से उपनिषद, गीता आदि शास्त्रों का पठन किया। दस वर्ष की आयु के अनन्तर इनका विवाह हो गया। संवत् १९२४ में इनके देवकृष्ण शर्मा नामक पुत्र का और कुछ काल पश्चात्

Scanned with CamScanner

कन्या रामाबाई का जन्म हुआ। उसके अनन्तर वे गार्हस्थ्य सुख से उदासीन हो गये।

यज्ञोपवीत के अनन्तर आप सोम, प्रदोष, एकादशी आदि शास्त्रोक्त व्रत, रुद्राध्याय आदिक पाठ परम्परा से प्राप्त पंचायतन पूजा आदिक सत्कार्य अविच्छिन्न रुप से करते रहे। पठनकाल में "गढसीसा" के समीपस्थ बिल्ववन में अति प्राचीन विल्वेश्वर मन्दिर में आप पूजन, दर्शन हेतु जाया करते थे। वहाँ श्रावणमास शिवरात्रि आदिक पर्वों पर देशभर के शिवभक्तों की भीड़ देखकर, आपने आगे समय पाकर विल्वेश्वर मन्दिर प्रांगण को विस्तृत रुप दिया। एवं मन्दिर आने-जाने की सुविधा हेतु सड़क आदिक निर्माण कार्य भी करवाया। अस्तु।

संवत् १९२६ में प्रयाग कुम्भ पर पंडित जी का काशी वाले महात्मा अमरदास जी से निम्न प्रश्न-उत्तर संवाद हुआ:-

प्रश्न:— **किं विदुष लक्षणम् ?**
(विद्वान् के क्या लक्षण हैं ?)

उत्तर:— **रागादिदोष राहित्यम्।**
(रागादि दोषों से रहित होना)।

शंका:—**रागाद्यभावे सति इष्टानिष्टयो: प्रवृत्ति-निवृत्त्यनुपपत्तेर्विदुष: प्रारब्धभोगो न स्यात्।** (रागादि के अभाव होने पर इष्ट-अनिष्ट में प्रवृत्ति-निवृत्ति के असंभव होने से विद्वान् को प्रारब्ध का भोग नहीं होवेगा।)

Scanned with CamScanner

समाधान:—**अद्दढ़रागादित्वम् विदुषो लक्षणम्।** (अद्दढ़ रागादिपना विद्वान् के लक्षण हैं।)

प्रश्न:—**अद्दढ़रागादे: किं लक्षणम् ?** (अद्दढ़ रागादिपने के क्या लक्षण हैं ?)

उत्तर:—**नैरंतर्येण रागाद्यभावत्वं (विचारनिवर्त्यरागादित्वं) अद्दढ़ रागादित्वं।** (निरंतर रागादि का अभावपना अर्थात् विचार से निवृत्त होने योग्य रागादिपना अद्दढ़ रागादिपना है)।

शंका:—**सुषुप्तौ सर्व प्राणिनाम् रागाद्यभावेन नैरंतर्येण रागाद्यभावात् अज्ञेष्वपि तज्ज्ञलक्षण-स्यातिव्याप्ति: सेत्स्यति।** (सुषुप्ति में सर्व प्राणियों के निरन्तर रागादि का अभाव होने के फलस्वरुप अज्ञानियों में भी सुषुप्ति काल में रागादि का अभाव होता है। इससे ज्ञानी के लक्षण की अज्ञानी में भी अतिव्याप्ति होती है।)

समाधान:—**यद्यपि सुषुप्तौ अंत:करणाभावात्त्वेवमस्तु तथापि जाग्रदादावंत:करण-सम्बन्धे सति नैरन्तर्येण रागाद्यभावत्वमद्दढ़रागादित्वम्** इति तु नाति व्याप्ति:। (यद्यपि सुषुप्ति में अन्त:करण का अभाव होने से सुषुप्ति में तो उपरोक्त प्रकार होवे,

Scanned with CamScanner

तथापि जाग्रदादि में अन्त:करण से सम्बन्ध होने पर निरन्तर रागादि का अभावपना, अदृढ़ रागादिपना है। इसलिए अतिव्याप्ति नहीं है।)

शंका:—**सुषुप्तौ संस्काररूपेणांत:करण सद्-भावेनांत:करणसंबंध सत्वादुक्त लक्षणस्याज्ञेष्वति-व्याप्ति:।** (सुषुप्ति में संस्कार रूप से अन्त:करण का सद्भाव होने के फलस्वरूप अन्त:करण का, रागादि के संबंध सहित होने से, उक्त लक्षण की अज्ञानी में अति-व्याप्ति है।)

समाधान:—**स्थूलांत:करणसंबंधे सति इति स्थूल-पदस्य निवेशे कृते नातिव्याप्ति:।** (स्थूल अन्त:करण से संबंध होने पर इस प्रकार लक्षण में स्थूल पद के प्रवेश करने पर अति-व्याप्ति नहीं है।)

शंका:—**कृष्यादिकर्मणि संलग्नस्याज्ञस्यापि स्थूलांत:करणसंबंधे सत्यपि रागाद्यभावादुक्त लक्षणस्याज्ञेष्वति-व्याप्ति:।** (कृषि आदि कर्म में संलग्न अज्ञानी के स्थूल अन्त:करण से संबंध होने पर भी रागादि का अभाव होने से उक्त लक्षण की अज्ञानी में अति-व्याप्ति होती है।)

Scanned with CamScanner

समाधान:—**स्त्री शत्रु प्रभृत्यनुकूल प्रतिकूल पदार्थ सान्निध्ये स्थूलांत:करणसंबंधे च सति नैरंतर्येण रागाद्य-भावत्वम् अद्दढ़रागादित्वम् तदेव विदुषो लक्षणम्।** (स्त्री-शत्रु आदि अनुकूल-प्रतिकूल पदार्थ के सान्निध्य में स्थूल अन्त:करण से संबंध होने पर भी निरन्तर रागादि का अभावपना, अद्दढ़रागादिपना है। यही विद्वान् का लक्षण है।)

शंका:—**षष्ठ सप्तमभूम्योस्तु सर्वथा रागाद्य-भावेनाद्दढ़रागाद्यभावादुक्त लक्षणस्य तत्राव्याप्ति:।** (छठी-सातवीं भूमिका में तो सर्वथा रागादि का अभाव होने के फलस्वरूप अद्दढ़रागादि का अभाव होने से इन छठी-सातवीं भूमिका वाले ज्ञानियों में उक्त लक्षण की अव्याप्ति है।)

उत्तर — **द्दढ़रागादिर्राहित्यम् विदुषाम् लक्षणम् सिद्धमिति वाच्यम्।**

(द्दढ़ रागादि से रहितपना विद्वान् का लक्षण है। इस प्रकार यह लक्षण सिद्ध हुआ।)

पू. पंडितजी का सम्पूर्ण जीवन अधिकतर देश प्रदेश में भ्रमण, तीर्थयात्रा, कुम्भ आदि पर्वो में सम्मिलित होकर अनेक ख्याति-प्राप्त संत महात्माओं के साथ पारमार्थिक सत्संग में ही व्यतीत हुआ। इन्होंने

Scanned with CamScanner

अपने गुरु महाराज का सान्निध्य भी दीर्घकाल तक किया। सभी सत्-शास्त्रों एवं व्याकरण आदि का निरन्तर अध्ययन, एकान्त सेवन तथा अनेक महात्माओं को 'पंचदशी', 'वृत्ति प्रभाकर' आदि ग्रन्थों का अध्ययन करवाना, इनके जीवन का कार्यक्रम बन गया। अनेक राजा महाराजाओं ने इन्हें समय-समय पर सम्मानित किया।

इन्होंने 'श्री पंचदशी' की भाषा टीका, 'विचार सागर' के मंगल के पांच दोहों की टीकापूर्वक टिप्पणिका, 'विचार चन्द्रोदय', 'वृत्ति रत्नावली', 'सटीक बाल-बोध', 'संस्कृत श्रुति-षट्लिंग संग्रह', श्री वेद स्तुति की टीका', स्वामी श्री त्रिलोकराम जी कृत 'मनोहर माला' की टिप्पणिका, 'सर्वात्म भाव प्रदीप' आदि अनेक ग्रन्थों की रचना की।

ये संवत् १९५६ में जीवन-मुक्ति के विलक्षण आनन्द-अर्थ, अल्पायास से सहज ही स्थित हो गये। संवत् १९६१ के चैत्र कृष्ण १३ सोमवार को इन्होंने संन्यास ग्रहण कर 'परमानन्द सरस्वती' नाम धारण किया और वैशाख कृष्ण ७ गुरुवार के दिन कच्छ के गढ़सीसा नामक गांव में ये इस क्षणभंगुर जगत् को त्याग कर विदेह मुक्त हो गये।

Scanned with CamScanner

ज्ञान के प्रतिबंधक एवं उनकी निवृत्ति के उपाय

विषयासक्ति-मानस्थ-मेयस्थ-संशय-भ्रमाः।
चत्वारःप्रतिबंधाः स्युर्ज्ञानादार्ढ्यस्य हेतवः॥१॥

(१) विषयों में आसक्ति, (२) प्रमाणगत संशय, (३) प्रमेयगत संशय और (४) भ्रम अर्थात् विपरीत भावना-ये चारों ब्रह्मज्ञान की अदृढ़ता के हेतु हैं अर्थात् ज्ञान के प्रतिबन्धक हैं।

आद्यस्य विनिवृत्तिः स्याद्वैराग्यादिचतुष्टयात्।
श्रवणेन द्वितीयस्य मननात्तार्त्तीयस्य च॥२॥

(१) विषयासक्ति की विनिवृत्ति **वैराग्य आदि साधन चतुष्टय** से होती है। (२) प्रमाणगत संशय की विनिवृत्ति **श्रवण** से होती है। (३) प्रमेयगत संशय की विनिवृत्ति **मनन** से होती है और (४) विपरीत भावना की विनिवृत्ति **निदिध्यासन** से निश्चित रूप से होती है।

(निवृत्त विषयों में पुनः कभी भी किंचित् भी आसक्ति, संशय आदि नहीं होवे उसे विनिवृत्ति कहते हैं।)

Scanned with CamScanner

ध्यायेन तु चतुर्थस्य विनिवृत्तिर्भवेद्ध्रुवम्।
पूर्वापूर्वानिवृत्त्या नैवोत्तरोत्तरनाशनम्॥३॥
विषयासक्तिनाशेन विना नो श्रवणं भवेत्।
ताभ्यामृते न मननं न ध्यानं तैर्विना भवेत्॥४॥

पूर्व पूर्व की निवृत्ति के बिना उत्तर उतर का नाश अर्थात् निवृत्ति नहीं होती। विषयासक्ति की निवृत्ति बिना, श्रवण नहीं होता। विषयासक्ति की निवृत्ति एवं श्रवण इन दोनों द्वारा प्रमाणगत संशय की निवृत्ति तथा इन दोनों निवृत्तियों सहित श्रवण बिना मनन नहीं होता। और विषयासक्ति की निवृत्ति, श्रवण द्वारा प्रमाणगत संशय की निवृत्ति एवं मनन द्वारा प्रमेयगत संशय की निवृत्ति-इन तीनों निवृत्तियों सहित श्रवण-मनन बिना निदिध्यासन नहीं होता।

स्ववर्णाश्रमधर्मेण तपसा हरितोषणात्।
साधनं प्रभवेत्पुं सां वैराग्यादि चतुष्टयम्॥५॥

(१) स्ववर्णाश्रम सम्बन्धी धर्मों का पालन, (२) कृच्छ्रचांद्रायण आदि तप और (३) हरि के संतोषकारक कर्म, सब जीवों पर दया आदि एवं हरिभजन इत्यादि से जिज्ञासु को वैराग्यादि साधन चतुष्टय की प्रकर्षता से प्राप्ति होती है।

Scanned with CamScanner

तत्सिद्धावुपसन्नः सन् गुरुं ब्रह्मविदुत्तमम्।
ज्ञानोत्पत्त्यै महावाक्य श्रुतिं कुर्याद्धितन्मुखात्॥६॥

साधन चतुष्टय सम्पन्न जिज्ञासु उत्तम ब्रह्मनिष्ठ गुरु के शरणागत होकर उनके मुख से ज्ञान की प्राप्ति के लिए वेद विषय प्रसिद्ध, अर्थ सहित, महावाक्य को श्रवण करे।

तत्सिद्धौ द्वापरभ्रांतिप्रहाणाय मुमुक्षुभिः।
श्रवणं मननं ध्यानमनुष्ठेयं फलावधि॥७॥

द्विविध संशय एवं विपरीत भावना-इन दोनों का नाश होकर ज्ञान प्राप्ति पर्यन्त, मुमुक्षु को निरंतर जैसे होवे वैसे श्रवण, मनन तथा निदिध्यासन करते रहना चाहिये।

श्रवणस्य प्रसिद्धयैव भवतोऽन्त्ये तथा सति।
द्वयोर्मूलं तु श्रवणं कर्त्तव्यं तद्धि धीधनैः॥८॥

श्रवण की प्रकर्षता से ही मनन एवं निदिध्यासन होते हैं। अतः इन दोनों के मूल रूप श्रवण को करना ही बुद्धिमानों का प्रथम कर्त्तव्य है।

(परम पूज्य पंडितजी श्रीपीताम्बरजी द्वारा रचित "श्रीश्रुतिषड्लिंग संग्रह के उपोद्घात कीर्त्तनम्" से उद्धृत)।

Scanned with CamScanner

मन का स्वभाव

मन स्वभावतः विषयों की तथा आलस्य की और आकर्षित होता है। ज्ञान की चर्चा इसे प्रिय नहीं होती; चर्चा सुन भी ले तो साधना में प्रवृत्ति नहीं होती। किन्तु इस मन में एक बड़ी अच्छाई भी है-वह यह कि जब इसे ज्ञान-विज्ञान में थोड़े दिन परिश्रम पूर्वक लगादो तो फिर इसे ज्ञान चर्चा में भी खूब रस आने लगता है और धीरे-धीरे साधना में पहिले जबरन इसे लगाओ और थोड़ा सा ध्यान में आनन्द आने लगे तो फिर यह उस सुख में भी खूब ही लगता है। यह मन उस आनन्द की झलक पाते ही उस रस में भी ऐसा आसक्त हो जाता है कि जगत् की ओर मुड़कर फिर देखना ही नहीं चाहता।

अतः पहिले मन को यत्नपूर्वक ज्ञान मार्ग में लगाना चाहिये। धैर्य धारण कर ग्रन्थ में लिखी विधियों से साधना में आगे बढ़ते चलना चाहिये। जब तक मन इस दिव्य रस का अनुभवी न बन जाय तब तक व्यवहार-कार्यों से समय निकाल कर साधक को प्रारम्भ में इसमें विशेष समय अवश्य लगाना चाहिये।

("बड़ा पंचीकरण" से)

Scanned with CamScanner

।। मङ्गलाचरणम् ।।

चैतन्यं शाश्वतं शांतं व्योमातीतं[१] निरंजनम्।
नादबिंदुकलातीतं[२] तस्मै श्री गुरवे नमः ॥१॥

सर्वश्रुतिशिरोरत्न विराजित पदाम्बुजम्।
वेदान्ताम्बुज मार्तण्डं तस्मै श्री गुरवे नमः ॥२॥

(जिन गुरुओं के चरणारविंदों की कृपा सब श्रुतियों में शिरोभाग वेदान्त रूपी रत्न को शिष्य के बुद्धिरूपी घर में स्थित करती है और सूर्य सदृश होकर उसके हृदय में वेदान्तरूपी कमल को विकसित करती है, उन सद्गुरुओं को नमस्कार करता हूँ।) ॥२॥

अज्ञानतिमिरांधस्य ज्ञानांजन शलाकया।
चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः ॥३॥

(अज्ञानरूपी अंधकार से अंध मुमुक्षु के विषय-उन्मुख बुद्धिरूपी चक्षु जिन गुरुओं की कृपा से सुलझे

---

१. शब्दातीतं अर्थात् शब्द का अविषय।

२. पुस्तक के अन्त में 'पदार्थ-त्रिविध' में देखें।

Scanned with CamScanner

हुए तर्क रूपी शलाका द्वारा ज्ञान रूपी अंजन लगाकर विषयों से हटाये जाकर ब्रह्म-सन्मुख किये गये, उन सद्गुरुओं को नमस्कार करता हूँ।)॥३॥

गु+रु = गु शब्दस्त्वन्धकारः स्यात्, रु शब्दस्तन् निरोधकः। अन्धकार निरोधित्वात्, गुरुरित्यभिधीयते॥

गुरुर्ब्रह्मा[३] गुरुर्विष्णुः[४] गुरुर्देवो महेश्वरः[५]।
गुरुरेव परंब्रह्म[६] तस्मै श्री गुरवे नमः॥४॥

अखण्ड मण्डलाकारं व्याप्तं येन चराचरम्।
तत्पदं दर्शितं येन तस्मै श्री गुरवे नमः॥५॥

(अखण्ड ब्रह्मांडाकार स्थावर-जंगमात्मक संसार जिस ब्रह्म द्वारा व्याप्त है, उस ब्रह्म का साक्षात्कार जिन गुरुओं द्वारा कराया गया, उन सद्गुरुओं को नमस्कार करता हूँ।)॥५॥

---

३. विवेक-वैराग्यादि सद्गुण-जनक प्रापण हेतुत्वात् गुरुरेव **ब्रह्मा**।

४. वेदान्त-वाक्य-पीयूष वर्षैः पोषणत्वात् गुरुरेव **विष्णुः**।

५. अज्ञानादि-बंधहेतून् निर्मूलत्वात् विनश्यत्वात् गुरुरेव **महेश्वरः**।

६. तत्त्वंवाक्यादिभिः लक्ष्यार्थत्वात् गुरुरेव **परंब्रह्मेति** विज्ञातमिति।

Scanned with CamScanner

अखण्डानंदबोधाय[७] शिष्य संताप हारिणे।
सच्चिदानंदरूपाय रामाय गुरवे नमः ।।६।।

पञ्च देव द्वय*गुरु-चरण, पीताम्बर मुनिराज।
मम मन-वाणी में बसहु, ग्रन्थ सुव्याख्या काज।।

---

७. ब्रह्म सदैव आनन्दघन, ज्ञानघन और अखण्ड है, इसका बोध सद्गुरु कराते हैं। यह घर मेरा, वह घर तेरा इत्यादि पृथ्वी के भाग; घटाकाश, मठाकाश आदि आकाश के भाग; भूत, भविष्यत् आदि काल के भाग; पूर्व, पश्चिम आदि दिशा के भाग जीवों को भिन्न-भिन्न एवं परिच्छिन्न रूप से प्रतीत होने पर भी पृथ्वी, आकाश, काल और दिशा का विभाजन और परिच्छिन्नता वास्तविकता में तो हो नहीं जाती। इसी प्रकार जीवों की अपनी अहंता, ममता के कारण एक अखण्ड ब्रह्म के विभाजित भिन्न-भिन्न एवं परिच्छिन्न रूप अनेक व्यक्ति वस्तु आदि उन जीवों को प्रतीत होते हैं। परन्तु वास्तविकता में ब्रह्म का विभाजन और उसकी परिच्छिन्नता कभी होती ही नहीं और न विज्ञ पुरुषों को ऐसी भासती ही है।

* दीक्षा गुरुः- ब्रह्मलीन श्री श्री १००८ श्री योगेश्वर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री वैराग्यनाथ जी महाराज
* विद्या गुरुः- श्री श्री १००८ श्री महा-मंडलेश्वर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ श्री नृसिंहगिरि जी महाराज
* (''द्वय गुरु चरणं'' का वास्तविक अर्थ है सद्गुरु के दोनों चरण कमल)

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

❋ श्री विचार चन्द्रोदयः ❋

॥ अथ प्रथम कला प्रारम्भः॥१॥

उपोद्घात[१]

॥ मनहर[२] छन्द॥

पुरुष इच्छा विषय पुरुषार्थ जोई सोई।
दुःख नाश सुख प्राप्ति रूप मोक्ष मानहु॥
हेतु ताको ब्रह्मज्ञान सो परोक्ष अपरोक्ष।
तामें अपरोक्ष दृढ़ अदृढ़ दो गानहु॥
मोक्ष को साक्षात् हेतु दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान।
हेतु[३] ता विचार जीव ब्रह्म जग जानहु॥

---

१. प्रतिपादन करने योग्य अर्थ (प्रयोजन) को मन में रखते हुए, उस हेतु अन्य वार्ता का प्रतिपादन (कथन) उपोद्घात है। जैसे किसी को दूसरे के घर से छाछ लेनी हो, तब उस पुरुष द्वारा उस बात को मन में रखते हुए "तुम्हारी गाय दूध देती है या नहीं ?" इत्यादि अन्य वार्ता का कथन उपोद्घात है। वैसे ही यहाँ प्रतिपादन करने योग्य परमार्थता* के विचार को मन में रखते हुए उसके आरम्भ हेतु अन्य मोक्ष आदि पदार्थों का कथन उपोद्घात है।

❋ (नेति नेति। नेह नानास्ति किंचन। इति श्रुतिः।
न निरोधो न चोत्पत्तिर्नबद्धो न च साधकः॥)

२. यह मनहर छन्द किसी भी राग के ध्रुव पद में गाया जाता है।

३. अन्वयः-ता (दृढ़-अपरोक्ष ज्ञान का) हेतु विचार है।

Scanned with CamScanner

तीन वस्तु रूप जड़ चेतन दो जड़ मिथ्या-।
माया ब्रह्म चित्त् 'सो मैं' पीताम्बर स्यानहु[४]॥१॥

सब पुरुषों की इच्छा का जो विषय है, सो ही पुरुषार्थ है। सब दु:खों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति ही सब पुरुषों की इच्छा का विषय होता है। वेदान्त में इसी को मोक्ष का स्वरूप माना है। इस मोक्ष का साधन ब्रह्मज्ञान है और यह ब्रह्मज्ञान परोक्ष व अपरोक्ष दो प्रकार का होता है। इन दोनों में अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान दृढ़ व अदृढ़ दो प्रकार का होता है। मोक्ष का साक्षात् साधन दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान ही है। इस दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का साधन विचार है। जीव, ब्रह्म और जगत्-इन तीनों वस्तुओं के स्वरूप को यथार्थ जानना ही विचार है। इन तीनों में से जगत् तो जड़ है और जीव एवं ब्रह्म चेतन हैं। इस प्रकार तीनों के जड़ एवं चेतन रूप से दो भाग होते हैं। इन दोनों में जड़ तो मिथ्या एवं मायिक (कल्पित) है और चेतन व्यापक है। पीताम्बर जी कहते हैं "मैं ही वह व्यापक चेतन हूँ", ऐसा निश्चय करो।

---

४. ऐसा निश्चय करो।

Scanned with CamScanner

१. प्रश्नः—**पुरुषार्थ क्या है ?**

उत्तर—सब पुरुषों की इच्छा का विषय ही **पुरुषार्थ**[५] है।

(पुरुषार्थ=पुरुष+अर्थ अर्थात् जीव का प्रयोजन।)

२. प्रश्न—सब पुरुषों को किसकी इच्छा होती है ?

उत्तर—सब पुरुषों को सब दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति की इच्छा होती है।

(नव द्वारों वाला पुर शरीर है। इसमें रहने वाली इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि पुरवासी हैं तथा इन सब सहित पुर का स्वामी होने से जीव ही पुरुष है।)

३. **प्रश्न—सब दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति क्या है ?**

उत्तर—सब दुखों[६] की आत्यन्तिक निवृत्ति[७] और

---

५. धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चारों का नाम पुरुषार्थ है। इनमें के प्रथम तीन गौण हैं उनको छोड़कर यहाँ पर अन्त के मुख्य पुरुषार्थ मोक्ष का ही ग्रहण है।

६. अज्ञान, तद्जन्य संसार एवं जन्म-मरण आदि सर्व प्रपञ्च को दुःख कहते है।

७. उक्त दुःखों के मिथ्यापने का निश्चयरूप बाध ही आत्यन्तिक निवृत्ति है।

Scanned with CamScanner

परमानन्द[८] की प्राप्ति[९], यही मोक्ष[१०] का स्वरूप है।

४. प्रश्न—**मोक्ष किससे होता है ?**

उत्तर—मोक्ष ब्रह्मज्ञान[११] से होता है।

५. प्रश्न—**ब्रह्मज्ञान[१२] क्या है ?**

उत्तर—ब्रह्म स्वरूप को यथार्थ जानना ही **ब्रह्मज्ञान** है।

---

८. परम प्रेम का विषय परमानन्द है।

९. यहाँ कण्ठ-भूषण की तरह **नित्य प्राप्त की प्राप्ति** मानी है।

१०. कर्त्ता-भोक्तापना आदि अन्यथा भाव को छोड़कर चिदाभास की स्व-स्वरूप (अपने ब्रह्म-स्वरूप) से स्थिति ही मोक्ष है। यह ज्ञान द्वारा होने वाला **(कैवल्य) पर मोक्ष** कहलाता है। कितने ही मीमांसक आदि लोग तो स्वर्ग को ही मोक्ष मानते हैं। यह तो जेल से छूटने वाले की मुक्ति की भांति कर्मो द्वारा होनेवाला मोक्षाभास रूप **अधम मोक्ष** है क्योंकि यह पुनर्गमनागमन वाला है। अन्य कितने ही उपासक लोग वैकुण्ठ, गोलोक, ब्रह्मलोक आदि की प्राप्ति को मोक्ष मानते हैं। उपासना की तारतम्यता से होने वाले सालोक्य, सामीप्य, सारूप्य एवंसायुज्य भेद से ये **अपर मोक्ष** कहलाते हैं। ये उपासक लोग इससे आगे और कोई मोक्ष पद नहीं मानते हैं; यह वेद से विरुद्ध है। पूर्वोक्त ज्ञान द्वारा होने वाले मोक्ष का स्वरूप ही वेदानुसार है।

११. कर्म व उपासना से चित्त की शुद्धि और एकाग्रतारूप ज्ञान के साधन होते हैं, मोक्ष नहीं होता।

१२. ब्रह्म से अभिन्न आत्मा का ज्ञान **मोक्ष का हेतु** है।

Scanned with CamScanner

६. प्रश्न—**ब्रह्मज्ञान कितने प्रकार का है ?**

उत्तर—ब्रह्मज्ञान परोक्ष और अपरोक्ष दो प्रकार का है।

७ से १० प्रश्न—**परोक्ष ब्रह्मज्ञान:-**

प्रश्न ७ (१)—**परोक्ष ब्रह्मज्ञान क्या है ?**

उत्तर—परोक्ष ब्रह्मज्ञान का स्वरूप

'ब्रह्म सच्चिदानन्दरूप है', केवल सुनकर या पढ़कर ऐसा दृढ़ निश्चय करना परोक्ष[१३] **ब्रह्मज्ञान का स्वरूप है।**

(आप्त पुरुष द्वारा केवल सुनकर या पढ़कर कि 'काशी है', ऐसी काशी की जानकारी, काशी सम्बन्धी परोक्ष ज्ञान का स्वरूप है।)

वृत्ति से अगोचर विषय का ज्ञान, परोक्ष ज्ञान का स्वरूप है।

प्रश्न ८ (२)—**परोक्ष ब्रह्मज्ञान किससे होता है ?**

उत्तर—परोक्ष ब्रह्मज्ञान का हेतु (कारण) :—

सद्गुरु और सत्शास्त्रों के वचनों में विश्वास रखने से परोक्ष ब्रह्मज्ञान होता है।

(नोट:—कला के अन्त में टिप्पणी भी देखें।)

---

१३. परोक्ष ज्ञान 'तत्त्वमसि' महावाक्यगत 'तत्' पद के अर्थ को जनाता है; अत: यह परोक्ष ज्ञान, अपरोक्ष अद्वैत ज्ञान में उपयोगी है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न ९ (३)—**परोक्ष ब्रह्मज्ञान से क्या होता है ?**

उत्तर—परोक्ष ब्रह्मज्ञान का फल:—

परोक्ष ब्रह्मज्ञान से असत्त्वापादक[१४] आवरण की निवृत्ति होती है।

प्रश्न १० (४)—**परोक्ष ब्रह्मज्ञान कब पूर्ण होता है ?**

उत्तर—परोक्ष ब्रह्मज्ञान की अवधि (सीमा) :

ब्रह्मनिष्ठ गुरु द्वारा और वेदान्त शास्त्र के अध्ययन अनुसार ब्रह्म स्वरूप के अस्तित्व का दृढ़ निश्चय हो जाने पर परोक्ष ब्रह्मज्ञान पूर्ण हो जाता है और इसके फलस्वरूप पूर्वकृत ज्ञात-अज्ञात सभी पापों का क्षय हो जाता है। आगे तो जिज्ञासु के हृदय में पापजनक संस्कारों का उद्भव एवं प्रवृत्ति होती ही नहीं; विहित कर्मों, उपासना एवं ज्ञान में ही प्रवृत्ति बनी रहती है।

जबहि नाम हृदय धर्‌यो, भयो पाप को नास।
मानो चिनगी आग की, परी पुराने घास॥

सनमुख होई जीव मोहि जबहिं।
जन्म कोटि अघ नासहिं तबहिं॥

---

१४. असत्त्वापादक (असत्त्व+आपादक) असद्भाव को संपादन (सिद्ध) करने वाला आवरण ही **असत्त्वापादक आवरण** है। 'ब्रह्म नहीं है' यह इसका आकार (स्वरूप है।)

Scanned with CamScanner

११. प्रश्न—**अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान क्या है ?**

उत्तर—'मैं सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म हूँ', ऐसा निश्चय करना अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान है।

१२. प्रश्न—**अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान किससे होता है ?**

उत्तर—गुरुमुख से 'तत्त्वमसि' आदि महावाक्यों के विधिपूर्वक श्रवण से अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होता है।

१३. प्रश्न—**अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान कितने प्रकार का है?**

उत्तर—अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान अदृढ़ और दृढ़ दो प्रकार का है।

१४ से १७ प्रश्न—**अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञानः-**

प्रश्न १४ (१)**अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान क्या है ?**

उत्तर—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का स्वरूपः

ब्रह्म व आत्मा की एकता का निश्चय होने पर भी असंभावना[१५] और विपरीत भावना[१६] का बना रहना **अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान** है। यहाँ अन्तरात्मा रूप से

---

१५. (१) 'वेदांत में जीव व ब्रह्म का भेद प्रतिपादन (कथन) किया गया है या अभेद ?' यह **प्रमाणगत संशय** है। और (२) 'जीव व ब्रह्म का भेद सत्य है या अभेद ?' यह **प्रमेयगत संशय** है।
इन दोनों संशयों को **असम्भावना** कहते हैं।

१६. 'जीव व ब्रह्म का भेद भी सत्य है और देहादि प्रपञ्च भी सत्य है', ऐसा विपरीत निश्चय **विपरीत-भावना** है।

Scanned with CamScanner

साक्षात्कार होने पर भी ब्रह्मरूप से साक्षात्कार नहीं होता।

प्रश्न १५ (२)—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान किससे होता है ?

उत्तर—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान के हेतु :-

(१) क. मल (पाप), ख. विक्षेप (मन की चांचल्यता) और ग. श्रुति नानात्व का ज्ञान-ये तीनों दोष,

(२) ब्रह्म की अद्वैतता के असम्भव का ज्ञान और

(३) जीव व ब्रह्म के भेद मानने वाले भेदवादी और उपार्जन एवंभोग में वेद और शास्त्र की आज्ञा नहीं मानकर स्वतंत्र बरतनेवाले पामर पुरुषों के सङ्ग के संस्कार।

इनके सहित अथवा इनमें से किसी एक के सहित भी पुरुष को गुरुमुख द्वारा महावाक्य के विधिपूर्वक श्रवण से अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होता है।

प्रश्न १६ (३)—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से क्या होता है ?

उत्तर—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का फलः—

अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से—

Scanned with CamScanner

(१) उत्तम लोक की प्राप्ति होती है और पुनरागमन होने पर,

(२) सकामता के रहते पवित्र श्रीमान् कुल में जन्म होता है अथवा निष्कामता के होने पर ज्ञानी पुरुष के कुल में (ज्ञानी गृहस्थी है तो पुत्ररूप से और संन्यासी है तो शिष्यरूप से) जन्म होता है।

देखो श्रीमद्भगवद्गीता अध्याय ६ श्लोक ४१-४२

प्रश्न १७ (४)—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान कब पूर्ण होता है ?

उत्तर—अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की अवधि:-

सत्-चित्-आनन्द आदि ब्रह्म के विशेषणों के अपरोक्ष भान होते हुए भी संशय[१७] और विपरीत-भावना[१८] का सद्भाव रहता है, तब अदृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान पूर्ण होता है।

१८ से २१ प्रश्न—दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान:-

प्रश्न १८ (१) दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान क्या है ?

उत्तर—दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का स्वरूप:—

असम्भावना और विपरीत भावना से रहित ब्रह्म व

---

१७. एक ही विषय के प्रति दो कोटि (प्रकार) वाले ज्ञान को या अनिश्चयात्मक ज्ञान को संशय कहते हैं।

१८. विपरीत निश्चय को विपरीत-भावना कहते हैं।

Scanned with CamScanner

आत्मा की एकता का निश्चय दृढ़-**अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान** है।

प्रश्न १९(२)—**दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान किससे होता है ?**

उत्तर—दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का हेतु:—

गुरुमुख से महावाक्य[१९] के अर्थ के श्रवण, मनन और निदिध्यासनरूप विचार करने से दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होता है।

प्रश्न २०(३)—**दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान से क्या होता है।**

उत्तर—दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान का फल:—

अभानापादक[२०] आवरण और विक्षेपरूप[२१] कार्य

---

१९. जीव व ब्रह्म की एकता के बोधक वाक्यों को **महावाक्य** कहते हैं।

२०. अभानापादक (अभान+आपादक) :- ब्रह्म की अप्रतीति को संपादन करने वाला आवरण **अभानापादक आवरण** है। 'ब्रह्म भासता नहीं' यह इसका आकार (स्वरूप) है।

२१. स्थूल शरीर एवं उसके धर्म जन्म-मरण आदि तथा सूक्ष्म शरीर एवं उसके धर्म कर्त्तापना-भोक्तापना आदि माया द्वारा ईश्वर-रचित हैं। अत: यह सभी स्वयं तो विक्षेप कोटि के न होकर प्रपञ्च कोटि के हैं। लेकिन मन चिदाभास को इन दोनों शरीरों एवं इनके धर्मों का अभिमानी बनाकर इन सभी को पकड़ाता* है तभी चिदाभास इनका अपने शुद्ध स्वरूप में आरोपण करता है और यह आरोपण करना ही **विक्षेप** है। अविद्या विक्षेपों की रचना आत्मा में करती है और विक्षेप सभी चिदाभास को होते हैं। (*षष्टम कला के अन्त में, 'चिदाभास को अनात्मा में आत्मा के अध्यासों के आकार' नामक टिप्पण देखें।)

Scanned with CamScanner

सहित अविद्या अर्थात् अज्ञान की निवृत्ति (त्रयकालिक अत्यन्ताभावरूप बाध) होकर ब्रह्म की प्राप्तिरूप मोक्ष होता है।

प्रश्न १२(४)—**दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान कब पूर्ण होता है?**

उत्तर—दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की अवधि:—

अज्ञानकाल में देह में अहंपने का जैसा ज्ञान हो रहा है, इसका दृढ़-मिथ्यात्व निश्चयरूप बाध करके ब्रह्म से अभिन्न आत्मा में जब ठीक वैसा ही ज्ञान हो जाता है, तभी दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान पूर्ण होता है।

(नोट-कला के अन्त में विस्तृत लेख देखें)

२२ से ३१ प्रश्न-**विचार:—**

प्रश्न २२ (१)—**विचार क्या है ?**

उत्तर—विचार का स्वरूप:—

मिले हुए क्षीर-नीर को राजहंस जैसे भिन्न-भिन्न कर देता है, वैसे ही आत्मा और अनात्मा को भिन्न-भिन्न करके जानना ही **विचार** है।

प्रश्न २३ (२)—**यह विचार किससे होता है?**

उत्तर—विचार का हेतु:—

यह विचार ईश्वर, वेद, गुरु और स्व अन्त:करण-

Scanned with CamScanner

इन चारों[२२] की कृपा से होता है।

प्रश्न २४ (३)—**इस विचार से क्या होता है ?**

उत्तर—विचार का फल:—

इस विचार से दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान होता है।

प्रश्न २५ (४)—**यह विचार कब पूर्ण होता है ?**

उत्तर—विचार की अवधि:—

दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान के हो जाने पर यह विचार पूर्ण होता है।

प्रश्न २६ (५)—**विचार किसका करना ?**

उत्तर—विचार के विषय:-

मैं कौन हूँ ? ब्रह्म कौन है ? और प्रपञ्च क्या है ? ये ही विचार के विषय हैं और इन तीन वस्तुओं का विचार करना।

---

२२. (१) सद्गुरु निरोग शरीर, इन्द्रियों की पटुता व कुशाग्र सूक्ष्म बुद्धि, परिस्थिति की अनुकूलता आदि ज्ञान सामग्री की प्राप्ति **ईश्वर-कृपा** है।

(२) शास्त्रों के अर्थों को धारण व समन्वय करने की शक्ति **वेद-कृपा** है।

(३) शास्त्र और स्व-अनुभव के अनुसार यथार्थ उपदेश करना **गुरु-कृपा** है। और

(४) शास्त्र-गुरु के वचन के अनुसार साधनों का संपादन कर विवेकपूर्वक अभ्यास आदि करना स्व अन्त:करण की कृपा है।

Scanned with CamScanner

प्रश्न २७—**इन तीन वस्तुओं का साधारण रूप क्या है ?**

उत्तर—मैं और ब्रह्म, सो चैतन्य है और प्रपञ्च[२३], सो जड़ है। यह इनका साधारण रूप है।

प्रश्न २८—**चैतन्य, सो क्या है ?**

उत्तर—जो ज्ञानस्वरूप है, सर्व घटादि प्रपञ्च को जानता है और जिसको अन्य मन, इन्द्रियादि कोई जान सकते नहीं, सो **चैतन्य** है। जैसे स्वच्छ शीशे के माध्यम से निज मुख का साक्षात्कार होता है वैसे ही शुद्ध बुद्धि के माध्यम से चेतन ब्रह्म का साक्षात्कार होता है। बुद्धि उस चेतन को जान नहीं सकती क्योंकि बुद्धि स्वयं तो जड़ है; चेतन की सत्ता प्राप्त कर इतर पदार्थों को जानती है।

प्रश्न २९—**जड़ सो क्या है ?**

उत्तर—अपने आपको न जाने और दूसरों को भी नहीं जाने, ऐसा अज्ञान[२४] एवं उसके कार्य पंचभूत[२५] व

---

२३. समष्टि स्थूल देह, समष्टि सूक्ष्म देह, समष्टि कारण देह, व्यष्टि स्थूल देह, व्यष्टि सूक्ष्म देह और व्यष्टि कारण देह एवं इन सभी देहों की अवस्थाएँ तथा धर्म-इन सभी को **प्रपञ्च** कहते हैं।

२४. (१) "नहीं जानता हूँ" ऐसे व्यवहार का हेतु, (२) आवरण विक्षेप शक्तिवाला, (३) अनादि और (४) भाव रूप-ऐसे लक्षणों वाला **अज्ञान** एक पदार्थ विशेष है।

Scanned with CamScanner

भौतिक पदार्थ[२६], ये सभी जड़ हैं।

प्रश्न ३० (६)—उपरोक्त तीन वस्तुओं के विचार का किस रीति से उपयोग है ?

उत्तर—विचार का उपयोग:-

(१) 'तत्त्वमसि' महावाक्य में स्थित 'त्वं' और 'तत्' पदों के वाच्यार्थ **जीव**[२७] और **ईश्वर**[२८] की उपाधि (अविद्या और माया) रूप प्रपञ्च[२९] को विचार द्वारा जेवरी (रस्सी) में सर्प की भाँति, ठौंठ (स्थाणु) में पुरुष की भाँति और मरुभूमि में मृगजल की भाँति मिंथ्या जानकर त्याग करना ही **प्रपञ्च के विचार का उपयोग** है। और

(२) "मैं ('त्वं' पद का लक्ष्यार्थ) आत्मा ही ('तत्' पद का लक्ष्यार्थ) ब्रह्म हूँ"। इस रीति (विधि) से ब्रह्म व आत्मा की एकता का विचार करके सत्य

---

२५. आकाशादि पाँचों भूत।

२६. भूतों के कार्य पिण्ड व ब्रह्माण्डादि **भौतिक** पदार्थ हैं।

२७. चिदाभास और अन्त:करण इन दोनों सहित कूटस्थ चैतन्य ही जीव है।

२८. चिदाभास और माया दोनों सहित ब्रह्म चैतन्य ही **ईश्वर** है।

२९. समष्टि और व्यष्टि रूप तीनों शरीर, पाँचों कोश, तीनों अवस्थाएँ, नाम, रूप आदि को **प्रपञ्च** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

जानकर अवशेष रखना, यह 'मैं कौन हूँ' और **'ब्रह्म कौन है', इस विचार का उपयोग** (फल) है।

प्रश्न ३१ (७)—**इस विचार का अधिकारी कौन है और सो क्या करे ?**

उत्तर—विचार का अधिकारी:—

(१) इस विचार का अधिकारी उत्तम-**जिज्ञासु**[३०] है। और

(२) वह अधिकारी सद्गुरु की कृपा से उपोद्घात आदि प्रक्रियाओं[३१] को विचार कर 'मैं ही ब्रह्म हूँ', इस रीति से 'आत्मा ही ब्रह्म है' ऐसा **अपरोक्ष जाने**।

३२ प्रश्न—**उन प्रक्रियाओं के नाम क्या हैं ?**

उत्तर— १) उपोद्घात।

२) प्रपञ्च का आरोप और अपवाद।

३) देह तीन का मैं द्रष्टा हूँ।

---

३०. (१) विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान) और मुमुक्षुता, इन चारों साधनों सहित, (२) ब्रह्मवित् गुरु और वेदान्त शास्त्र के वचनों में परम विश्वासी, (३) कदाचित् भी कुतर्क नहीं करने वाला और (४ स्व-स्वरूप के जानने की तीव्र इच्छा वाला अधिकारी ही **उत्तम जिज्ञासु** है।)

३१. अद्वैत के बोध करने का कोई भी प्रकार, सो **प्रक्रिया** है।

Scanned with CamScanner

(1) [illegible]
(2) [illegible]
(3) [illegible]
(4) [illegible]
(5) [illegible]
(6) [illegible]
(7) [illegible]
(8) [illegible]
(9) [illegible]
(10) [illegible]
(11) [illegible]
(12) [illegible]
(13) [illegible]
(14) [illegible]
(15) [illegible]

ये उन प्रक्रियाओं के नाम हैं।

इति श्री शिवार चण्डोरिये उपोद्घात उपनि गमिका प्रथम कला समाप्त ॥१॥

---

22. (1) प्रथमो-उपनि शिवार प्रथम, द्वितीय, षष्ठ, तृतीय और अन्तिम अध्यायों में लिया है।

Scanned with CamScanner

कुछ परिभाषाएँ, विवरण एवं विवेचन

निवृत्ति :— निवृत्ति क्रियात्मक (नाश) एवं ज्ञानात्मक (बाध) दो प्रकार की होती है। सत्य वस्तु की निवृत्ति क्रिया द्वारा होती है, जैसे सत्य सर्प का डण्डे की क्रिया से नाश होता है। कल्पित वस्तु की निवृत्ति ज्ञान से होती है, जैसे रज्जु में कल्पित सर्प अथवा ब्रह्म में कल्पित जगत् का बाध होता है।

असम्भावना और विपरीत-भावना का विवरण:—

(१) भेद प्रतिपादक विभिन्न श्रुतियों के अर्थों को देखकर, (२) उनमें वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ का मर्म न समझकर, (३) वेदान्त को छोड़कर सारे दर्शन-शास्त्रों,

---

(२) **प्रपञ्च सहित मैं कौन हूँ:**-इसका विचार तृतीय, चतुर्थ और पञ्चम् प्रक्रियाओं में किया है।

(३) **परमात्मा कौन है:**-इसका विचार दशम् प्रक्रिया में किया है।

(४) **ब्रह्म-आत्मा दोनों के स्वरूप:**-इनका विचार सप्तम्, अष्टम्, नवम्, एकादश और चतुर्दशवीं प्रक्रियाओं में किया है। और

(५) **प्रपञ्च और ब्रह्म-आत्मा के स्वरूप:**- इनका विचार पञ्चदशवीं प्रक्रिया में किया है।

सब प्रक्रियाओं का 'तत्' और 'त्वं' पदार्थ का शोधन और उनकी एकता का निश्चय ही प्रयोजन है।

Scanned with CamScanner

वैष्णवादि शास्त्रों तथा अनेक भेदवादी सन्त शिरोमणियों के वचनों को सुनकर, (४) लोकोक्तियों को देखकर और (५) जीव तथा ब्रह्म सम्बन्धी परस्पर विरुद्ध धर्मों वाले अनेक विशेषणों को देखकर लोगों के मन में किन्हीं के तो असम्भावना और किन्हीं के विपरीत-भावना हो जाती है।

उपरोक्त वचनों को देखकर या सुनकर मन में संशय होता है कि वेद तथा शास्त्र, जीव एवम् ब्रह्म की एकता भी कहते हैं, भेद भी कहते हैं। अनेक सन्त अभेद कहते हैं, अनेक भेद कहते हैं। न जाने किन सन्तों का अथवा किस वेद या शास्त्र का कौनसा कहना ठीक है, भेद का अथवा अभेद का ? ऐसा वेद, शास्त्र और सन्तों के वचन रूप प्रमाण में जो संशय होता है उसे **प्रमाणगत संशय** कहते हैं।

और वस्तुत: अभेद सत्य है अथवा भेद सत्य है, ऐसा वेद व शास्त्र और सन्तों द्वारा कहे गए विषयों के सम्बन्ध में जो संशय होता हैं उन्हें **प्रमेयगत संशय** कहते हैं।

इन दोनों प्रकार के संशयों को **असम्भावना** कहते है।

Scanned with CamScanner

जीव व ब्रह्म का भेद सत्य है और देहादि प्रपञ्च भी सत्य है, ऐसे विपरीत निश्चयों को विपरीत-भावना कहते हैं।

मल, विक्षेप एवं श्रुति-नानात्वः—

(१) **मलः**—जन्म जन्मांतरों के पाप और उन पापों से भोगों में सतत्व, रमणीयत्व आदि बुद्धि द्वारा रुचि होने को मल कहते हैं।

मल दो प्रकार के होते हैं-(क) गुणजन्य वासना रूपी मल तथा (ख) कर्मजन्य पुण्य-पाप रूपी मल। (विवरण इसी कला के अन्त में देखें।)

(२) **विक्षेपः**—मन को संसार की ओर ले जाने वाले व्युत्थान संस्कार अर्थात् कषायात्मक उद्भूत संस्कार और उनसे होने वाले वृत्ति-आत्मक प्रवाह जो कि एकाग्रावस्था के बाधक हैं, उन सभी को विक्षेप कहते हैं।

पुनः पुनर्विषयानुसन्धानम् (बारंबार विषयों का चिन्तन करना **विक्षेप** है)

अखण्डवस्त्वनवलम्बनेन चित्तवृत्तेरन्यावलम्बनम् (अखण्ड वस्तु अर्थात् ब्रह्म का निरन्तर चिन्तन न कर चित्त वृत्ति से अन्य वस्तुओं का चिन्तन विक्षेप है)

Scanned with CamScanner

(३) श्रुति नानात्व-इसका स्वरूप, हेतु एवम् फल:—

स्वरूप : नाना श्रुतियाँ एवं उनके भिन्न-भिन्न कथन।

हेतु : शास्त्र कृपा को ग्रहण करने के अभाव के कारण श्रुतियों के अर्थों के समन्वय का अभाव।

फल : श्रुति अर्थ के समन्वय ज्ञान का अभाव एवम् तद्जन्य ज्ञान से मन की डांवाडोल अवस्था।

श्रवण, मनन और निदिध्यासन:—

(१) **श्रवण** :— युक्ति से वेदान्तगत महावाक्य के तात्पर्य का निश्चय, **श्रवण** कहा जाता है अथवा एकाग्र मन सहित विधिपूर्वक सद्गुरु के मुख से महावाक्य का सुनना **श्रवण** कहा जाता है। श्रवण से प्रमाणगत संशय की निवृत्ति होती है।

कामिनी और कञ्चनरूपी विषयों को अत्यन्त आदर देनेवाले अति कामी और अति लोभी पुरुष जैसे स्व-स्व विषयों के प्राप्ति की बात अति प्रेम और एकाग्रतापूर्वक सुनते हैं, साधक भी ठीक वैसे ही श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, वीतराग गुरुओं के मुख से एकाग्र मन सहित महावाक्य का विधि-पूर्वक श्रवण करे। इस प्रकार का किया गया श्रवण स्व-लक्ष्य की प्राप्ति में मुख्य हेतु है।

Scanned with CamScanner

(२) **मनन** :— अभेद की साधक और भेद की बाधक युक्तियों से अद्वितीय ब्रह्म का चिन्तन मनन कहा जाता है। मनन से प्रमेयगत संशय की निवृत्ति होती है।

जैसे अति कामी अथवा अति लोभी पुरुष स्व-स्व विषय के सुनने के बाद उनके उपार्जन एवंभोग में सभी द्वन्द्वों (दिन-रात, सुख-दुःख, अनुकूलता-प्रतिकूलता, मान-अपमान, लज्जा-निर्लज्जता, देश-विदेश, तृप्त-अतृप्त, भय-अभय, धूप-छाया, भूख-प्यास आदि) की उपेक्षा करता हुआ अपने लक्ष्य में तल्लीन होकर विचारपूर्वक क्रियाशील एवं मननशील रहता है, ठीक वैसे ही साधक भी अपने लक्ष्य की प्राप्ति में लगा रहे। इस प्रकार का किया गया मनन स्व-लक्ष्य की प्राप्ति में हेतु है।

(३) **निदिध्यासन** :— विजातीय (अनात्माकार) वृत्तियों का तिरस्कार करते हुए सजातीय (आत्माकार, ब्रह्माकार) वृत्तियों के प्रवाह को प्रगाढ़ करना निदिध्यासन की **प्रारम्भिक अवस्था** है। जब विजातीय वृत्तियों का अभाव होकर केवल सजातीय वृत्तियों का प्रवाह यत्न-साध्य चलता रहता है, तब यह निदिध्यासन की **मध्यम अवस्था** है। **अन्तिम अवस्था** में तो बिना यत्न ही प्रवाह स्वतः

Scanned with CamScanner

अर्थात् स्वभाव-सिद्ध चलता ही रहता है। किन्तु इस अवस्था में त्रिपुटी की प्रतीति होती रहती है। 'योग दर्शन' में निदिध्यासन की इस अन्तिम अवस्था को **सविकल्प समाधि** कहा है। इस अवस्था में चित्त की सारी चेष्टाओं का अभाव हो जाता है और केवल ब्रह्म लक्ष्य बना रहता है परन्तु फिर भी, त्रिपुटी रूप द्वैत दर्शन होते रहने से यह अवस्था साधन कोटि में मानी जाती है। निदिध्यासन से विपरीत भावना एवं भ्रम की निवृत्ति होती है।

(निदिध्यासन=नि+दि+धी+आसन।
नि=निरंतर, दि=दीर्घकाल पर्यन्त, धी=बुद्धि की,
आसन=(ब्रह्म में) दृढ़ स्थिति।)

साधना में अधिकारियों के भेद:—

"योग सूत्र" ग्रन्थ में अन्त:करण की पाँच भूमिकाएँ- क्षिप्त, मूढ़, विक्षिप्त, एकाग्र एवं निरोध, बतलाई गई हैं। इनमें **क्षिप्त** एवम् **मूढ़** अवस्था वालों का तो साधन में अधिकार ही नहीं है क्योंकि वे मन को न रोककर विषयों में बह जाते हैं। **निरोध** तो जीवन्मुक्त-काल की अवस्था है और साधन की पराकाष्ठा है। अत:साधन के अधिकारी **विक्षिप्त** भूमि व **एकाग्र** भूमि में विभाजित होते हैं। विक्षिप्त

Scanned with CamScanner

भूमि वाले साधक **अकृतोपासक** तथा एकाग्र भूमि वाले **कृतोपासक** कहलाते हैं। एकाग्र अवस्था में मल-विक्षेप दोष-जन्य संस्कारों का अत्यन्त अभाव हो जाता है।

अकृतोपासकों व कृतोपासकों के साधन-रतता की प्रकर्षता को लेकर पुनः कनिष्ठ, मध्यम व उत्तम इस प्रकार तीन तीन विभाजन निम्न लिखे अनुसार किये गये हैं।

अकृतोपासकः—

(१) **कनिष्ठ साधक** के अंतःकरण में विषयों के प्रति सतत्व रमणीयत्व एवं सुखत्व बुद्धि से प्रवृत्तिजनक संस्कार कुछ मात्रा में बने रहते हैं और वे उसे विषयों की तरफ खींचते हैं, उस अवस्था में साधक उन संस्कारों के वेग को सर्वथा नहीं हटा पाता। वह जैसे-तैसे साकार ब्रह्म एवं सन्तों की शरणागति से, विचार से, शास्त्र एवंसत्संग से अथवा बारबार दोष दर्शन रूप वैराग्य आदि से एवं भले ही बलपूर्वक हठ आदि से भी उस प्रवृत्ति को ब्रह्म प्राप्ति रूप निज लक्ष्य सम्भालता हुआ, रोकता है। और जब-जब ऐसी अवस्था बनती है तब-तब ही सावधानीपूर्वक दोष दर्शन रूप ग्लानि* आदि करता हुआ मन को रोकता रहता है; भूल

Scanned with CamScanner

कर भी उसे प्रवृत्त होने ही नहीं देता। अति निर्बल होने से वह विक्षिप्त कोटि में **कनिष्ठ साधक** है।

*(''विरज्य विषयव्रातादोष दृष्ट्या मुहुर्मुहु:''वि.चू.२२ अर्थात् बारबार दोष-दृष्टि द्वारा विषय समूह से विरक्त होना।)

(२) **मध्यम साधक** विचार, ध्यान श्रवण, मनन आदि साधनकाल में तो उन संस्कारों को पूर्वोक्त उपायों के बल से सुखपूर्वक हटाने में समर्थ है; किन्तु व्यवहार काल में उस साधक में थोड़ी शिथिलता आ जाती है या आने की सम्भावना बनी रहती है; अत: भय बना रहता है। ऐसी अवस्था में उसको अधिक सावधानी की आवश्यकता है। वह विक्षिप्त कोटि में **मध्यम साधक** है। और

(३) **उत्तम साधक** उन संस्कारों को विचार ध्यान, श्रवण, मनन आदि सभी कालों में एवं व्यवहारकाल में भी सुखपूर्वक हटाने में समर्थ है। वह विक्षिप्त कोटि में **उत्तम साधक** है।

कृतोपासक—ज्ञान से पूर्व एकाग्र भूमि में होने वाली उपासना की तीव्रता के भेदानुसार कृतोपासकों के कनिष्ठ, मध्यम व उत्तम विभाजन होते हैं।

Scanned with CamScanner

(१) **कनिष्ठ उपासक** को उसकी तीव्र उपासना के फलस्वरूप शम-दम आदि की प्राप्ति होती है।

(२) **मध्यम उपासक** को उसकी तीव्रतर उपासना के फलस्वरूप दृढ़ वैराग्य आदि साधनों द्वारा संन्यास की प्राप्ति होती है। और

(३) **उत्तम उपासक** को उसकी तीव्रतम उपासना के फलस्वरूप साकार ब्रह्म के दर्शन होते हैं।

इन सभी कृतोपासकों में विषय प्रवृत्तिजनकं संस्कार तो रहते ही नहीं; केवल उपासना की न्यूनाधिकता से वैराग्य, उपरामता आदि की न्यूनाधिकता रहती है।

साधना में इन विभागों के अतिरिक्त और भी कई विभाग योग-सूत्र में दर्शायें हैं वहाँ देख लेवें।

अधिकारी भेद से ज्ञान प्रक्रिया भेदः—

वेद शास्त्रोक्त विहित कर्मरूप पितामह है। इन कर्मों के श्रद्धा, विश्वास, लगन एवं रुचिपूर्वक आचरण करने की प्रवृत्तिरूप मातामही है। इन दोनों के संयोग से पाप व मलिन वासनारूपी मल की निवृत्ति होकर निष्काम कर्मरूप पिता की उत्पत्ति होती है। इस पिता से सकाम पुण्यरूपी

Scanned with CamScanner

मल और शास्त्र सम्मत एहिलौकिक, पारलौकिक सुखों की वासना-रूपी मल तथा विक्षेप की निवृत्ति होकर दृढ़ वैराग्य एवं उपरामता की उत्पत्ति होती है। तदुपरान्त भक्तिरूपी माता के संयोग से उपरोक्त सुखों की वासनारूपी मल तथा विक्षेप की आत्यन्तिक निवृत्ति होकर तत्त्वज्ञानरूपी पुत्र की उत्पत्ति होती है। इसी ज्ञान से अज्ञान एवं उसकी आवरण शक्ति की आत्यन्तिक निवृत्ति तथा परमानन्द की प्राप्त होती है और ज्ञानी जीवन्मुक्त हो जाता है। इसमें मात्र **कृतोपासक** का ही अधिकार है। ऐसा अधिकारी गुरुमुख द्वारा विधिपूर्वक, एकाग्रचित्त से महावाक्य का श्रवण मात्र कर अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान प्राप्त करने में समर्थ है। ऐसी 'संक्षेप शारीरिक' के रचयिता आचार्य शिरोमणि श्री **सर्वज्ञात्ममुनि** की मान्यता है।

निष्काम कर्मरूपी वर्षा से सींचे हुए अन्त:करणरूपी भूमि में शम-दम आदि रूपी खाद पाकर भगवन्नामरूपी बीज ही भगवद्भक्तिरूपी बेल बन जाती है। इस पर खिला हुआ विचाररूपी पुष्प ही वैराग्यरूपी अनुकूल वायु के सहयोग से गुरुमुख द्वारा महावाक्य का विधिपूर्वक एकाग्रचित्त से श्रवणरूपी काल पाकर स्वत: ही तत्त्वज्ञानरूपी

Scanned with CamScanner

फल बन जाता है। फिर भक्तिरूपी बेल पर लगा हुआ ही व्यापक ब्रह्म स्वरूपी सूर्य की मनन, निदिध्यासनरूपी गर्मी प्राप्त कर ब्रह्मनिष्ठा (ब्रह्म स्थिति) रूपी परिपक्वता होने पर, वही ज्ञानरूपी फल, जीवन्मुक्ति-आनन्दरूपी रसयुक्त होकर अति मधुर हो जाता है। जीवन्मुक्त निरन्तर अभेद रूप से इनका आस्वादन एवं इसमें रमण करते हैं।

मनन, एवं निदिध्यासन सहित उपरोक्त विधि से किया हुआ **श्रवण** अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान कराने में समर्थ है। यह प्रक्रिया, 'पञ्चदशी' के रचयिता आचार्य शिरोमणि **श्री विद्यारण्य मुनि** की मान्यता के अनुसार है जो कि उन्होंने **अकृतोपासक** को ही लक्ष्य करके लिखी है। आजकल अधिकतर साधक अकृतोपासक ही होते हैं। अतः उनको मनन व निदिध्यासन सहित श्रवण अतिशय प्रयत्नपूर्वक अवश्य ही करते रहना चाहिए। इसमें जिज्ञासु प्रमाद, आलस्यादि एवं ज्ञान की अपरिपक्व अवस्था में ही पूर्णता का हठ भूलकर भी न करे और इस बात का भी पूरा ध्यान रखे कि स्वसाधन में कर्त्तव्य-अभिमान एवं हतोत्साह तनिक भी नहीं होने पावे। इसी में उसका परमहित है।

Scanned with CamScanner

जिस पुरुष की एकाग्र दृष्टि सूक्ष्म वस्तुरूप द्वितीया के चन्द्रमा के प्रति लक्ष्य जोड़कर, स्थिर होकर, दर्शन करने में समर्थ है, उसको तो विज्ञ पुरुष के संकेतों से अति दूरस्थ द्वितीया का चन्द्र-दर्शन हो ही जाता है। ऐसे ही जिस कृतोपासक की एकाग्र दृष्टि सूक्ष्म वस्तुरूप ब्रह्म के प्रति लक्ष्य जोड़कर, स्थिर होकर, दर्शन करने में समर्थ है, उस कृतोपासक को तो गुरु द्वारा महावाक्य के विधिपूर्वक श्रवण मात्र से ही, लक्षणा द्वारा उसी शब्द एवं वृत्ति से ब्रह्म का दृढ़-अपरोक्ष ज्ञान हो ही जाता है।

परन्तु जिस पुरुष की दृष्टि शीघ्रता से एकाग्र नहीं होती, वह सूक्ष्म वस्तुरूप द्वितीया के चन्द्रमा के प्रति लक्ष्य जोड़ने पर भी, पूर्णतया स्थिर दृष्टि नहीं होने से, दर्शन करने में असमर्थ होता है। उसको तो फिर विज्ञ पुरुष के बारंबार संकेतों से ही जैसे तैसे उपरोक्त द्वितीया का चन्द्र-दर्शन हो पाता है। ऐसे ही एकाग्र दृष्टि से रहित, विक्षिप्त दृष्टिवाले अकृतोपासक द्वारा ब्रह्म के प्रति लक्ष्य जोड़ने पर भी, पूर्ण स्थिरता नहीं होने से दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान में असमर्थता होती है। फिर भी विधिपूर्वक निरन्तर मनन, निदिध्यासन आदि करने से उसको ब्रह्म-ज्ञान

Scanned with CamScanner

होना सम्भव हो जाता है। अत: उसे ज्ञान की अपरिपक्वता होते हुए भी प्रमाद आदि वश पूर्णता का अभिमान व हठ आदि त्यागकर, श्रद्धापूर्वक, तत्पर, इन्द्रिय-विजयी आदि होकर उस विधान का अवश्य पालन करना चाहिए। इसी में उसका परम कल्याण है।

आजकल कई शास्त्रीयज्ञानी, यौक्तिक ज्ञानी एवं बद्धज्ञानी आदि अपने आपको ब्रह्मनिष्ठावान् सिद्ध करने के लिए ब्रह्मविद्या में ब्रह्मनिष्ठा के भ्रान्तिज्ञान को ही ब्रह्मस्थितिरूप यथार्थ-ज्ञान सिद्ध करने का दु:साहस करते हैं। अत: साधक रूपी मीन या पक्षी को उनके उपदेश रूपी जाल से बचना अत्यन्त आवश्यक है। 'जैसी कहनी, वैसी रहनी वाला' **तत्त्वज्ञानी** है तथा 'कहनी कुछ और करनी कुछ और' ऐसा **बद्धज्ञानी** है। विवेक द्वारा इन दोनों का विवेचन कर लेना चाहिए।

साधन प्रणाली:-पहली भूमिका से लेकर तीसरी भूमिका वाले साधकों को निम्नलिखित प्रकार से निष्कामभाव से स्व-स्व साधना करनी चाहिए।

(१) विद्या के आरंभकाल में बालक को उसकी विद्या पकड़ती नहीं, अपने स्वयं के प्रयास से अथवा माता-पिता

Scanned with CamScanner

की प्रेरणा से उसे विद्या को पकड़ना अत्यन्त आवश्यक है। साधक को भी उसकी साधना जब तक नहीं पकड़ लेती तब तक उसे गुरु की कृपा प्राप्त कर, बड़ी सावधानीपूर्वक, लगनशील, तत्पर, श्रद्धायुक्त एवं इन्द्रियविजयी होकर प्रभु से प्रार्थना करते हुए, अतिशय प्रयासपूर्वक निज साधना को पकड़ना ही चहिए। साधना में आलस्य, प्रमाद आदि कदापि नहीं आने देना चाहिए। इस अवस्था में **साधक साधना को पकड़ता है।** यहाँ कर्त्तव्य बुद्धि रहने से यह साधना **'करना'** संज्ञा में रहती है।

(२) जब साधक को साधना इतनी पकड़ लेवे कि वह चाहे तो भी साधना इसको छोड़ती नहीं और यन्त्रवत् होने लगती है, तब इस अवस्था में **साधना साधक को पकड़े रखती है।** यहाँ कर्त्तव्य बुद्धि नहीं रहने से यह साधना 'होना' संज्ञा में परिवर्तित हो जाती है। और

(३) फिर साधना स्वत: होती-होती अपने साध्य से अभेदता को प्राप्त हो जाती है। जैसे गङ्गा अपने प्रवाह सहित सागर में मिलकर सागर बन जाती है, वैसे ही साधना भी अपनी सोऽहं आदि धारा सहित, साध्य ब्रह्म में मिलकर साधना न रहकर साध्य से 'अभिन्न हो जाती

Scanned with CamScanner

है'। यही इसकी सिद्ध स्थिति है, और इसको प्राप्त कर साधक भी सिद्ध कोटि में पहुँच जाता है।

उपरोक्त भेद से साधना की 'करना', 'होना' और साध्य से 'अभिन्न हो जाना' क्रम से उतरोत्तर अवस्थाएँ जान लेनी चाहिए। निष्काम भाव से की हुई साधना कर्म प्रधान, भाव प्रधान एवं विचार प्रधान भेदों से अनेक प्रकार की होती है। यही पुनः देह एवं इन्द्रिय प्रधान 'कर्म योग', प्राण प्रधान 'हठ योग', चित्त प्रधान 'भक्ति योग' एवं बुद्धि प्रधान 'सांख्य योग' भेदों से भी अनेक प्रकार की होती है। जिन्हें जिज्ञासा होवे, वह वृहत् ग्रन्थों में देखें। विचार साधना वाले साधक को विचार शून्य केवल बुद्धिवाद अर्थात् कुतर्कों से अवश्य ही बचना चाहिए; क्योंकि ये इस मार्ग में बड़े घातक हैं।

दृढ़-अपरोक्ष ब्रह्मज्ञान की अवधि:-

जीव के वासना एवम् सञ्चित कर्मरूप अदृष्ट आदि जल से भरे हुए अनादि सामान्य अहंकार अर्थात् अन्तःकरणरूपी घट में सूर्य एवं आकाश के प्रति-बिम्बवत् अनादि ब्रह्म का प्रतिबिम्ब होने से, जीव भी अनादि ही है। इस सामान्य अहंकार की जाग्रति, जाग्रत् और स्वप्न

Scanned with CamScanner

अवस्थाओं में अपने विशेष अहंकार रूप से सदैव स्पष्ट विद्यमान रहती ही है; सुषुप्ति अवस्था में भी यह अपने कारण अविद्या में विलीन होकर अविद्या में संस्कार रूप से विद्यमान रहती है। महाप्रलय में उक्त जाग्रति सहित अविद्या अपने कारण माया में विलीन हो जाती है। पृथ्वी में विलीन होकर रहने वाले वनस्पतियों के बीज समय पाकर जल से प्रेरित होकर स्व-स्व स्वरूप में अंकुरित होते हैं। ऐसे ही उपरोक्त मायाविलीन जाग्रति भी ईश्वर के प्रथम ईक्षण अर्थात् सृष्टि आरम्भकाल में ईश्वर प्रेरणा से पुनः सामान्य अहंकारात्मक अन्तःकरण स्वरूप को प्राप्त होती हुई अपने विशेष अहंकार स्वरूप को प्राप्त हो जाती है। इस प्रकार इस जाग्रति की निरन्तर विद्यमानता सदैव ही सिद्ध है।

'अहं ब्रह्मास्मि' आदि पारमार्थिक साधन रूप अथवा 'मैं अमुक नाम रूप आदि वाला तथा गुण आदि वाला हूँ'। ऐसे सांसारिक असाधनरूप जिस किसी वृत्ति-ज्ञान के संस्कार, सामान्य अहंकार के स्वरूप में प्रवेश कर घुल-मिल कर एक से हो जाते हैं, वे संस्कार अखण्ड दृढ़ स्थिति-स्थापक संज्ञा वाले बन जाते हैं, जैसे छोड़ी हुई

Scanned with CamScanner

वृक्ष की डाली बिना प्रयास स्वतः ही अपनी पूर्व स्थिति में चली जाती है। इञ्जन से प्रेरित वेग को प्राप्त रेल का डिब्बा बिना इञ्जन के ही पटरी पर स्वतः ही कुछ देर तक चलता रहता है; ऐसे ही उन संस्कारों से संस्कृत इस सामान्य अहंकार का स्वतः ही बिना किसी प्रयत्न के गंगा प्रवाहवत् वृत्ति व्यवहार होना आरम्भ हो जाता है।

स्वाभाविकतया तो यह प्रवाह अपनी शुद्ध अवस्था में साक्षी सन्मुख ही होता है। परन्तु स्व-शरीर विषयक अहमाकार वृत्ति के संस्कार सामान्य अहंकार केसाक्षी-सन्मुख प्रवाह वाले निजी स्वभाव को दबा देते हैं। वे अपनी प्रभुता प्राप्त कर देह-उन्मुख संस्कारों केसाथ घुल-मिलकर एक रंग वाले होकर अशुद्ध विशेष अहंकार बन जाते हैं। इसी कारण से जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति, मूर्छा, द्विविध समाधि, मरणपर्यन्त सभी अवस्थाओं में एवं जाग्रत में होने वाली सचेत-अचेत, सावधानी-असावधानी, स्फुरण-सहित, स्फुरण-रहित, पागल-अपागल आदि सभी अवस्थाओं में होने वाले व्यवहारों में स्व-शरीर सम्बन्धी अहंता निरन्तर विद्यमान रहती है किसी भी व्यवहार में कहीं भी कभी भी उसकी अविद्यमानता नहीं रहती। इस

Scanned with CamScanner

दशा में शुद्ध सामान्य अहंकार अपना नाम (अन्त:करण), अपना रूप (शुद्ध सामान्य अहंकार), अपना कार्य (सत्-चित्-रूप सामान्य चेतन के प्रति अपना निरन्तर बहाव), अपना गौरव (अपने भूले भटके स्वामी चिदाभास को ब्रह्म प्राप्ति करवाना) आदि सबको भूलकर हाड़माँस रूपी गन्दी देह को विषय करनेवाले अशुद्ध अहंकार के रंग (अर्थात् उसके साथ उसी देह सम्बन्धी व्यवहार) में रंग जाता है। यह है तो शुद्ध सामान्य चेतन के आश्रित, अत्यन्त घनिष्ठ, निकटवर्ती एवं उसी ब्रह्म के विशेष स्वरूप आनन्द आदि को विषय करने (लक्ष्य, ध्येय, ज्ञेय और अनुभाव्य बनाने) वाला; परन्तु इतना शुद्ध होकर भी इतना मलिन हो जाता है। स्व-शरीर को विषय करने वाली अहंता की जड़, मन-बुदि आदि में होती हुई गहरी उतरती-उतरती सामान्य अहंकार के स्वरूप में घर कर जाती है।

जो-जो संस्कार इस अंत:करण अर्थात् अखण्ड सामान्य अहंकार के साथ उपरोक्त विधि से घुल-मिल जाते हैं, उनकी जाग्रति भी अखण्ड बन जाती है। अत: जिज्ञासु देह-विषयक अहंता और उसके संस्कारों को, जिसकी जड़ सामान्य अहंकारपर्यन्त पहुँची हुई है, समूल काटने के लिए

Scanned with CamScanner

निम्नलिखित साधनों का निष्कामतापूर्वक अभ्यास करें

(१) लौकिक-वैदिक कर्म, (२) सगुण उपासना अर्थात् निरन्तर स्व-इष्ट के नाम, रूप, गुण, लीला व धाम, इन पाँचों का चिन्तन-कीर्तनादि, (३) निर्गुण उपासना और (४) श्रवण, मनन, निदिध्यासन आदि।

इन साधनों द्वारा उपरोक्त जड़ को काटने के लिए 'असङ्ग शस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा.....' परशु पञ्चधा युक्तियों करी' इत्यादि अनेक वाक्यों का प्रयोग है। अतः साधक इन साधनों को मन-बुद्धि आदि में गहरा पैठाता हुआ अपने इस सामान्य अहंकारपर्यन्त स्थित कर दे। साधनों को अखण्ड बनाने का इसके अतिरिक्त अन्य कोई भी उपाय शास्त्रों में वर्णित नहीं है।

'ततः पदं तत् परिमार्गितव्यम्.....' अर्थात् इस जड़ को काटने के उपरान्त उस परमात्म पद को उपरोक्त साधनों से विधिपूर्वक निरन्तर खोजते रहना चाहिये। निदिध्यासन काल में अहंब्रह्मास्मि वृत्ति के प्रवाह को प्रबल बनाकर इसकी गहरी जड़ (अज्ञानकाल में देह की जड़वत्) सामान्य अहंकार में प्रवेश करा देनी चाहिये। तभी कटे हुए उस देहाभिमानरूपी विशाल वृक्ष की जगह अहं-ब्रह्म का

Scanned with CamScanner

अति विशाल वृक्ष स्थापित हो सकेगा। मानसिक चिन्तन, ध्यान आदि सब समय अखण्ड नहीं रह सकते जैसे सुषुप्ति आदि में, किन्तु शरीर सम्बन्धी जाग्रति की भाँति अहं-ब्रह्म सम्बन्धी जाग्रति ही एक मात्र अखण्ड रह सकती है।

जाग्रत एवं स्वप्न, दोनों अवस्थाओं में इदम् बुद्धि के स्थूल विषय पर-शरीर, घट-पटादि तो बदलते रहते हैं परन्तु अहम् बुद्धि का स्थूल विषय स्व-शरीर दोनों अवस्थाओं में अपरिवर्तित रहता है। राम की इदम् बुद्धि कभी कृष्ण के शरीर को, कभी मोहन के शरीर को, कभी घट-पट आदि को विषय बनाती है और ये विषय निरंतर बदलते रहते हैं, परन्तु राम की अहम् बुद्धि सदैव स्व-शरीर को ही ग्रहण करती है, इसमें कोई परिवर्तन नहीं होता।

दृढ़ अभ्यास द्वारा स्व-शरीर को भी इदम् बुद्धि का ही विषय बनाकर, पूर्व स्व-शरीर सम्बन्धी अहम्-बुद्धिवत्, यह अहम् बुद्धि आत्माभिन्न ब्रह्म को ग्रहण करने में दृढ़ स्वभाव वाली जब बन जाती है तभी यह बुद्धि चतुर्थ-भूमिका वाली कही जाती है। इस अवस्था में जाग्रत की तो बात ही क्या, स्वप्न भी ब्रह्म-सम्बन्धी ही आते हैं।

चौथी भूमिका के अधिपति ज्ञानी पर अन्तकाल में

Scanned with CamScanner

लेशाविद्या की निवृत्ति के लिए यह ब्रह्मास्मि वृत्ति को उदय करने की वेद विधि नहीं रहती। इस अवस्था में सामान्य अहंकार-निष्ठ ब्रह्मविद्या के संस्कारों द्वारा उस लेशाविद्या की निवृत्ति होना स्वतः सिद्ध ही है। किन्तु इससे पहिले प्रथम भूमिका से लेकर निदिध्यासनात्मक तीसरी भूमिका वालों पर वृत्ति बनाये रखने की अवश्य वेद विधि है। तीसरी भूमिका तक बहने वाला विशेष वृत्ति रूप प्रवाह अपना प्रबल वेग धारण कर लेने पर भी जब तक सामान्य अहंकार में उसकी वासनारूपी जड़ या सूक्ष्म संस्कार रूपी जड़, अत्यन्त गहरी उतर कर घर नहीं कर लेती, तब तक उसके भी सूख जाने का भय है।

देह में 'मैं' पने का ज्ञान जन्म से लेकर मरण पर्यन्त अपरोक्ष रहने से कभी भी परोक्ष नहीं होता। देह में 'मैं' पने की जाग्रति अपरोक्ष रहने से बिना किसी चिन्तन, ध्यान आदि के अनायास ही जन्म से लेकर मरणपर्यन्त बनी रहती है, कभी भी परोक्ष नहीं होती। लेकिन ब्रह्म में 'मैं' पने की जाग्रति का अज्ञानकाल में सर्वथा अभाव होने से यह जाग्रति अनायास नहीं होती। यह जाग्रति साधन आरम्भकाल में 'सच्चिदानन्द ब्रह्म है', इस आकार से परोक्ष रहती है। साधन परिपक्व अवस्थापर्यन्त अर्थात्

Scanned with CamScanner

अदृढ़-अपरोक्ष ज्ञान काल में यह जाग्रति गहन विचार, चिन्तन, ध्यान एवं स्मृति आदि साधनों द्वारा साक्षी-रूप से प्रत्यक्ष एवं ब्रह्म-रूप से अप्रत्यक्ष रहती है। दृढ़ अपरोक्ष ज्ञान होते ही यह जाग्रति ब्रह्मरूप से प्रत्यक्ष हो जाती है। इस प्रकार देह में व ब्रह्म में होने वाली इन जाग्रतियों में उपरोक्त भेद होने से विषमता है। अतः ब्रह्म की जाग्रति में तो साधक को अति सावधान रहना चाहिए।

इसमें जागने से लेकर सोने पर्यन्त और जन्म (विचार आरम्भकाल) से लेकर मरणपर्यन्त वेदान्तों का चिन्तन करता ही रहे, ''आसुप्तेरामृतेः कालं नयेद्वेदान्त चिंतया'' थोड़ा भी मन को अनात्माकार विचरने का अवसर नहीं देवें', ''दद्यान्नावसरं किंचित्कामादीनां मनागपि'' इत्यादि श्रुतियाँ एवं अहं ब्रह्म प्रत्यय की आवृत्ति करनी ही चाहिए; क्योंकि बारंबार आवृत्ति करने का उपदेश श्रुतियों में है', ''आवृत्ति रसकृदुपदेशात्'' आदि सूत्र और साथ-साथ पूज्यपाद आचार्य शिरोमणि सूत्र भाष्यकारों की स्वीकृति-ये सभी प्रमाण हैं।

विचार का विषय एवं स्वरूप :-

जीव, ब्रह्म और जगत्, इन तीनों वस्तुओं के विचार का प्रथम ग्रन्थ 'योग दर्शन' है। इन तीनों का साधारण

Scanned with CamScanner

रूप, जीव व ब्रह्म चेतन होने से, एक कोटि और जगत् जड़ होने से दूसरी कोटि है। इसी द्वि-कोटि को **'सांख्य शास्त्र'** में प्रकृति-पुरुष, आत्मा-अनात्मा, जड़-चेतन आदि शब्दों से भली प्रकार विवेचन किया है। अतः साधक 'योग दर्शन' और उसके अनन्तर 'सांख्य दर्शन' का भली प्रकार मनन करे।

सांख्य दृष्टि से जड़-चेतन दोनों का अस्तित्व था। इसके बाद वेदान्त प्रारम्भ होता है। 'जड़ मिथ्या माया' इस पद से जड़ जगत् तो कल्पित होने से बाध योग्य कहा है। शेष रहा चेतन जो सांख्य दृष्टि से माना था। उसे अब वेदान्त दृष्टि से 'ब्रह्म चित्', इस पद से व्यापक कहा है। व्यापक होने से चेतन की एक संज्ञा हो गई। अब "अहम् ब्रह्मास्मि" वृत्ति का विषय बनने काल में 'सो मैं' इस पद से अभेदता, अद्वैतता की सिद्धि हुई। पीताम्बर जी कहते हैं कि साधक दृढ़ निश्चयपूर्वक इस अद्वैतता में स्थिति करे।

इसी प्रसङ्ग को और स्पष्ट करने के लिए निम्नलिखित गुरु-शिष्य संवाद कहते हैं:-

Scanned with CamScanner

गुरु - एक मानसरोवर[१] वासी राजहंस[२] था। वह स्वभाव से मोती चून चुगनेवाला[३] और मिले हुए क्षीर-नीर[४] में से अपनी चोंच[५] द्वारा सहज ही जल-भाग[६] को त्याग कर केवल दूध-भाग[७] को ग्रहण करने की क्षमता वाला था। कुछ कौवों[८] के कुसङ्गवश वह मूर्खता[९] को प्राप्त हो गया और अपने स्वरूप[१०] को भूल गया। अब वह भी कौवों के समान ही हाड़-माँस[११], भिष्टा[१२] आदि तक के भोग में ग्लानि-रहित[१३] होकर प्रवृत्त हो रहा है। हे शिष्य ! देख, यह कितने आश्चर्य एवं दुःख का विषय है।

शिष्य - भो भगवन् ! वह राजहंस कहाँ है ? मुझे तो दिखलाई देता नहीं।

गुरु - वह राजहंस तूँ ही है।

---

१ ब्रह्मरूपी देश २ जीव ३ अहं ब्रह्मास्मि रूप ध्यान करने वाला ४ जड़-चेतन मिश्रित वस्तु व्यक्ति आदि ❋ ५ विचार ६ जड़ भाग ७ चेतन भाग ८ विषयासक्त स्त्री-पुत्र आदि संसार ९ अज्ञान १० निज सच्चिदानन्द स्वरूप ११ स्व एवं स्त्री-पुरुष आदि शरीर १२ धन सम्पत्ति आदि पदार्थ १३ आसक्तिपूर्वक, वैराग्यरहित

Scanned with CamScanner

* व्यवहार काल में स्व-शरीर में एवं व्यक्ति वस्तु आदि के शरीरों में चेतन-भाग शुद्ध घी की बनी मिठाईवत् अमृत है और जड़-भाग भिष्टावत् निकृष्ट है। आध्यात्मिक विचार आँख है और वैराग्य पाद है। मिठाई को देखकर हर्षित होना तथा भिष्टा को देखकर ग्लानि का होना, आँख का स्वभाव है। मिठाई की ओर चलना एवं भिष्टा से ग्लानि-पूर्वक झिझककर हटना, पाद का स्वभाव है। ऐसे ही स्वशरीरादि के भोगकाल में सर्वत्र ब्रह्मबुद्धि से चेतनभाग रूप अमृत को अभेदरूप से लक्ष्य कर हर्षित होना तथा जड़भाग रूप भिष्टा को देखकर ग्लानि करना, यह विचार रूप आँख का स्वभाव है। फिर अमृत रूप चेतनभाग की ओर श्रद्धा प्रीतिपूर्वक अभेद-दर्शन रूप चलना एवं जड़भाग रूप भिष्टा से अति ग्लानिपूर्वक झिझककर अत्यन्त वेग से हटना वैराग्य रूप पाद का स्वभाव होना ही चाहिए। भौतिक आँख व पाद जैसे निज-निज व्यवहार में अनायास सचेत है, ठीक वैसे ही साधक भी अपनी विचार रूप आँख एवं वैराग्य रूप पाद को निज-निज व्यवहार में अनायास सचेत रखने की पटुता प्राप्त कर ले ; इसी में उसकी बुद्धिमत्ता है। यही **विचार का स्वरूप** है।

पाप कर्म करते समय कृति के रस का त्याग करने से पापों में प्रवृत्ति नहीं होती। पूर्व जन्मकृत पुण्य कर्म से रचित वर्तमान के सुखरूप फल के रस का त्याग करने से कर्म निष्कामभाव से होने लगते हैं। **पाप कर्म के 'कृतिरस' का एवं पुण्य कर्म के 'फल रस' का त्याग,** उपरोक्त चेतन बुद्धि की स्वतः सिद्ध स्थिति में प्रबल हेतु है।

Scanned with CamScanner

विचार के स्वरूप पर निम्न पदों का भी अवलोकन कर मनन करें:-

नाना पात्र हुए भी क्या मिट्टी ताम्रादिक नाना।
वस्त्राभूषण विविध, सूत्र सोना सच बहु बन जाना॥
काष्ठ लौह क्या एक नहीं यदि अस्त्र मंच बहुतेरे।
'पूर्णनाथ' कारण भी बहु क्या, हों यदि कार्य घनेरे॥
रेल रेडियो चक्की पंखे नाना इंजिन चलते।
कुएँ सिनेमा ट्राम मिल्स बहु हीटर लट्टू जलते॥
आकृतियों में भेद हुए कृतियाँ विभिन्न गुण वाली।
'पूर्णनाथ' विद्युत विभिन्न क्या सत्ता देने वाली॥
दृश्य असंख्य स्वप्न के तो भी द्रष्टा एक नहीं क्या।
सर्वयोनि बहु क्षेत्र एक होता क्षेत्रज्ञ नहीं क्या॥
कारण विभिन्न क्रियाएँ न्यारी कर्त्ता एक नहीं क्या।
'पूर्णनाथ' है भोग विविध पर भोक्ता एक नहीं क्या॥
विविध पदार्थ योग से हैं बहु स्वाद प्रतीत मिठाई।
क्या चीनी का निजी तत्त्व माधुर्य भया बिलगाई॥
विषय जात शब्दादि भेद से रस अभिव्यक्ति अनेकों।
सम्भव क्या पार्थक्य 'नाथ पूरण' आनन्दपने को॥
रज्जु-सर्प सीपी-चांदी औ ठूँठ-पुरुष क्या होते।
जिन्हें देख विषयानुसार सब भगते हँसते रोते॥

Scanned with CamScanner

भित्ति लिखे लश्कर में होती क्या रण की अभिलाषा।
'पूर्णनाथ' क्या असत् समझते बालक खेल तमाशा॥
चमगादड़ को दिन में सूरज क्या प्रकाश देता है।
क्या अपार सूरज-प्रकाश को बादल ढक लेता है॥
कमल रोग होने पर क्या चांदी पीली हो जाती है।
'पूर्णनाथ' कटु सिता बने क्या जीभ विकृति जब आती॥
चढ़े रेल पर कहो नहीं वृक्षादि भागते दीखें।
कामुक को क्या विषय जगत् किंचित् भी लगते तीखे॥
चक्र नृत्य से थककर बालक जब पृथ्वी पर गिरते।
'पूर्णनाथ' वृक्षादि पास के तो क्या चक्कर करते॥
दिग्भ्रम होने पर क्या रवि विपरीत दिशा में ऊगे।
जादूगर की चिड़िया क्या सच ही मुक्ता फल चूगे॥
रंगमंच के अभिनेता आते क्या चित्रपटल पर।
'पूर्णनाथ' क्या सटा हुआ है अम्बर अवनी तल पर॥
स्वप्न सिनेमा जादूनगरी क्या स्वरूप से सत है।
कहो गगन में नील वर्ण मिश्रण तुमको अभिमत है॥
रचि तूलिका से किस पावस ऋतु की गौरमदाइन*।
'पूर्णनाथ' समझोगे कैसे माया मिथ्या डाइन॥
ऐसे भ्रम के विषय कोटि जो प्रकट सत्य इव भासें।
पर नितांत निर्मूल शास्त्र अनुभव यदि विज्ञ प्रकासें॥

---

* इन्द्रधनुष

Scanned with CamScanner

प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय एवं प्रमिति

अंत:करण की प्रत्येक त्रिपुटी में प्रमाता, प्रमाण एवं प्रमेय रूपी तीन पुट होते हैं। चौथा प्रमिति रूपी पुट, फलात्मक होने से त्रिपुटी संज्ञा के अन्तर्गत नहीं आता। यह चारों एक ही अन्त:करण के भिन्न-भिन्न चार पुट हैं। इन चारों पुटों में, प्रत्येक के भीतर स्व-आत्मा का एक-एक ही प्रतिबिंब पड़ता है, अधिक नहीं ; और ऐसा भी नहीं है कि कोई पुट प्रतिबिंब से रिक्त रह जावे। चेतन आत्मा के सत् चित् आनन्द अंशों में से प्रमाता पुट में सत् की, प्रमाण पुट में चित्त् की एवम् प्रमेय पुट में आनन्द की, भुक्ति प्रमिति पुट में है।

अन्त:करण में वस्तु विशेष की इच्छा उदय होने वाले काल में अन्त:करण की अहम् वृत्ति सहित चिदाभास को **'प्रमाता'** कहते हैं। इस वृत्ति से पूर्व अन्त:करण सहित चिदाभास की **'जीव'** संज्ञा होती है। प्रमाता पुट में रहने वाले जीव ने अपना अभाव कभी नहीं देखा ; अत: आत्मा के सत् अंश को अपने में देखता है। आत्मा के सत् अंश को आत्मा में ही देखना विवेककालीन अवस्था है और जीव स्वरूप में देखना ही अध्यास है। यही चिद्-जड़ ग्रन्थि कहलाती है।

Scanned with CamScanner

उपरोक्त वस्तु विशेष को अन्त:करण द्वारा विषय बनने वाले काल में 'प्रमेय' कहते हैं। यहां पर वस्तु तो ईश्वर-जगत का एक भाग है और वस्तु उपहित-चेतन ईश्वर-चेतन का भाग है। परन्तु वस्तु में 'प्रमेयत्व' की रचना अन्त:करण की है। वांछित वृत्ति का विषय होने से प्रमेय पुट में 'आनन्द' की प्रधानता कही जाती है। वस्तुउपहित ईश्वरचेतन की ही त्रिपुटी व्यवहारकाल में 'प्रमेयचेतन' संज्ञा बन जाती है।

प्रमाता से प्रमेय तक अन्त:करण की जों बहिर्मुखी धारा बहती है उसको 'प्रमाण' कहते है। इसी को 'ज्ञान' 'भोग' आदि भी कहते हैं। आनन्द का ज्ञान प्रमाण पुट में होने से इसमें चिद् की प्रधानता कही जाती है।

प्रमाता का प्रमाण द्वारा प्रमेय को भोगना अर्थात् विषय की आकृति को ग्रहण करना ही भुक्ति है और इसी को 'प्रमिति' कहते हैं।

अन्त:करण में ब्रह्म प्राप्ति की उत्कृष्ट इच्छा उदय होने पर प्रमाता-चिदाभास को, प्रमाण द्वारा प्रमेयब्रह्म के साक्षात्कार रूप ब्रह्मानन्द की प्राप्ति में प्रमाण पुट की निर्विकल्परूपेण स्थिति ही प्रमिति है। यही ब्रह्म स्थिति है। इसकी अनुभूति, स्वसंवेद्य है। सभी त्रिपुटियों में प्रमिति की

Scanned with CamScanner

अनुभूति स्वसंवेद्य ही होती है। 'प्रमिति' ही 'ज्ञप्ति', 'मुक्ति', 'अनुभूति' 'कृति' है।

पिता के अन्त:करण में पुत्र-मिलन की उत्कृष्ट इच्छा उदय होने पर चिदाभास सहित अन्त:करण पिता के हृदय में प्रमाता आदि चारों पुटों की रचना करता है और प्रत्येक पुट, शुद्धात्मा के एक-एक प्रतिबिंब सहित ही उदय होता है। अन्त:करण की अहंवृत्ति सहित चिदाभास प्रमाता व्यवहार में 'ज्ञाता' 'भोक्ता' आदि है।

त्रिपुटी व्यवहार से पहले केवल पुत्र-शरीर तो ईश्वर-जगत का एक भाग और पुत्र-शरीर का अधिष्ठान चेतन, ईश्वर चेतन का एक भाग है। ईश्वर चेतन का यह भाग, पिता का भोग्य होने से, ईश्वर चेतन के सत्-चित्-आनन्द अंशों में से पिता की दृष्टि से, आनन्द अंश की प्रधानता वाला है। आनन्द सहित पुत्र-शरीर 'विषय' संज्ञा वाला है। पिता के त्रिपुटी व्यवहार में यही विषयानन्द, विषय चेतन, भोग्य अथवा प्रमेयसंज्ञक बनता है।

पितारूप प्रमाता से पुत्ररूप प्रमेय पर्यन्त पिता के अन्त:करण की धारा 'भोग' 'प्रमाण' आदि बनती है। इस धारा-प्रविष्ट चेतन की 'ज्ञानचेतन', 'प्रमाणचेतन' आदि संज्ञा

Scanned with CamScanner

बनती है। (सुखदु:खान्यतर साक्षात्कारो हि भोग: अर्थात् सुख-दु:ख दोनों में से एक का साक्षात्कार होना ही भोग है।)

प्रमाणचेतन से प्रमेयसंज्ञक विषय चेतन का जो अभेद है वही वेदान्त सिद्धान्त में 'प्रमा' है। 'यह मेरा पुत्र है', यह इसका आकार है और यही 'यथार्थ ज्ञान' है। यही 'प्रमिति', 'भुक्ति' आदि 'फल' है और तद्गत चेतन 'फलचेतन' 'प्रमाचेतन' है। भुक्ति प्रमाणचेतन व विषयचेतन के अभेद के ठीक संधिकाल में उदय होती है।

सत्-चिद्-आनन्द ब्रह्म यथार्थ पदार्थ है और स्वत: सिद्ध है। पुत्र उपाधि उपहित चेतन, ब्रह्म का एक भाग होने से यथार्थ पदार्थ है और इसका ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है। पिता की दृष्टि से ब्रह्म के सत् अंश को अर्थात् ब्रह्म के अस्तित्व को पुत्र-शरीर में ही देखना अर्थाध्यास है और इसका ज्ञान ज्ञानाध्यास है। इसी प्रकार ब्रह्म के चिद् व आनन्द अंशों के सम्बन्ध में भी समझना चाहिये।

गुण-जन्य वासना एवं कर्म-जन्य अदृष्ट

अन्त:करण के वृत्ति व्यवहार से (१) गुण-जन्य वासना एवं (२) कर्म-जन्य पुण्य-पाप रूप अदृष्ट, में दो प्रकार के फल होते हैं।

Scanned with CamScanner

(१) गुण-जन्य वासना : अनुभवातीत अन्तःकरण के वृत्ति व्यवहार से सत-रज आदि गुणानुसार शुद्ध मलिन आदि वासना की सृष्टि होती है। वासना के संस्कार और संस्कारों से पुनः व्यवहार करनेवाली वृत्तियां अन्तःकरण में से उदय होती हैं। इसी प्रकार वृत्ति व्यवहार का यह चक्र चलता ही रहता है।

इन वृत्तियों वाला अन्तःकरण बाह्य-भीतर विषयों से सम्बन्धित हो प्रमिति, ज्ञप्ति, भुक्ति आदि फलों की रचना करता है। अन्तःकरण की इस रचना में प्रमातागत चिदाभास रूपी चेतन भाग भोक्ता है। प्रमाणगत चेतन भाग प्रमेयगत विषयानन्द का ज्ञान है और इसी ज्ञान को भोग कहते हैं। प्रमेयगत विषयानंद रूप चेतनभाग को भोग्य कहते हैं। प्रमितिगत चेतनभाग उक्त भोग्य की भुक्ति (भोग्य का भोगना) है।

वस्तुतः चेतन तो एक ही है। अन्तःकरण अपने उक्त पुटों की रचना द्वारा उस एक ही चेतन में चिदाभास रूप से भोक्ता, विषयगत आनन्द रूप से भोग्य और ज्ञान रूप से भोग का व्यवहार करा देता है। भोग और भोग्य के अभेद की सन्धि-काल में अन्तःकरण उसी चेतन में भुक्ति

Scanned with CamScanner

व्यवहार करा देता है।

विषयानन्द रूप फल से चिदाभासरूप भोक्ता वास्तविकता में तो अभिन्न है, परन्तु अन्त:करण के प्रमाता एवं प्रमिति पुटों के भेद के कारण कल्पित भेद वाले तादात्म्य अध्यास द्वारा यह चिदाभास इस फल (अर्थाध्यास) को अपने से भिन्न मानकर (ज्ञानाध्यास), श्वान द्वारा हड्डी चबानेवत्, भोगता है। चिदाभास का अपने आप को इस भोग से कृतकृत्य मानकर अलंबुद्धि का अनुभव कर बैठना ही उसकी विक्षेप अवस्था है।

(२) शुद्ध-मलिन अन्त:करण के वृत्ति व्यवहार-जन्य पुण्य-पाप अदृष्ट से भगवान् जीव का प्रारब्ध व प्रारब्धानुसार अनुकूल-प्रतिकूल दृष्टि के विषय सुखदायी-दु:खदायी पदार्थो की रचना करते हैं। भगवत-प्रदत्त उन पदार्थों में चिदाभास सहित अन्त:करण अहंता-ममतात्मक वासनाओं से त्रिपुटियां रचता है एवं उनमें प्रवृत्त होता है। अन्त:करण सहित चिदाभास उन भोगों को भोगता है। जीव सृष्टि के रचने में अन्त:करण की, व भोग भोगने में चिदाभास की प्रधानता है।

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ द्वितीय कला प्रारम्भः॥२॥

प्रपञ्चारोपापवाद

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ द्वितीय कला प्रारम्भः॥२॥

प्रपञ्चारोपापवाद

॥ मनहर छन्द॥

प्रपंचारोपापवाद करि निष्प्रपंच वस्तु।
ब्रह्म जानिके अवस्तु-मायादिक भानिये॥
ब्रह्म माया सम्बन्ध रु जीव ईश भेद तिन।
षट् ये अनादि तामें ब्रह्मानन्त मानिये॥
वस्तु में अवस्तु कर कथन आरोप बाधि[३३]॥
अवस्तु वस्तु कथन अपवाद गानिये॥
गुरु के प्रसाद यह युक्ति जानि पीताम्बर।
तज[३४] तम कारज आरज निज जानिये॥२॥

जगत् का आरोप-अपवाद (मण्डन-खण्डन) करके प्रपञ्चरहित वस्तुरूप अधिष्ठान ब्रह्म को जानकर अवस्तु-रूप अध्यस्त माया एवं उसके कार्य जगत् का बाध निश्चय करो। (१) शुद्ध ब्रह्म, (२) माया, (३) ब्रह्म व माया का

---

३३ अन्वय : अवस्तु बाधि, वस्तु कथन, अपवाद गानिये (जानिये)।

३४ अन्वय : हे आरज अर्थात् विवेकी ! तम कारज तज, निज स्वरूप जानिये।

Scanned with CamScanner

सम्बन्ध, (४) जीव, (५) ईश्वर और (६) जीव व ईश्वर इन दोनों का भेद ; ये छः अनादि हैं। इन छः में ब्रह्म को अनन्त मानो। अधिष्ठान में अध्यस्त का कथन करना आरोप जानो। अध्यस्त का बाध कर अधिष्ठान का कथन अपवाद जानो। पीताम्बर जी कहते हैं कि सद्गुरु की कृपा से यह युक्ति जानकर, हे आरज (विवेकी) ! अज्ञान और उसके कार्य जगद् को त्यागकर स्व-स्वरूप को जानो।

३३ प्रश्न— **शुद्ध ब्रह्म में प्रपञ्च का आरोप[३५] कैसे हुआ ?**

उत्तर— अनादि शुद्ध ब्रह्म में अनादि[३६] कल्पित[३७] प्रकृति है। उसका ब्रह्म के साथ अनादि कल्पित तादात्म्य सम्बन्ध

---

३५ ब्रह्म रूप वस्तु में अज्ञान और उसके कार्य रूप अवस्तु का कथन **आरोप** है। इसी को **अध्यारोप** भी कहते हैं।

३६ उत्पत्तिरहित वस्तु **स्वरूप** से अनादि होती है। ऐसे उत्पत्तिरहित होने से (१) शुद्ध ब्रह्म, (२) प्रकृति, (३) इन दोनों का सम्बन्ध, (४) ईश्वर, (५) जीव और (६) इन दोनों का भेद-ये छः अनादि हैं और प्रवाह रूप से प्रपञ्च भी अनादि है।

३७ जो वास्तव में तो होवे नहीं और स्वप्न पदार्थ की तरह भ्रान्ति से सत्य भासे, वह कल्पित है।

Scanned with CamScanner

है अर्थात् कल्पित भेद सहित वास्तव में अभेद रूप सम्बन्ध है।

वह प्रकृति निम्न प्रकार से विभाजित होती है:

१) जो शुद्ध[३८] सत्त्वगुणयुक्त है, सो माया है।

२) जो मलिन[३९] सत्त्वगुणयुक्त है सो **अविद्या** है। और

३) जो तमोगुण की प्रधानता से युक्त है, सो **तमः प्रधान प्रकृति** है।

ईश्वर-जीव परिभाषा:—

(१) माया में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब और माया[४०] इन दोनों

---

३८ जैसे ब्राह्मणरूप राजा अपने क्षत्रिय और शूद्ररूप मंत्रियों से, दबता नहीं किन्तु उन्हें दबा देता है; वैसे ही जो सत्त्वगुण, रज-तम गुणों से दबता नहीं, किन्तु उन गुणों को दबा देता है वह सत्त्वगुण, **शुद्ध सत्त्वगुण** है।

३९ जैसे ब्राह्मणरूप एक मन्त्री शूद्र रूप दोनों राजकुमारों से दब जाता है उनको दबा पाता नहीं ; वैसे ही जो सत्त्वगुण रज-तम गुणों से आप दब जाता है उनको दबा पाता नहीं, वह सत्त्वगुण मलिन सत्त्वगुण है।

४० यहां **'माया'** शब्द से माया और तमः प्रधान प्रकृति, ईश्वर की इन दोनों उपाधियों का ग्रहण है। इनमें-

(१) माया उपधि को लेकर ईश्वर कुलाल (कुम्हार) की तरह **जगत् का निमित्त कारण** है। और

(२) तमःप्रधान प्रकृति को लेकर ईश्वर मृत्तिका (मिट्टी) की तरह **जगत् का उपादान कारण** है।

Scanned with CamScanner

सहित अधिष्ठान ब्रह्म को जगत्कर्ता, **सर्वज्ञ ईश्वर** कहते हैं। और

(२) अविद्या में ब्रह्म का प्रतिबिम्ब और अविद्या, इन दोनों सहित अधिष्ठान कूटस्थ को भोक्ता, **अल्पज्ञ** जीव कहते है।

ईश्वर-जीव का अनादि भेदः-

(१) ईश्वर और जीव भी अनादि कल्पित हैं। उनमें **ईश्वर की उपाधि** माया एक है और आपेक्षिक[४१] व्यापक है। इसलिए ईश्वर भी एक है और व्यापक है। और

(२) **जीव की उपाधि अविद्या** नाना (अनेक) और परिच्छिन्न हैं, इसलिए जीव भी नाना और परिच्छिन्न हैं।

जीव व ईश्वर का भेद भी अनादि कल्पित हैं।

---

४१ किसी की अपेक्षा से व्यापक और किसी की अपेक्षा से परिच्छिन्न हो उसे **आपेक्षिक व्यापक** कहते हैं। जैसे गृह, घटादि की अपेक्षा से **व्यापक** और ग्राम की अपेक्षा से **परिच्छिन्न** है; इसलिए आपेक्षिक व्यापक है। इसी प्रकार माया भी पृथ्वी आदि की अपेक्षा से व्यापक अर्थात् अधिक देशवर्ती और ब्रह्म की अपेक्षा से परिच्छिन्न है ; इसलिए आपेक्षिक व्यापक है।

Scanned with CamScanner

शुद्ध ब्रह्म में प्रपञ्च का आरोप:-

(१) सृष्टि से पूर्व जीवों की उपाधि अविद्या, उनके कर्मों सहित माया में लीन होकर रहती है। वह माया सुषुप्ति में अविद्या की भांति, ब्रह्म से भिन्न प्रतीत अर्थात् सिद्ध नहीं होती। इसलिए सृष्टि से पहले सजातीय, विजातीय, स्वगत भेदरहित एक ही अद्वितीय सच्चिदानन्द रूप ब्रह्म था।

(२) उस ब्रह्म को सृष्टि के आरम्भ में जीवों के परिपक्व एवं फलोन्मुख हुए कर्म रूप निमित्त से 'एकोऽहं बहुस्यां' 'मैं एक हूँ, सो बहुरूप होऊँ', ऐसी इच्छा हुई।

(३) उसी इच्छा से ब्रह्म की उपाधि माया में क्षोभ (भूतों की उत्पत्ति की क्रिया का प्रथम-क्षणरूप-प्रवृत्ति) होकर क्रम से आकाश, वायु, तेज, जल और, पृथ्वी, ये पाँच महाभूत उत्पन्न हुए।

(४) उनका पञ्चीकरण नहीं हुआ तब तक वे अपञ्चीकृत थे। उनसे समष्टि-व्यष्टिरूप सूक्ष्म सृष्टि उत्पन्न हुई। फिर ईश्वर की इच्छा से जब उनका पञ्चीकरण हुआ, तब वे भूत पञ्चीकृत हुए और उनसे समष्टि-व्यष्टिरूप स्थूल सृष्टि उत्पन्न हुई। और

Scanned with CamScanner

(५) उनमें समष्टि स्थूल-सूक्ष्म कारण प्रपञ्च का अभिमानी, जीव की दृष्टि से ईश्वर है तथा व्यष्टि स्थूल-सूक्ष्म कारण प्रपञ्च का अभिमानी, जीव है। उनमें ईश्वर सर्वज्ञ होने से ज्ञान दृष्टि से, बाज़ी के व्यवहार में बाज़ीगर की भांति और भक्ति अर्थात् उपासना एवं कर्म दृष्टि से, जेल में जेलर की भांति नित्य मुक्त है। जीव अल्पज्ञ होने से बाज़ी में जैसे बाज़ीगर रचित व्यक्ति और जेल में जैसे अपराधी बन्धे हुए हैं, उनकी भांति बद्ध है।

इस रीति से शुद्ध ब्रह्म में प्रपञ्च का आरोप हुआ।

३४ प्रश्न— **यह आरोप सत्य है या मिथ्या ?**

उत्तर— यह आरोप रस्सी में सर्प, साक्षी में स्वप्न और दर्पण में नगर के प्रतिबिम्ब की भांति मिथ्या है।

३५ प्रश्न— **यह आरोप किससे होता है ?**

उत्तर— यह आरोप अज्ञान से होता है।

३६ प्रश्न— **यह आरोप कब और किसलिए हुआ; यह विचार कैसे होवे ?**

उत्तर— जैसे किसी पुरुष के वस्त्र पर तेल का दाग लगा होवे, उसको जानकर उस दाग को एक मात्र मिटाने

Scanned with CamScanner

का ही उपाय करना चाहिए ; 'यह दाग कब, कैसे लगा' इस विचार का कुछ भी प्रयोजन नहीं। वैसे ही 'यह प्रपञ्च का आरोप कब, कैसे हुआ' इस विचार का भी कुछप्रयोजन नहीं। परन्तु इसकी निवृत्ति का उपाय करना अत्यन्त योग्य (आवश्यक) है।

३७ प्रश्न— **इन सब आरोपों की निवृत्ति किस रीति से होती है ?**

उत्तर— (१) ब्रह्मज्ञान से शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान माया और मलिन सत्त्वगुण प्रधान अविद्या की निवृत्ति (बाध) होती है।

(२) उन दोनों की निवृत्ति से कार्य सहित समष्टि-व्यष्टि तम:प्रधान प्रकृति की निवृत्ति होती है।

(३) उस समष्टि-व्यष्टि तम:प्रधान प्रकृति की निवृत्ति से प्रकृति और ब्रह्म के सम्बन्ध की निवृत्ति होती है।

(४) उस प्रकृति व ब्रह्म के सम्बन्ध की निवृत्ति से जीवभाव और ईश्वरभाव की निवृत्ति होती है।

(५) उस जीव व ईश्वरभाव की निवृत्ति से जीव व ईश्वर के भेद की निवृत्ति होती है। और

Scanned with CamScanner

(५) उनमें समष्टि स्थूल-सूक्ष्म कारण प्रपञ्च का अभिमानी, जीव की दृष्टि से ईश्वर है तथा व्यष्टि स्थूल-सूक्ष्म कारण प्रपञ्च का अभिमानी, जीव है। उनमें ईश्वर सर्वज्ञ होने से ज्ञान दृष्टि से, बाज़ी के व्यवहार में बाज़ीगर की भांति और भक्ति अर्थात् उपासना एवं कर्म दृष्टि से, जेल में जेलर की भांति नित्य मुक्त है। जीव अल्पज्ञ होने से बाज़ी में जैसे बाज़ीगर रचित व्यक्ति और जेल में जैसे अपराधी बन्धे हुए हैं, उनकी भांति बद्ध है।

इस रीति से शुद्ध ब्रह्म में प्रपञ्च का आरोप हुआ।

३४ प्रश्न— **यह आरोप सत्य है या मिथ्या ?**

उत्तर— यह आरोप रस्सी में सर्प, साक्षी में स्वप्न और दर्पण में नगर के प्रतिबिम्ब की भांति मिथ्या है।

३५ प्रश्न— **यह आरोप किससे होता है ?**

उत्तर— यह आरोप अज्ञान से होता है।

३६ प्रश्न— **यह आरोप कब और किसलिए हुआ; यह विचार कैसे होवे ?**

उत्तर— जैसे किसी पुरुष के वस्त्र पर तेल का दाग लगा होवे, उसको जानकर उस दाग को एक मात्र मिटाने

Scanned with CamScanner

का ही उपाय करना चाहिए ; 'यह दाग कब, कैसे लगा' इस विचार का कुछ भी प्रयोजन नहीं। वैसे ही 'यह प्रपञ्च का आरोप कब, कैसे हुआ' इस विचार का भी कुछप्रयोजन नहीं। परन्तु इसकी निवृत्ति का उपाय करना अत्यन्त योग्य (आवश्यक) है।

३७ प्रश्न— **इन सब आरोपों की निवृत्ति किस रीति से होती है ?**

उत्तर— (१) ब्रह्मज्ञान से शुद्ध सत्त्वगुण प्रधान माया और मलिन सत्त्वगुण प्रधान अविद्या की निवृत्ति (बाध) होती है।

(२) उन दोनों की निवृत्ति से कार्य सहित समष्टि-व्यष्टि तम:प्रधान प्रकृति की निवृत्ति होती है।

(३) उस समष्टि-व्यष्टि तम:प्रधान प्रकृति की निवृत्ति से प्रकृति और ब्रह्म के सम्बन्ध की निवृत्ति होती है।

(४) उस प्रकृति व ब्रह्म के सम्बन्ध की निवृत्ति से जीवभाव और ईश्वरभाव की निवृत्ति होती है।

(५) उस जीव व ईश्वरभाव की निवृत्ति से जीव व ईश्वर के भेद की निवृत्ति होती है। और

Scanned with CamScanner

(६) उस जीव व ईश्वर के भेद की निवृत्ति से बंध की निवृति होकर मोक्ष सिद्ध होता है।

इस रीति से एक काल में ही **सब आरोपों की निवृत्ति** ✻रूप अपवाद[४२] होता है।

३८ प्रश्न— **यह ब्रह्मज्ञान किससे होता है ?**

उत्तर— यह ब्रह्मज्ञान विचार से होता है जो कि आगे कहा जाएगा।

इति श्री विचार चन्द्रोदये प्रपञ्चारोपापवाद वर्णन नामिका द्वितीय कला समाप्तः ॥२॥

✻ 'अहं ब्रह्मास्मि'-आत्मक अंत:करण की वृत्तिरूप तत्त्वज्ञान से प्रपञ्चसहित अज्ञान की निवृत्ति होती है और यही मोक्ष है। कल्पित की निवृत्ति अधिष्ठान रूप ही होती है; अत: मोक्ष ब्रह्मरूप ही है।

४२. सर्प का और उसके ज्ञान का बाध कर रज्जुरूप अधिष्ठान के अवशेष की भांति प्रपञ्च और उसके ज्ञान का बाध कर अधिष्ठान रूप शुद्ध ब्रह्म की उपाधि माया की एवं तत्कार्य प्रपञ्च की निवृत्ति सहित उपलक्षणरूप अंत:करण की निवृत्तिरूप अवशेष ही **अपवाद✻** है।

✻ (अविद्या, तद्जन्य जगत् एवं इन दोनों का ज्ञान-ये सभी व्यावहारिक सत्तावान् होने से **अध्यस्त** हैं तथा **आरोप** कोटि के है।)

शेष अगले पृष्ठ पर.....

Scanned with CamScanner

अपवाद अधिष्ठान रूप ही होता है

काष्ठ के तिनके को जलाकर अग्नि आरूढ़ दियासलाई स्वयं भी तत्क्षण जलकर भस्म हो जाती है। ऐसे ही व्यावहारिक अध्यस्त अंत:करण के प्रथम क्षण में उत्पन्न उपलक्षणसंज्ञक 'अहंब्रह्मास्मि'-वृत्तिरूप **तत्त्वज्ञान** ही द्वितीय क्षण में **ब्रह्मज्ञप्ति-संज्ञक** बनती है और तृतीय क्षण में उपरोक्त सभी आरोपों का बाध करके यह ब्रह्मज्ञप्ति स्वयं भी उसी क्षण **निवृत्त** हो जाती है। व्यावहारिक सत्तावाले अध्यस्त-अंत:करण-जन्य होने से, ब्रह्मज्ञप्ति भी व्यावहारिक सत्तावाली अध्यस्त व **आरोप कोटि** की है।

उपरोक्त सभी आरोपों का व उपलक्षणसंज्ञक ब्रह्मज्ञप्ति मात्र का बाध (निवृत्ति) तो छोड़ी हुई वृक्ष की डालीवत्, इसी व्यावहारिक सत्तावान् अध्यस्त निर्विकल्प अंत:करण द्वारा स्वत: ही होने से, यह सभी निवृत्तियां भी व्यावहारिक सत्तावाली अध्यस्त ही हैं और **अपवाद कोटि** की हैं।

उपलक्षणसंज्ञक ब्रह्मज्ञप्ति में (१) उपलक्षणस्वरूप अंत:करण का भाग एवं (२) उपलक्षितस्वरूप शुद्ध ब्रह्म का भाग-ये दो भाग होते हैं। **अधिष्ठानरूप शुद्ध ब्रह्म की उपाधि माया की व तत्कार्य प्रपञ्च की निवृत्ति सहित उपलक्षणसंज्ञक अंत:करण की निवृत्ति रूप अवशेष ही अपवाद है। उपलक्षणात्मक ब्रह्मज्ञप्ति, उपहित ब्रह्म को उपलक्षित संज्ञा देती है।**

फलस्वरूप उपरोक्त व्यावहारिक सत्तावाली एवं अपवाद-संज्ञक अध्यस्त निवृत्तियां, पारमार्थिक सत्तावान् उपलक्षित ब्रह्म में अध्यस्त ही हैं। 'अध्यस्तकी निवृत्ति अधिष्ठान रूप ही होती है', इस न्याय से अध्यस्तसंज्ञक सभी अपवाद उपलक्षित संज्ञक ब्रह्मरूप अधिष्ठान ही हैं।

Scanned with CamScanner

॥ अथ तृतीय कला प्रारम्भः ॥३॥

❋ देह तीन का मैं द्रष्टा हूँ ❋

॥ मनहर छन्द॥

द्रष्टा तीन देह को मैं स्थूल सूक्ष्म कारण ये।
तीन देह दृश्य अरु अनात्मा मानियो॥
पंचीकृत पंचभूत के पचीस तत्त्वन को।
स्थूल देह एह भोग आयतन गानियो॥
अपंचीकृत भूत के सप्तदश तत्त्वन को।
सूक्ष्म देह होई भोग साधन प्रमानियो॥
अज्ञान कारण देह घटवत् दृश्य एह।
पीताम्बर द्रष्टा आप जानि दृश्य भानियो॥३॥

मैं तीन देह का द्रष्टा हूँ। स्थूल, सूक्ष्म व कारण, ये तीन देह हैं। ये दृश्य और अनात्मा हैं, ऐसा माना गया है। पञ्चीकरण किए हुए पञ्च महाभूतों के पच्चीस तत्त्वों का स्थूल देह है। यह स्थूल देह जीवों के सुख-दुःख के अनुभव रूप भोग भोगने का घर है, ऐसा कहा गया है। अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतों के सत्तरह तत्त्वों का सूक्ष्म देह है। यह सूक्ष्म देह जीवों के भोग भोगने का साधन, शास्त्र व सन्तों द्वारा प्रमाणित (निश्चित) किया गया है। (१)

Scanned with CamScanner

'नहीं जानता हूँ', ऐसे व्यवहार का हेतु, (२) आवरण विक्षेप शक्तिवाला, (३) अनादि व (४) भावरूप अज्ञान, स्थूल-सूक्ष्म देह का हेतु रूप होने से कारण देह है। ये तीनों देह घट की तरह दृश्य हैं। पीताम्बरजी कहते हें कि स्वयं आत्मा को द्रष्टा जानकर दृश्य रूप इन तीनों देहों का बाध (मिथ्या) निश्चय करो।

प्रश्न— **भगवन् ! प्रत्यक्ष अनुभूत तीन देह व जगत् को कैसे मिथ्या मानें ?**

उत्तर— स्व- माया द्वारा बाज़ीगर-रचित प्रत्यक्ष दीखते हुए पदार्थ एवं देहें भूलकर भी सत्य प्रतीत नहीं होते अपितु मिथ्या ही अनुभव होते हैं। सिद्धान्त में भी ठीक ऐसा ही समझकर यह निश्चय कर लेना चाहिये कि स्व-माया द्वारा ईश्वर रचित जगत् प्रत्यक्ष अनुभूत होता हुआ भी मिथ्या ही होता है। अतः इसमें पूर्ण विश्वास कर, इसका पुनः पुनः अभ्यास कर, अपनी स्थिति को दृढ़ करो।

प्रश्न— **'देह तीन का मैं द्रष्टा हूँ, सो यह देह तीन कौनसी हैं ?**

उत्तर— स्थूल, सूक्ष्म और कारण, ये तीन देह हैं।

Scanned with CamScanner

(१) स्थूल देह का मैं द्रष्टा हूँ—इसका विवेचन

४० प्रश्न— **स्थूल देह क्या है ?**

उत्तर— पञ्चीकृत पञ्च महाभूतों के पच्चीस तत्त्वों का **स्थूल देह** है।

४१ प्रश्न— **पञ्च महाभूत कौनसे हैं ?**

उत्तर— आकाश, वायु, तेज, जल और पृथ्वी, ये **पञ्च महाभूत** हैं।

जीव के शरीर में इन पञ्चभूतों की व इनके व्यवहारों की अनुभूति निम्न लिखे अनुसार समझनी चाहिये।

शरीर के अन्दर :—

(१) कठोर भाग **पृथ्वी का** है और शरीर को उपादान रूपेण धारण करना इसका व्यवहार है।

(२) द्रव भाग **जल का** है और मिले जुले शरीर को पिण्ड रूप में स्थिर रखकर विखण्डित होने से बचाना एवं तर रखना आदि इसका व्यवहार है।

(३) गर्म भाग **अग्नि का है** और खाये पिये अन्न-जल आदि को पचाना; खून, वीर्य आदि निर्माण करना,

Scanned with CamScanner

वायु आदि विकारों को रोकना; कांति प्रदान करना आदि इसका व्यवहार है।

(४) प्राण-अपान आदि भाग **वायु का** है और ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों, मन एवं शरीर सभी को स्व-स्व प्रवृत्ति एवं स्थिति में बल (शक्ति) प्रदान करना, खून संचालन करना आदि इसका व्यवहार है। तथा-

(५) सभी अवयवों के बाहिर-भीतर जितना खाली भाग है वह **आकाश का** है और शरीर के सभी अवयवों को अवकाश देना इसका व्यवहार है।

४२ प्रश्न— **पञ्च महाभूतों के पाँच देवताओं के व पच्चीस तत्त्वों (पदार्थों) के नाम कौनसे हैं ?**

उत्तर— पञ्चभूतों के पाँच देवताओं के व पच्चीस तत्त्वों के नामों का विवरण-चक्र अगले पृष्ठ पर देखें।

४३ प्रश्न— **पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत किनको कहते हैं?**

उत्तर— जिन भूतों का पञ्चीकरण[४५] हुआ है, उनको **पञ्चीकृत पञ्च महाभूत** कहते हैं।

---

४५ प्रथम अपञ्चीकृत पञ्च महाभूत थे। उनका परस्पर मिलाप रूप पञ्चीकरण, ईश्वर की इच्छा से स्थूल सृष्टि द्वारा जीवों के भोग के निमित्त हुआ।

Scanned with CamScanner

स्थूल शरीर का तात्त्विक चक्र

तत्त्व						देवता
आकाश के पांच (१-५)	काम४३	क्रोध	शोक	मोह४४	भय	विष्णु
वायु के पांच (६-१०)	चलन (टेढ़ा होना)	वलन (दौड़ना)	धावन (फैलना)	प्रसारण (संकुचन)	आकुंचन	सूर्य
तेज के पांच (१२-१५)	क्षुधा (भूख)	तृषा (प्यास)	आलस्य	निद्रा	कान्ति	शक्ति (दुर्गा)
जल के पांच (१६-२०)	वीर्य (शुक्र)	शोणित (रक्त)	लार (लाल)	मूत्र	स्वेद (पसीना)	गणेश*
पृथ्वी के पांच (२१-२५)	अस्थि (हड्डी)	मांस	नाड़ी	त्वचा	रोम	शिव

४३ किसी भी भोग की इच्छा को काम कहते हैं।

४४ अहंता ममता रुप बुद्धि को मोह कहते हैं। 'जहां जल वहाँ जगदीश्वर', 'जल ही जीवन है'। अत: प्रञ्चभूतों में जल की प्रधानता है और जल के देवता होने से गणेश जी प्रथम-पूज्य है।

Scanned with CamScanner

स्थूल शरीर का तात्त्विक चक्र

तत्त्व	काम४३	क्रोध	शोक	मोह४४	भय	देवता
आकाश के पांच (१-५)	चलन (टेढ़ा होना)	वलन (दौड़ना)	धावन (फैलना)	प्रसारण (संकुचन)	आकुंचन	सूर्य
वायु के पांच (६-१०)	क्षुधा (भूख)	तृषा (प्यास)	आलस्य	निद्रा	कान्ति	शक्ति (दुर्गा)
तेज के पांच (१२-१५)	वीर्य (शुक्र)	शोणित (रक्त)	लार (लाल)	मूत्र	स्वेद (पसीना)	गणेश*
जल के पांच (१६-२०)	अस्थि (हड्डी)	मांस	नाड़ी	त्वचा	रोम	शिव
पृथ्वी के पांच (२१-२५)						

४३ किसी भी भोग की इच्छा को काम कहते हैं।

४४ अहंता ममता रूप बुद्धि को मोह कहते हैं। 'जहां जल वहाँ जगदीश्वर', 'जल ही जीवन है'। अतः पञ्चभूतों में जल की प्रधानता है और जल के देवता होने से गणेश जी प्रथम-पूज्य है।

Scanned with CamScanner

४४ प्रश्न— **पञ्चीकरण क्या है ?**

उत्तर— पञ्च भूतों में से प्रत्येक के दो-दो भाग करने से दस भाग हुए। उनमें से आकाशादि भूतों के पहिले-पहिले मुख्य पाँच भाग रहने दिए और दूसरे-दूसरे पाँच भागों में से प्रत्येक के चार-चार भाग किए। वे चार-चार भाग आकाशादि भूतों के अपने-अपने मुख्य भागों में न मिलाकर अन्य-अन्य भूतों के मुख्य भागों में एक-एक कर मिलाए। इसी को **पञ्चीकरण** कहते हैं।

४५ प्रश्न— **पञ्च भूतों का परस्पर मिलाप किस रीति से होता है ?**

उत्तर— **दृष्टान्त** : कोई पाँच मित्र आम, केला आदि अपना-अपना एक-एक फल लेकर इकट्ठे खाने बैठें। वे सब अपने-अपने फल के दो-दो भाग करके, आधा-आधा भाग तो अपने वास्ते रख लें और अवशेष आधे-आधे भाग के चार-चार भाग करके चारों मित्रों को वितरण कर देवें। तब पाँच फलों का परस्पर मिलाप होता है।

ऐसे ही सिद्धान्त :—

(१) **आकाश** के दो भाग किए। उनमें से-

(१) एक भाग रहने दिया। और

Scanned with CamScanner

(२) दूसरे भाग के चार भाग किए, जो आकाश में न मिलाकर एक भाग वायु में, एक भाग तेज में, एक भाग जल में और एक भाग पृथ्वी में मिलाया।

(२-५) ऐसे ही **वायु, तेज, जल** और **पृथ्वी** के भी दो-दो भाग कर उपरोक्त विधि से पञ्चीकरण किया।

इस रीति से पच्चीस तत्त्व होकर **पञ्च महाभूतों का परस्पर मिलाप** होता है।

४६ प्रश्न— **पंच महाभूतों के पच्चीस तत्त्व कैसे हुए ?**

उत्तर— सब भूतों का अपना-अपना एक-एक मुख्य भाग है और अमुख्य चारों भाग अन्य भूतों के मिले हैं। इस प्रकार एक-एक भूत के पाँच-पाँच तत्त्व होकर, सब मिलकर पच्चीस तत्त्व हुए।

४७ प्रश्न— **स्थूल देह में ये पच्चीस तत्त्व कैसे रहते हैं ?**

उत्तर— (१-५) आकाश[४६] के पाँच तत्त्व:—

---

४६ कई ग्रन्थों में सिर, कण्ठ, हृदय, उदर, कटि देशगत आकाश को ही **आकाश के पाँच तत्त्व** कहे हैं। उनमें-

(१) **शिरोदेशगत आकाश**, अनाहत शब्द (अनाहदवाणी, अनाहत नाद, अनहद नाद) का आश्रय होने से आकाश का मुख्य भाग है।

शेष अगले पृष्ठ पर.....

Scanned with CamScanner

शोक, काम, क्रोध, मोह और भय। उनमें से-

(१) **शोक**[४७] : आकाश का मुख्य भाग है। शोक होने पर शरीर शून्य सा हो जाता है। आकाश भी शून्य है। अतः शोक आकाश का मुख्य भाग है।

---

(२) **कण्ठ देश गत** आकाश, श्वास-प्रश्वास का आश्रय होने से वायु का भाग है।

(३) **हृदय देश गत** आकाश, पित्त का आश्रय होने से तेज का भाग है।

(४) **उदर देश गत आकाश**, पिये हुए जल का आश्रय होने से जल का भाग है।

(५) **कटि देश गत** आकाश, गन्ध का आश्रय होने से पृथ्वी का भाग है।

इस रीति से काम, क्रोधादि स्थूल देह के तत्त्व नहीं, किन्तु लिङ्गदेह के धर्म हैं। अन्य ग्रन्थों की रीति से भी कामादि लिंगदेह (सूक्ष्मदेह) के मुख्य धर्म हैं परन्तु स्थूल देह में, घट में जल की शीतलता के आवेश की भाँति, इनका आवेश होता है। इसलिए स्थूल देह के भी गौण धर्म कहे हैं।

४७ यद्यपि वायु आदि भूतों के भागों में भी आकाश के अन्य चार भागों में से एक-एक भाग मिला है, किन्तु उसे आकाश का मुख्य भाग नहीं कहते। लेकिन शोक और आकाश की अतिशय तुल्यता है। इसलिए शोक **आकाश का मुख्य भाग** है।

* शेष अगले पृष्ठ पर.....

Scanned with CamScanner

(२) **काम**[४८] : आकाश में **वायु का भाग** मिला है। कामनारूप वृत्ति चञ्चल है और वायु भी चञ्चल है। इसलिए यह वायु का भाग है।

(३) **क्रोध** : आकाश में **तेज का भाग** मिला है। क्रोध आने पर शरीर तपायमान हो जाता है और तेज भी तपायमान है। अतः यह तेज का भाग है।

(४) **मोह** : आकाश में **जल का भाग** मिला है। मोह स्त्री-पुत्रादि में प्रसरता (फैलता) है और जल बिन्दु भी प्रसरता है। अतः यह जल का भाग है।

(५) **भय** : आकाश में **पृथ्वी का भाग** मिला है। भय होने पर शरीर जड़ (अक्रिय) सा हो जाता है और

काम और लोभ विश्व के सकल पदार्थों की प्राप्ति करने पर भी कभी पूर्ण नहीं होते। आकाश सारा जगत् समा जाने पर भी अपूर्ण (खाली) रहता है। इसी समानता को लेकर कहीं-कहीं इन दोनों को भी आकाश का मुख्य भाग कहा है।

इस रीति से अन्य भूतों में भी तत्त्वों के मुख्य भाग का गौण भाग हो जाना अथवा गौण भाग का मुख्य भाग हो जाना, जान लेना चाहिये।

४८ पिता के तुल्य पुत्र होता है। काम वायु के तुल्य (समान) वेगवान है; अतः **वायु का भाग** है। इसी प्रकार अन्य तत्त्वों में भी जान लें।

Scanned with CamScanner

पृथ्वी भी जड़ता स्वभाव वाली है। अतः यह पृथ्वी का भाग है।

(६-१०) **वायु के पाँच तत्त्वः**—प्रसारण, धावन, वलन, चलन और आकुञ्चन। उनमें से

(६) **प्रसारण :-** वायु में **आकाश का भाग** मिला है। प्रसारण नाम पसरने का है और आकाश भी प्रसरा हुआ है। अतः यह आकाश का भाग है।

(७) **धावन :- वायु का मुख्य भाग** है। धावन नाम दौड़ने का है और वायु भी दौड़ता है। अतः यह वायु का मुख्य भाग है।

(८) **वलन :-** वायु में **तेज का भाग** मिला है। वलन नाम अङ्ग के वालने (शरीर के अङ्गों का मोड़ना आदि वलनात्मक सभी क्रियाओं) का है और तेज का प्रकाश भी वलता है। अतः यह तेज का भाग है।

(९) **चलन :-** वायु में **जल का भाग** मिला है। चलन नाम चलने का है और जल भी चलता है। अतः यह जल का भाग है।

(१०) **आकुञ्चन :-** वायु में पृथ्वी का भाग मिला है। आकुञ्चन नाम सङ्कोच करने का है और पृथ्वी भी

Scanned with CamScanner

संकुचित स्वभाव वाली है अतः यह पृथ्वी का भाग है।

(११-१५) **तेज के पाँच तत्त्वः**—निद्रा, तृषा, क्षुधा, कांति , और आलस्य। उनमें से—

(११) **निद्रा :-** तेज में **आकाश का भाग** मिला है। निद्रा आने पर शरीर शून्य सा हो जाता है और आकाश भी शून्यता वाला है। अतः यह आकाश का भाग है।

(१२) **तृषा :-** तेज में **वायु का भाग** मिला है। तृषा कण्ठ को सुखाती है और वायु भी गीले वस्त्रादि सुखाती है। अतः यह वायु का भाग है।

(१३) **क्षुधा :- तेज का मुख्य भाग** है। क्षुधा होने पर किया हुआ भोजन भस्म (पाचन) हो जाता है और अग्नि में भी जो वस्तु डालें, वह सब भस्म हो जाती है। अतः यह तेज का मुख्य भाग है।

(१४) **कांति :-** तेज में **जल का भाग** मिला है। कांति (चमक, दमक, प्रभा) धूप से घटती है। जल भी धूप से घटता है। अतः यह जल का भाग है।

(१५) **आलस्य :-** तेज में **पृथ्वी का भाग** मिला है। आलस्य आने पर शरीर जड़ सा हो जाता है। पृथ्वी भी

Scanned with CamScanner

जड़ता स्वभाव वाली है। अत: यह पृथ्वी का भाग हैं।

(१६-२०) **जल के पाँच तत्त्व:**—लाल, स्वेद, मूत्र, शुक्र और शोणित। उनमें से—

(१६) **लाल :-** जल में **आकाश का भाग** मिला है। मुँह में का लाल ऊँचा-नीचा होता है और आकाश भी ऊँचा-नीचा प्रतीत होता है। अत: यह आकाश का भाग है।

(१७) **स्वेद :-** जल में **वायु का भाग** मिला है। पसीना श्रम करने से होता है और वायु भी पङ्खा आदि द्वारा श्रम करने से होता है। अत: यह वायु का भाग है।

(१८) **मूत्र :-** जल में **तेज का भाग** मिला है। मूत्र गर्म है और तेज भी गर्म है। अत: यह तेज का भाग है।

(१९) **शुक्र :- जल का मुख्य भाग** है। शुक्र श्वेत वर्ण है और गर्भ का हेतु है। जल भी श्वेत वर्ण है और वृक्ष का हेतु है। अत: यह जल का मुख्य भाग है।

(२०) **शोणित (रक्त) :-** जल में **पृथ्वी का भाग** मिला है। शोणित लाल रङ्ग वाला है और कहीं-

Scanned with CamScanner

कहीं पृथ्वी भी लाल रंग वाली है। अतः यह पृथ्वी का भाग है।

(२१-२५) **पृथ्वी के पाँच तत्त्वः**—रोम, त्वचा, नाड़ी माँस और अस्थि। उनमें से—

(२१) **रोम**[४९] **:-** पृथ्वी में **आकाश का भाग** मिला है। काटने से पीड़ा होती नहीं अतः रोम शून्य हैं। और आकाश भी शून्य है। अतः यह आकाश का भाग है।

(२२) **त्वचा :-** पृथ्वी में **वायु का भाग** मिला है। त्वचा से शीत-उष्ण, कठिन-कोमल स्पर्श मालूम होता है और वायु भी स्पर्श गुण वाला है। अतः यह वायु का भाग है।

(२३) **नाड़ी :-** पृथ्वी में **तेज का भाग** मिला है। नाड़ी से ताप (ज्वर) की परीक्षा होती है और तेज भी ताप रूप है। अतः यह तेज का भाग है।

(२४) **माँस :-** पृथ्वी में **जल का भाग** मिला है। माँस गीला है और जल भी गीला है। अतः यह जल का भाग है।

---

४९ शरीर के बालों को रोम कहते हैं। सिर के बालों को केश कहते है। उनका 'रोमों' में अन्तर्भाव है।

Scanned with CamScanner

(२५) **अस्थि**[५०] **:-** पृथ्वी का मुख्य भाग है। अस्थि कठिन (कठोर) है और पीत वर्ण है और पृथ्वी भी कठिन और कहीं कहीं पीत (पीले) रङ्ग वाली है। अत: यह पृथ्वी का मुख्य भाग है।

इस रीति से स्थूल देह में पच्चीस तत्त्व रहते हैं।

४७ (ख) प्रश्न— **पच्चीस तत्त्व जानने का क्या प्रयोजन है ?**

उत्तर— १) पच्चीस तत्त्व मैं नहीं।
२) ये पच्चीस तत्त्व मेरे नहीं।
३) ये पच्चीस तत्त्व पञ्चीकृत पञ्च महाभूतों के हैं।
४) इन पच्चीस तत्त्वों को जानने वाला मैं द्रष्टा, घट द्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा (अलग) हूँ।

ऐसा निश्चय करना पच्चीस तत्त्व जानने का प्रयोजन है।

४८ प्रश्न— **'पच्चीस तत्त्व मैं नहीं और ये मेरे नहीं', यह किस रीति से जानना ?**

उत्तर— (१-५) आकाश के पाँच तत्त्वों में :

---

५० नखों और दाँतों का 'हड्डी' में अन्तर्भाव है।

Scanned with CamScanner

शोक होता है, तब भी मैं जानता हूँ और शोक नहीं होता, तब उसके अभाव[५१] को भी मैं जानता हूँ ; इसलिए

१) यह शोक मैं नहीं।

२) यह शोक मेरा नहीं।

३) यह शोक आकाश का है।

४) मैं इस शोक का जानने वाला द्रष्टा घट द्रष्टा की भाँति, इससे न्यारा हूँ। ऐसे शोक मैं नहीं और मेरा नहीं, यह जानना।

(नोट:— अन्य चौबीस तत्त्वों को भी इसी प्रक्रिया (विधि) से जानना।)

उपरोक्त रीति से 'ये पच्चीस तत्त्व मैं नहीं और मेरे नहीं', यह जानना।

---

५१ (१) कार्य की उत्पत्ति से पहिले उसका अपने कारण में अभाव, प्रागभाव है। (जैसे घट का अपनी उत्पत्ति से पहिले अपने कारण मिट्टी में अभाव ; अपनी उत्पत्ति से पहिले, जगत् का माया में अभाव)।

(२) नाश के अनन्तर के अभाव को प्रध्वंसाभाव कहते हैं। (जैसे फूटे हुए घड़े की अपनी ठीकरियों में उसी घड़े का अभाव)।

(३) तीनों कालों में बरतने वाला अभाव, अत्यन्ताभाव है।

(४) अन्य वस्तु से अन्य वस्तु का भेद, अन्योन्याभाव है। इस रीति से अभाव चार प्रकार का है।

Scanned with CamScanner

४९ प्रश्न— **'पच्चीस तत्त्व मैं नहीं और मेरे नहीं' यह जानने से क्या निश्चय हुआ ?**

उत्तर— स्थूलदेह और उसके धर्म :- (१) नाम, (२) जाति, (३) आश्रम, (४) वर्ण, (५) सम्बन्ध, (६) परिमाण और (७) जन्म-मरण इत्यादि भी 'मैं नहीं और मेरे नहीं', यह निश्चय हुआ।

५० प्रश्न— **(१) 'नाम मैं नहीं और मेरा नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) जन्म के पहिले नाम नहीं था।

(२) जन्म के बाद नाम कल्पित है। और

(३) शरीर के भिन्न-भिन्न अङ्गों में विचार करने से नाम मिलता ही नहीं।

इसलिए— यह नाम (१) मैं नहीं, (२) मेरा नहीं, (३) स्थूलदेह में कल्पित है और (४) मैं इसका जाननेवाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

ऐसे 'नाम मैं नहीं और मेरा नहीं', यह जानना।

५१ प्रश्न— **(२) 'जाति अर्थात् वर्ण मैं नहीं और मेरी नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) ब्राह्मण आदि जाति स्थूलदेह के धर्म हैं, सूक्ष्मदेह और आत्मा के धर्म नहीं। सूक्ष्मदेह और आत्मा

Scanned with CamScanner

तो पूर्व देह, वर्तमान देह और भावी देह में एक ही होते हैं; किन्तु जाति तो इन तीनों देहों में भिन्न-भिन्न हो सकती है। अत: जाति स्थूलदेह का ही धर्म है, लिङ्गदेह और आत्मा का धर्म नहीं है। और

(२) शरीर के अङ्गों में विचार कर देखें तो स्थूलदेह में जाति मिलती ही नहीं।

इसलिए— यह जाति (१) मैं नहीं, (२) मेरी नहीं, (३) स्थूलदेह में आरोपति (कल्पित) है और (४) मैं इसका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

ऐसे 'जाति मैं नहीं और मेरी नहीं, यह जानना।

५२ प्रश्न— **(३) 'आश्रम मैं नहीं और मेरा नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ और संन्यास- ये चारों स्व स्व आश्रमानुसार कर्म कराने के लिए स्थूलदेह में आरोपित माने हैं। और

(२) सो भी सभी मनुष्यों में नहीं पाये जाते, केवल वर्णाश्रम मानने वालों में ही पाये जाते हैं।

इसलिए— ये आश्रम (१) मैं नहीं, (२) मेरे नहीं, (३) स्थूलदेह में आरोपित हैं और (४) मैं इनका जानने

Scanned with CamScanner

वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

ऐसे 'आश्रम मैं नहीं और मेरे नहीं', यह जानना।

५३ प्रश्न— **(४) 'वर्ण अर्थात् रङ्ग मैं नहीं और मेरे नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) गौर, श्याम, रक्त, पीत इत्यादि रङ्ग स्थूलदेह में प्रत्यक्ष दीखते हैं। और

(२) यह स्थूलदेह मैं नहीं।

इसलिए— ये रङ्ग (१) मैं नहीं, (२) मेरे नहीं,

(३) स्थूलदेह के हैं और

(४) मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

ऐसे 'वर्ण मैं नहीं और मेरे नहीं', यह जानना।

(नोट:-'वर्ण' पद रङ्ग व जाति दोनों का द्योतक है।)

५४ प्रश्न— **(५) 'सम्बन्ध मैं नहीं और मेरे नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) पिता-पुत्र, गुरु-शिष्य, पति-पत्नि स्वामी-सेवक इत्यादि स्थूलदेहों के परस्पर होने वाले प्रसिद्ध सम्बन्ध सामान्य ज्ञान से मिथ्या माने हैं।

(२) विचार करने से मिलते नहीं। और

(३) मैं स्थूलदेह से न्यारा असङ्ग हूँ।

Scanned with CamScanner

इसलिए— ये सम्बन्ध (१) मैं नहीं, (२) मेरे नहीं,
(३) स्थूलदेह में आरोपित हैं और
(४) मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

ऐसे 'सम्बन्ध मैं नहीं और मेरे नहीं', यह जानना।

५५ प्रश्न— **(६) 'सम्बन्ध मैं नहीं और मेरे नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) लम्बा-टूङ्का (ठिगना), जाड़ा-पतला, टेढ़ा-सूधा इत्यादि आकार भी स्थूलदेह में प्रसिद्ध रूप से दीखते हैं। और

(२) मैं स्थूलदेह से न्यारा निराकार हूँ।

इसलिए— ये आकार (१) मैं नहीं, (२) मेरे नहीं,
(३) स्थूलदेह के हैं और
(४) मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

ऐसे 'परिमाण मैं नहीं और मेरे नहीं', यह जानना।

५६ प्रश्न— **(७) 'मैं जन्म-मरण वाला नहीं और मेरा जन्म-मरण होता नहीं', यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) आत्मा का जन्म मानें तो आत्मा अनित्य होगा। यह वार्ता मीमाँसक आदि सभी परलोकवादी

Scanned with CamScanner

आस्तिकों को भी इष्ट (मान्य) नहीं है ; क्योंकि आत्मा यदि उत्पत्ति वाला होवे तो नाश वाला भी होवेगा।

इसलिए— (क) पूर्व जन्म में नहीं किए हुए कर्म से सुख-दुःख का भोग (अकृताभ्यागम दोष)। और

(ख) इस जन्म में किए हुए कर्म का भोग बिना नाश (कृतनाश दोष)।

ये दो दूषण होवेंगे।

इसलिए कर्मवादी के मत से आत्मा को कर्त्ता-भोक्ता मानें, तब भी **जन्म-मरण रहित ही मानना होगा।**

(२) आत्मा के जन्म का कोई कारण भी सम्भव नहीं, क्योंकि आत्मा का जो कारण हो, सो आत्मा से भिन्न ही होना चाहिए। और

(क) आत्मा से भिन्न, अनात्मा नाम-रूप वाला है और वह आत्मा में, रज्जू में सर्प की भाँति, कल्पित है। इसलिए कारण बनता नहीं।

(ख) ब्रह्म तो, घटाकाश के स्वरूप महाकाश की भाँति, आत्मा का स्वरूप ही है,उससे भिन्न नहीं। इसलिए वह कारण नहीं बनता।

Scanned with CamScanner

अत: **आत्मा का जन्म नहीं।** और

(३) जन्म नहीं, तो **आत्मा का मरण भी नहीं।**

(४) इस प्रकार आत्मा में जन्म-मरण का **अभाव** है।

फलत: जायते (जन्म), अस्ति (प्रकटता), वर्धते (वृद्धि), विपरिणमते (विपरिणाम), अपक्षीयते (अपक्षय) और नश्यति (मरण)—इन **षट् विकारों से भी आत्मा रहित है।**

(नोट:— सप्तम् कला, १५८ प्रश्न में विवरण देखें।)

इसलिए— (१) मैं जन्म-मरण वाला नहीं।

(२) मेरा जन्म-मरण होता नहीं।

(३) ये जन्म-मरण स्थूलदेह का है और प्रारब्ध कर्मों से होता है। और

(४) मैं इन जन्म-मरणों को जाननेवाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

ऐसे 'मैं जन्म-मरण वाला नहीं और मेरा जन्म-मरण होता नहीं', यह जानना।

५५ प्रश्न— **पञ्च महाभूतों की निवृत्ति में दृष्टान्त क्या है ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर– दृष्टान्त:—किसी को **भूत** लगने पर **धानक** (पारधी या झाड़ागर) को बुलाते हैं। वह **डमरू** बजाकर, लवणादि **पाँच** वस्तुएँ मिलाकर, उसका **बलिदान** देता हैं। तब भूत की निवृत्ति हो जाती है।

सिद्धान्त:—ऐसे ही आकाशादि पञ्च **महाभूत** शरीर रूप होकर जीव को लगे हैं। उनकी निवृत्ति के लिये शिष्य ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप **धानक** की विधिपूर्वक[५२] शरण में जाकर, वेद शास्त्ररूप **डमरू** सुनकर पूर्वोक्त पच्चीस तत्त्वों में से एक-एक भूत को अपना-अपना भाग, पाँच-पाँच तत्त्वरूप बलिदान (अर्पण) करे। इस रीति से 'मैं इन पच्चीस तत्त्वों का द्रष्टा हूँ' ऐसा निश्चय करने से इन **पञ्च महाभूतों की अत्यन्त निवृत्ति**[५३] हो जाती है।

---

५२ विवेकादि शुभ गुण सहित मोक्ष की इच्छा वाला अधिकारी-
(१) हाथ में भेंट लेकर गुरु की शरण होकर,
(२) साष्टाङ्ग नमस्कार करके,
(३) 'भो भगवन् ! मेरे को ब्रह्म-विद्या का उपदेश करो' ऐसा कहकर 'बन्ध, मोक्ष, अविद्या व विद्या किसको कहते हैं ?' इत्यादि प्रश्न करे। और
(४) गुरु की प्रसन्नता के लिये तन, मन, धन और वाणी अर्पण करकेसेवा करे।
यह ब्रह्म-विद्या के ग्रहण की विधि है।

Scanned with CamScanner

इस रीति से स्थूलदेह का मैं द्रष्टा हूँ।
(नोट—पञ्चीकृत पञ्च महाभूतों के तमोगुण के मिले हुए भाग से स्थूलशरीर की रचना होती है।)

(२) सूक्ष्मदेह का मैं द्रष्टा हूँ—इसका विवेचन-

५८ प्रश्न— **सूक्ष्मदेह क्या है ?**

उत्तर— अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतों के सत्रह तत्त्वों का **सूक्ष्मदेह** है।

५९ प्रश्न— **सूक्ष्मदेह के सत्रह तत्त्व कौन से हैं ?**

उत्तर— (१-५) पाँच ज्ञान-इन्द्रियें, (६-१०) पाँच कर्म-इन्द्रियें, (११-१५) पाँच प्राण, (१६) मन और (१७) बुद्धि—ये सत्रह तत्त्व हैं।

६० प्रश्न— **पाँच ज्ञान-इन्द्रिये[५४] कौनसी हैं ?**

उत्तर— (१-५) श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा या रसना और घ्राण ये **पाँच ज्ञान-इन्द्रियें** हैं। ये क्रमशः कान, चमड़ी, आँख, जीभ और नाक रूप स्व-स्व स्थान में रहती

---

५३ निवृत्त हो जाने के उपरान्त फिर दुबारा लगे नहीं, यह **अत्यन्त निवृत्ति** है।

५४ ज्ञान के साधन वाली इन्द्रियें, **ज्ञान-इन्द्रियें** हैं।

Scanned with CamScanner

हुई, स्व-स्व **विषय का ज्ञान करने वाली शक्तियाँ** है।

६१ प्रश्न— **पाँच कर्म-इन्द्रियें**[५५] **कौनसी हैं ?**

उत्तर— (६-१०) वाक्, पाणि, पाद, उपस्थ और गुद— ये **पाँच कर्म-इन्द्रियें** क्रमशः जीभ, हाथ, पाँव, मूत्रेन्द्रिय और गुदारूप स्थानों में रहती हुई स्व-स्व **विषय के प्रति कर्म करने वाली शक्तियाँ है।**

६२ प्रश्न— **पाँच प्राण कौन से हैं ?**

उत्तर— (११-१५) प्राण, अपान, समान, उदान और व्यान— ये पाँच प्राण हैं।

६३ प्रश्न— **मन किसको कहते हैं ?**

उत्तर— (१६) सङ्कल्प-विकल्प रूप वृत्ति को मन कहते हैं। 'करूँ, नहीं करूँ' इसका आकार है।

६४ प्रश्न— **बुद्धि किसको कहते हैं ?**

उत्तर— (१७) निश्चयरूप वृत्ति को **बुद्धि** कहते हैं।

६५ प्रश्न— **अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत किसे कहते हैं?**

उत्तर— जिन भूतों का पूर्व कही रीति से पञ्चीकरण नहीं हुआ है,उन भूतों को अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूत कहते हैं। इन्हीं को सूक्ष्म महाभूत, या तन्मात्रा भी कहते है ।

---

५५ कर्म के साधन वाली इन्द्रियें, **कर्म-इन्द्रियें** है।

Scanned with CamScanner

६६ प्रश्न— **अपञ्चीकृत पञ्च महाभूतों के सत्रह तत्त्व कैसे जानना ?**

उत्तर— अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों के सत्त्वगुण-भाग से ज्ञानेन्द्रियों की एवं मन-बुद्धिरूपी अंत:करण की, रजोगुण-भाग से कर्मेन्द्रियों एवं पाँचों प्राणों की और तमोगुण-भाग से शब्द, स्पर्श, रूप, रस व गन्ध पाँचों विषयों की उत्पत्ति हुई है। इन विषयों के स्व स्व व्यवहार हेतु दो दो तत्त्व होते हैं-एक सत्त्वगुण का भाग, ज्ञान करने वाली ज्ञान-इन्द्रिय और दूसरा रजोगुण का भाग, कर्म करने वाली कर्म-इन्द्रिय। इन दोनों इन्द्रियों की नीचे लिखे अनुसार परस्पर मित्रता समझ लेनी चाहिये।

(१) **आकाश के सत्त्वगुण**[५६] का भाग **श्रोत्र** शब्द **सुनता** है। यह **ज्ञान-इन्द्रिय** है।

(२) **आकाश के रजोगुण** का भाग **वाक्**, शब्द **बोलती** है। यह **कर्म-इन्द्रिय** है। इन दोनों की परस्पर मित्रता है।

(३) **वायु के सत्त्वगुण** का भाग **त्वचा, स्पर्श को ग्रहण** करती है। यह **ज्ञान-इन्द्रिय** है।

---

५६ सब पदार्थों में सत्त्व, रज और तम तीनों गुण वर्तते हैं।

Scanned with CamScanner

(४) **वायु के रजोगुण** का भाग **पाणि**, स्पर्श योग्य पदार्थ के **व्यवहार का निर्वाह** करता है। यह **कर्म-इन्द्रिय** है।

इन दोनों की परस्पर मित्रता है।

(५) **तेज के सत्त्वगुण** का भाग **चक्षु, रूप ग्रहण** करता है। यह **ज्ञान-इन्द्रिय** है।

(६) **तेज के रजोगुण** का भाग **पाद** रूप की ओर **गमन** करता है। यह **कर्म-इन्द्रिय** है।

इन दोनों की परस्पर मित्रता है।

(७) **जल के सत्त्वगुण** का भाग (रसना) **जिह्वा, रस ग्रहण** करती है। यह **ज्ञान-इन्द्रिय** है।

(८) **जल के रजोगुण** का भाग **उपस्थ, रस त्याग** करता है। यह **कर्म इन्द्रिय** है।

इन दोनों की परस्पर मित्रता है।

(९) **पृथ्वी के सत्त्वगुण** का भाग **घ्राण, गन्ध ग्रहण** करता है। यह **ज्ञान-इन्द्रिय** है।

(१०) **पृथ्वी के रजोगुण** का भाग **गुद, गन्ध (मल) त्याग** करता है। यह **कर्म-इन्द्रिय** है।

इन दोनों की परस्पर मित्रता है।

इस प्रकार इन विषयों के व्यवहार हेतु पाँच ज्ञानेन्द्रियें तथा पाँच कर्मेन्द्रियें, कुल दस तत्त्व बने।

Scanned with CamScanner

पाँच प्राण और मन बुद्धि में:-

(११-१५) इन **पञ्चभूतों के रजोगुण** के भाग मिलकर पाँच प्राण बने।

(१६-१७) इन **पञ्चभूतों के सत्त्वगुण** के भाग मिलकर **अन्त:करण** बना। यही अन्त:करण मन और **बुद्धिरूप** है। यहाँ चित्त का 'मन' में और अहंकार का 'बुद्धि' में अन्तर्भाव है।

ऐसे अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों के कार्य सत्रह तत्त्व जानना।

६७ प्रश्न— **सत्रह तत्त्व समझने का क्या फल है ?**

उत्तर— ये सत्रह तत्त्व 'मैं नहीं ओर मेरे नहीं', अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों के हैं। यह **सत्रह तत्त्वों के समझने का फल है।**

६८ प्रश्न— **ये सत्रह तत्त्व 'मैं नहीं और मेरे नहीं', यह किस कारण से जानना ?**

उत्तर— इन सत्रह तत्त्वों का मैं जाननेवाला, प्रकाशक आत्मा हूँ। 'जो जिसको जानता है, वह उससे न्यारा होता है', यह नियम है। इस कारण से ये सत्रह तत्त्व मैं नहीं और मेरे नहीं, यह जानना।

६९ प्रश्न— **आत्मा के प्रकाशने में दृष्टान्त क्या है ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— दृष्टान्तः—(१) **नृत्यशाला** व उसमें स्थित (२) **दीपक**, (३) **राजा**, (४) **प्रधान**, (५) **अनुचर**, (६) **नायिका**, (७) **बाजंत्री**, (८) अन्य **सभा के लोग**, (९) सभी बैठे होवें, तभी वह दीपक प्रकाशता है और (१०) जब सब उठकर बाहिर चले जावें, तब शून्य (खाली) गृह को भी प्रकाशता है।

सिद्धान्तः— ऐसे ही (१) स्थूलदेहरूप **नृत्यशाला**, व उसमें (२) साक्षीरूप जो मैं **दीपक** हूँ सो, (३) चिदाभासरूप **राजा**, (४) मनरूप **प्रधान** (मन्त्री), (५) पाँच प्राणरूप **अनुचर** (सेवक), (६) बुद्धिरूपी **नायिका**, (७) दस इन्द्रियरूपी **बाजंत्री** (बाजे बजाने वाले), (८) शब्दादि पाँच विषयरूप **सभा के लोग** ; (९) ये सब जाग्रत या स्वप्न समय में होवें, तब मैं साक्षी इन सब को प्रकाशता हूँ और (१०) सुषुप्ति समय में ये नहीं होवें तब इनके अभाव को भी प्रकाशता हूँ।

आत्मा के प्रकाशने में उक्त दृष्टान्त समझना।

७० प्रश्न— **यह कैसे समझना ?**

उत्तर— (१) **जाग्रत अवस्था में** इन्द्रियाँ और अन्तःकरण, इन दोनों की सहायता से मैं प्रकाशता हूँ। जानता हूँ।

Scanned with CamScanner

(२) **स्वप्न अवस्था में** बिना इन्द्रियों के, केवल अन्त:करण की सहायता से मैं प्रकाशता हूँ। और

(३) **सुषुप्ति अवस्था में** इन्द्रियाँ और अन्त:करण इन दोनों की सहायता बिना, केवल मैं ही प्रकाशता हूँ।

यह ऐसे समझना। यहाँ आत्मा की **प्रकाशक** संज्ञा में **साक्षी, द्रष्टा** व **जानने वाला (ज्ञाता)** का अन्तर्भाव है।

७१ प्रश्न— **इसमें और दृष्टांत क्या है ?**

उत्तर— दृष्टांत:— (१) पाँच छिद्र वाले **घट** के भीतर **पात्र** में **तेल** और **बत्ती** सहित **दीपक** जलता है, (२) वह दीपक, पात्र, तेल, बत्ती, घट के भीतर के अवयव और घट के छिद्रों को प्रकाशता हुआ, घट के बाहिर छिद्रों के सन्मुख क्रम से धरे (रखे) हुए वीणा, पुष्पों का गुच्छा, मणि, रसपात्र और अत्तर (इत्र) की शीशी, इन सबको छिद्रों द्वारा प्रकाशता है ; (३) वही दीपक, तेज तत्त्व से व्यापक होकर, सूर्यरूप से सारे ब्रह्माण्ड को प्रकाशता है और (४) वही दीपक, प्रकाशरूप विशेष व्यवहार को त्याग कर, महातेजमय सामान्य रूप से सर्वव्यापी है।

Scanned with CamScanner

सिद्धान्त:— ऐसे ही (१) पाँच ज्ञानेन्द्रिय-रूप छिद्र वाले स्थूलदेहरूप घट के भीतर हृदयकमलरूप पात्र है। उसमें मनरूप तेल, बुद्धिरूपी बत्ती है। उस पर आरूढ़ आत्मारूप दीपक है। (२) वह दीपक हृदयरूप पात्र, मनरूप तेल, बुद्धिरूपी बत्ती, देह के भीतर के अवयवों और इन्द्रियरूप छिद्रों, इन सभी को प्रकाशता (जानता) हुआ इन्द्रियों से सम्बन्ध वाले शब्दादि विषयों को भी इन्द्रियों द्वारा प्रकाशता है। (३) वही दीपक माया की व्यापकता द्वारा ईश्वररूप से ब्रह्माण्ड आदि सर्व बाह्य प्रपञ्च को प्रकाशता है और (४) वही दीपक प्रकाश व्यवहार को त्याग कर सामान्य चैतन्य ब्रह्म-रूप से सर्वव्यापी है।

यह इसमें और दूसरा दृष्टान्त[५७] है।

७२ प्रश्न— **ऐसा कहने से क्या निर्णय हुआ ?**

उत्तर— ये कहे हुए सत्रह तत्त्व मैं नहीं, मेरे नहीं, पञ्चमहाभूतों के हैं। मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ। यह निर्णय हुआ।

---

५७ इस विषय में यज्ञशाला का अन्य दृष्टान्त भी है, जो आगे सातवीं कला में, उपद्रष्टा-रूप आत्मा के विशेषण के प्रसङ्ग में कहा गया है।

Scanned with CamScanner

७३ प्रश्न— **सत्रह तत्त्व मैं नहीं और मेरे नहीं, यह कैसे समझना ?**

उत्तर— (१-५) पाँच ज्ञानेन्द्रियों में : (१) श्रोत्र :

(क) शब्द सुने उसको भी मैं जानता हूँ। और

(ख) न सुने उसके अभाव को भी मैं जानता हूँ।

इसलिए यह श्रोत्र मैं नहीं और मेरा नहीं, यह आकाश का है। मैं इसका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

इसी प्रकार (२) **त्वचा** वायु की, (३) **चक्षु** तेज का (४) रसना **(जिह्वा)** जल की और (५) **घ्राण** पृथ्वी का है। मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ। ऐसा सर्वत्र समझ लेना।

(६-१०) **पाँच कर्मेन्द्रियों में : (६) वाक् (वाणी) :-**

(क) बोले उसको भी मैं जानता हूँ। और

(ख) न बोले उसके अभाव को भी मैं जानता हूँ।

इसलिए यह वाक् मैं नहीं और मेरा नहीं, यह आकाश की है। मैं इसका जाननेवाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

इसी प्रकार (७) **पाणि** (हस्त=हाथ) वायु के, (८) **पाद** (पैर) तेज के, (९) **उपस्थ** (मूत्रेन्द्रिय) जल का और (१०) **गुद** (गुदा) पृथ्वी का है।

Scanned with CamScanner

मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

(११-१७) **प्राण और अन्त:करण में:-**

(११-१५) **पाँच प्राण** :- (क) अपनी-अपनी क्रिया करें, उनको भी मैं जानता हूँ। और

(ख) नहीं करें, उनके अभाव को भी मैं जानता हूँ।

इसलिए ये पाँचों प्राण मैं नहीं और मेरे नहीं, ये मिले हुए पञ्च महाभूतों के रजोगुण भाग के हैं। मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

इसी प्रकार (१६) **मन** और (१७) **बुद्धि**, मिले हुए पञ्च महाभूतों के सत्त्वगुण भाग के हैं। ये अपना-अपना कार्य करें अथवा न करें, उसको मैं जानता हूँ।

अत: मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

इस रीति से ये सत्रह तत्त्व मैं नहीं और मेरे नहीं, यह समझना।

७४ प्रश्न— **ऐसे कहने से क्या निश्चय हुआ ?**

उत्तर— चिदाभास सहित सत्रह तत्त्वों वाला लिङ्ग देह और उसके धर्म (१) पुण्य-पाप का कर्त्तापना (अन्त:करण के धर्म), (२) उनका फल, सुख-दु:ख का भोक्तापना

Scanned with CamScanner

(चिदाभास के धर्म), (३) लोक-परलोक में गमनागमन (चिद्-जड़ ग्रन्थि-आत्मक लिङ्गदेह में धर्म), (४) (क) वैराग्य, शम-दमादि, (ख) राग द्वेष, हर्षशोकादि और (ग) निद्रा, आलस्य, प्रमाद आदि (अंत:करण की सात्त्विकी, राजसी, तामसी वृत्तियाँ), (५) क्षुधा-पिपासा (प्राणों के धर्म) (६) अन्धपना, बहरापना, गूंगापना, पंगुपना आदि एवं मन्दपना, पटुपना (इन्द्रियों के धर्म) इत्यादि सभी मैं नहीं और ये मेरे नहीं—यह निश्चय हुआ।

७५ प्रश्न— **पुण्य-पाप का कर्त्ता और उनके फल सुख-दु:ख का भोक्ता मैं नहीं और कर्त्तापना व भोक्तापना मेरे धर्म नहीं, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— विकारी वस्तु के क्रियावान् होने से उसे कर्त्ता कहते हैं। मैं निर्विकार कूटस्थ होने से क्रिया का आश्रय (आधार) नहीं हूँ। इसलिए में पुण्य-पाप रूप क्रिया का कर्त्ता नहीं ; और जो कर्त्ता नहीं, सो भोक्ता भी होता नहीं। अत: ये धर्म अन्त:करण के है, मेरे नहीं। मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ। यह ऐसे जानना। (कला के अंत में 'आत्मा अकर्त्ता-अभोक्ता है' लेख देखें)

७६ प्रश्न— **लोक-परलोक में गमन-आगमन मेरे धर्म**

Scanned with CamScanner

नहीं, यह कैसे जानना ?

उत्तर— अन्त:करण (लिङ्ग-देह) परिच्छिन्न है। इसका प्रारब्ध कर्म के बल से, गमन-आगमन सम्भव है। मैं आकाश की भाँति व्यापक हूँ ; अत: गमन व आगमन मेरे धर्म नहीं। यह ऐसे जानना।

७७ प्रश्न— **सात्त्विकी, राजसी और तामसी वृत्तियाँ मैं नहीं और मेरे धर्म नहीं, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— दृष्टान्त:—जैसे (१) किसी **महल** में बैठे, (२) **राजा** के विनोद के लिये (३) कोई **कारीगर** (४) **कारञ्जा** (फव्वारा) बनाता है। (५) उस कारञ्जे की कल खोलने से जल की **तीन धाराएँ** निकलती हैं। (६) उन तीन धाराओं के भीतर प्रवाह रूप से **अनन्त धाराएँ** निकलती हैं और (७) उस कल के बन्द करने पर सभी धाराएँ बन्द होकर अकेला राजा ही **बाकी रहता** है।

सिद्धान्त:— वैसे ही (१) स्थूल शरीर रूप **महल** में, (२) अधिष्ठान कूटस्थरूप से स्थित परमात्मारूप **राजा** है। उसके विनोद के लिये (३) माया (अज्ञान) रूप **कारीगर** ने, (४) अन्त:करणरूप **कारञ्जा** (बनाया) है। (५) जाग्रत् एवं स्वप्न में उस अन्त:करण की प्रारब्धरूप कल खोलने से तीन गुण की प्रवाहरूप तीन धाराएँ निकलती हैं। (६)

Scanned with CamScanner

उन तीन धाराओं के भीतर से **अगणित वृत्तियाँ** उठती है। और (७) सुषुप्ति में प्रारब्ध-कर्मरूप कल के बन्द होने से उन वृत्तियों के भाव-अभाव का प्रकाशक, आनन्द-स्वरूप केवल परमात्मारूप राजा **बाकी रहता** है। वही मैं हूँ। इसलिए ये सात्त्विकी, राजसी और तामसी वृत्तियाँ मैं नहीं और मेरे धर्म नहीं, ये अन्त:करण की हैं। मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ। यह ऐसे जानना।

७७ प्रश्न— **अन्धपना-आदि और मन्दपना व पटुपना मैं नहीं और मेरे नहीं, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) नेत्रादि सभी इन्द्रियें स्व-स्व विषयों को सर्वथा ही ग्रहण नहीं करें ; यह इन्द्रियों का अन्धपना-आदि* है। इन सबको भी मैं जानता हूँ।

(*आदि से श्रोत्र का बहरापना, वाक् का गूंगापना, पाद का पंगुपना इत्यादि समझना)

(२) स्व-स्व विषयों को स्वल्प ग्रहण करें, यह इनका **मन्दपना** है। इसको भी मैं जानता हूँ। और

(३) स्व-स्व विषयों को स्पष्ट ग्रहण करें, यह इनका पटुपना है। इसको भी मैं जानता हूँ।

इसलिए ये मैं नहीं और ये मेरे नहीं ; ये इन्द्रियों के

Scanned with CamScanner

धर्म हैं। मैं इनका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इनसे न्यारा हूँ।

इस रीति से सूक्ष्म देह का मैं द्रष्टा हूँ।

(३) कारण देह का मैं द्रष्टा हूँ—इसका विवेचन

७९ प्रश्न— **कारण देह क्या है ?**

उत्तर— (१) पुरुष सुषुप्ति से उठकर कहता है कि 'आज बड़ी गहरी नींद आई, मैंने कुछ भी नहीं जाना'[५८], अत: सुषुप्ति में **अज्ञान** है। ऐसा सिद्ध होता है।

(२) जाग्रत में भी 'मैं ब्रह्म को जानता नहीं', 'मेरी मुझको खबर नहीं', 'मैं यह नहीं जानता', 'मैं वह नहीं जानता' इत्यादि अनुभव का विषय **अज्ञान** है। और

(३) स्वप्न का कारण भी निद्रारूप **अज्ञान** है।

यह **अज्ञान**[५९] ही **कारण देह** है।

---

५८ सुषुप्ति से जागने पर पुरुष को 'मैंने निद्रा में कुछ नहीं जाना', ऐसा ज्ञान होता है। वह अनुभवरूप नहीं है, किन्तु सुषुप्ति काल में अनुभव किए हुए अज्ञान की स्मृति है। इस स्मृति का विषय सुषुप्ति काल का अज्ञान है।

५९ (१) अज्ञान स्थूल-सूक्ष्म देह का हेतु है, इसलिए इनको **कारण** कहते हैं। और

(२) तत्त्वज्ञान से इस अज्ञान का दाह होता है, इसलिए इसको **देह** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

८० प्रश्न— **कारण देह मैं नहीं और मेरा नहीं, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— 'मैं जानता हूँ' और 'मैं नहीं जानता हूँ' अन्त:करण की इन वृत्तियों को, ज्ञात-अज्ञात वस्तुरूप विषय सहित, मैं जानता हूँ। इसलिए यह कारणदेह मैं नहीं और मेरा नहीं। यह कारणदेह अज्ञान[६०] का है। मैं इसका जानने वाला द्रष्टा, घटद्रष्टा की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

कारण देह की प्रक्रिया को ऐसे जानना।
इस रीति से कारण देह का मैं द्रष्टा हूँ।

इति श्री विचार चन्द्रोदये देह त्रय दृष्ट वर्णन नामिका तृतीय कला समाप्त: ॥३॥

गर्भ-स्थान आश्रित अन्धकार, गर्भ को और निज-मन्दिर आश्रित अन्धकार निज-विग्रह को ढ़क लेता है। ऐसे ही ब्रह्म आश्रित अज्ञान, ब्रह्म को ही ढ़क लेता है।

६० **कारण देह स्वयं अज्ञान** है। उसको 'अज्ञान का है' (अज्ञान जनित), ऐसा कहने से वही प्रयोजन है जो राहु को ही 'राहु का मस्तक' कहने से होता है।

Scanned with CamScanner

मैं देहातीत आत्माभिन्न ब्रह्म हूँ।

स्व-अन्त:करण सहित चिदाभास कर्त्ता, भोक्ता, सावयव व विकारी है। मैं निरवयव व निर्विकार हूँ। अत: अंत:करण सहित चिदाभास से भिन्न, मैं शुद्धात्मा ही हूँ। मैंने उपनिषद्गत महावाक्य-प्रमाण से स्व-आत्मा को ब्रह्मरूप से जान लिया है।

स्थूलदेह पञ्चभौतिक है और मैं इसको त्याग कर परलोक गमन करता हूँ। अत: यह देह मैं नहीं और यह मेरा नहीं।

सुषुप्तिगमन काल में, सूक्ष्मदेह भी साथ रहता नहीं ; केवल अज्ञान सहित मैं ही रहता हूँ। इसमें प्रमाण 'मैं सुख से सोया, मैंने कुछ नहीं जाना' इत्यादि जाग्रत-कालीन स्मृति है। अत: मैं सूक्ष्मदेहरूप नहीं और यह मेरा नहीं। यह अपञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों का है।

सविकल्प समाधि अवस्था में अज्ञानरूप कारणदेह भी साथ रहता नहीं; केवल साक्षीरूप से स्वयं मैं रहता हूँ, इसमें प्रमाण (१) मेरा समाधिकालीन स्व-आत्मानन्द का अनुभव है। पुन: (२) 'मैं ब्रह्म को नहीं जानता, मेरी मुझ को खबर नहीं' इत्यादि अज्ञान के व्यवहार सभी दृश्य हैं। 'मैं इन सभी का द्रष्टा होने से इनसे भिन्न हूँ', यह भी प्रमाण है।

Scanned with CamScanner

अतः मैं अज्ञानरूप कारणदेह भी नहीं और यह मेरा नहीं। यह अज्ञान स्वरूप ही है।

इस प्रकार, उपरोक्त यौक्तिक प्रत्यक्ष प्रमाणों द्वारा मैं शुद्ध आत्मा, साक्षीस्वरूप, द्रष्टा ही हूँ।

निर्विकल्प अवस्था में महावाक्य प्रमाण से ब्रह्मरूपेण स्थिति होनेपर सविकल्प समाधि भी साथ रहती नहीं; प्रमाणातीत केवल मैं ही आत्माभिन्न शुद्ध ब्रह्मरूप से स्व-महिमा में स्थित हूँ। उपरोक्त निर्विकल्प स्थिति में प्रमाण, निर्विकल्प अवस्था से बाहिर आने पर, 'एतावंतंकालंसमाहितो भवेत्' स्मृति है।

आत्मा अकर्त्ता-अभोक्ता है :

इस देह में चिदाभासयुक्त अन्तःकरण कर्त्ता है तथा अन्तःकरणसहित चिदाभास भोक्ता है। इस चिदाभास के वाहन, पाँच प्राण हैं; द्वार, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ है; भोग, पाँच विषय है तथा कर्मचारीगण, पाँच कर्मेन्द्रियाँ हैं। शुद्ध आत्मा इनका व इनके सब व्यवहारों का जानने वाला, निर्लेप, निर्विकार, अकर्त्ता व अभोक्ता है। इसका स्पष्ट रहस्य निम्नलिखे अनुसार समझें।

वायु का तत्त्व मन है। चिदाभास मन-युक्त होकर, समान वायुरूपी वाहन पर बैठकर, त्वचारूपी द्वार पर

Scanned with CamScanner

आकर, शीत-उष्ण अथवा कोमल-कठोर स्पर्श से सुख-दुःखरूपी भोग भोगता है। हाथ रूपी कर्मचारी, ठण्ड लगने पर वस्त्रादि उढ़ाना; गर्मी लगने पर पंखा आदि करना; निद्रालु शयनकाल आदि में कोमल शय्या बिछाना आदि यथा योग्य सभी सेवायें करता है।

तेज का तत्त्व बुद्धि है। चिदाभास बुद्धि-युक्त होकर, उदानरूपी वाहन पर बैठकर, चक्षुरूपी द्वार से बाहिर आकर, पदार्थों के रमणीय-अरमणीय रूपों को देखकर, उनमें प्रियता-अप्रियता रचकर, हर्ष-शोकादि को प्राप्त होता है। चरणरूपी सेवक इसकी सेवा करते हुए, जहाँ जाना चाहता है, वहाँ पहुँचाता है।

जल का तत्त्व चित्त है। चिदाभास चित्त-युक्त होकर, प्राणरूपी वाहन पर बैठकर, जिह्वारूपी द्वार पर आकर, रसना द्वारा मधुर-कटु आदि पदार्थों के रस को सेवन कर, सुख-दुःख का अनुभव करता है। शिश्नरूपी सेवक इसकी सेवा करते हुए वीर्य-मूत्र का त्याग करता है।

पृथ्वी का तत्त्व राजस अहंकार* है। चिदाभास राजस-अहंकार-युक्त होकर, अपानरूपी वाहन पर बैठकर, घ्राणरूपी द्वार पर आकर, सुगन्ध-दुर्गन्ध से सुख-दुःख का अनुभव करता है। गुदारूपी सेवक इसकी सेवा करते हुए अपवित्र वायु व मल का त्याग करता है।

Scanned with CamScanner

आकाश का तत्त्व सात्त्विक अहंकार* -रुपी स्फुरण है। चिदाभास सात्त्विक अहंकार-युक्त होकर, व्यानरूपी वाहन पर बैठकर, श्रोत्र द्वार में आकर, मधुर-कटु शब्द श्रवण करके सुख-दु:ख का अनुभव करता है। वाक्-रूपी सेवक इसकी सेवा करते हुए शब्द बोलता है।

इस प्रकार मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार-स्वरूप वाले अंत:करण सहित **चिदाभास भोक्ता** है और **कर्त्ता** तो चिदाभास सहित, मन-बुद्धि-चित्त-अहंकार स्वरूप वाला **अंत:करण** ही है। **शुद्ध आत्मा कर्त्ता-भोक्ता** नहीं है। चिदाभास सब व्यवहारों में विद्यमान रहता है। **आत्मा** स्वयं प्रकाश होने से, इन सभी व्यवहारों का **प्रकाशक** है। साधक को ऐसा निश्चय पूर्वक समझकर, अपने स्वरूप को पहिचान कर, सुख-दु:ख से परे हो जाना चाहिये।

(*नोट-साामन्य अहंकार रूप स्फुरण में तो विशेष व्यवहार होता ही नहीं। विशेष व्यवहार में आने पर ही अहंकार का स्वरूप सात्त्विक व राजस-दो प्रकार का हो जाता है।)

('पञ्चीकरण' से)

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ चतुर्थ कला प्रारम्भः ॥४॥

* मैं पञ्च कोशातीत हूँ *

॥ मनहर छन्द ॥

पंच कोशातीत मैं हूँ अन्न प्राण मनोमय।
विज्ञान आनन्दमय पंच कोश नातमा[६१] ॥
स्थूल देह अन्नमय-कोश लिङ्गदेह[६२] प्राण-।
मन रु विज्ञान तीन कोश कहें मातमा ॥
कारण आनन्दमय-कोश ये[६३] कारज जड़।
विकारी विनाशी व्यभिचारी हीं अनातमा ॥
अज चित अविकारी नित्य व्यभिचारहीन।
पीताम्बर अनुभव करता मैं आतमा ॥४॥

मैं आत्मा पाँच कोशों से न्यारा हूँ। 'अन्नमय', 'प्राणमय', 'मनोमय', 'विज्ञानमय' और 'आनन्दमय'- ये पाँचों कोशों के नाम हैं और ये सभी अनात्मा हैं। प्रश्न ८४ के उत्तर में वर्णित स्थूल देह 'अन्नमय कोश' है। सूक्ष्म देह 'प्राणमय', 'मनोमय' और 'विज्ञानमय' तीन कोश रूप है,

---

६१ नातमा=न+आत्मा अर्थात् अनात्मा है।

६२ महात्मा लिङ्ग-देह को प्राण, मन और विज्ञान तीन कोश रूप कहते हैं।

६३ पञ्च कोश।

Scanned with CamScanner

ऐसा महात्मा कहते आए हैं। कारणदेह 'आनन्दमय कोश' है। ये पाँचों कोश कार्य हैं अर्थात् उत्पत्तिवान् हैं और जड़, विकारवान् नाशवान् व्यभिचारी एवं अनात्मा ही हैं। पीताम्बरजी कहते हैं कि मैं आत्मा, अजन्मा, चैतन्य, विकार-रहित, सदा एकरस, व्यभिचारहीन, दृश्य का द्रष्टा होने से अनुभव करने वाला, वस्तुतः अनुभवरूप प्रतिबिम्बित-आनन्द का बिम्बस्वरूप आनन्द ही हूँ।

८१ प्रश्न— **पञ्चकोशातीत किसको कहते हैं ?**

उत्तर— जो पञ्च कोशों से अतीत (न्यारा) है, उसको पञ्चकोशातीत कहते हैं।

८२ प्रश्न— **कोश किसे कहते हैं ?**

उत्तर— कोश नाम (१) तलवार के म्यान का, (२) धन के भण्डार का और (३) कोशकार नामक कीड़े के गृह का है।

उनकी भाँति अन्नमयादि पाँच कोश आत्मा को ढ़कते हैं। इसलिये ये भी **कोश** कहलाते हैं।

८३ प्रश्न— **पाँच कोशों के नाम क्या हैं ?**

उत्तर— (१) अन्नमय कोश, (२) प्राणमय कोश, (३) मनोमय कोश, (४) विज्ञानमय कोश और (५) आनन्दमय कोश। ये **पाँच कोशों के नाम** है।

Scanned with CamScanner

८४-८६ प्रश्न— **(१) अन्नमय कोश :—**

८४ प्रश्न— **अन्नमय कोश क्या है ?**

उत्तर— जो स्थूल शरीर (१) माता-पिता द्वारा खाये-पीये हुए अन्न-जलादि से बने रज-वीर्य के संयोग से माता के गर्भाशय में **उत्पन्न होता है,** (२) जन्म के पश्चात् क्षीर (मातृ-दुग्ध) अन्न आदि पानकर, **वृद्धि को प्राप्त होता है** और (३) फिर मरण के अनन्तर अन्नमय पृथ्वी में **लीन हो जाता है,** वही स्थूल शरीर **अन्नमय कोश** है।

८५ प्रश्न— **अन्नमय कोश कैसा है ?**

उत्तर— अन्नमय कोश सुख-दुःख के अनुभवरूप भोग का स्थान है।

८६ प्रश्न— **अन्नमय कोश से मैं न्यारा हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) गर्भाधान से पहिले और मरण से पीछे अन्नमय कोश (स्थूलशरीर) का अभाव है। इसलिए यह **उत्पत्ति-नाशवान्** होने से, घट की भाँति कार्य है। और (२) मैं सदा भावरूप होने से **उत्पत्ति-नाशरहित** हूँ एवं इससे विलक्षण हूँ।

अतः यह अन्नमय कोश मैं नहीं और मेरा नहीं, यह स्थूलदेहरूप है। इसका जानने वाला मैं आत्मा, इससे न्यारा हूँ।

Scanned with CamScanner

८९-९१ प्रश्न— **(२) प्राणमय कोशः—**

८७ प्रश्न— **प्राणमय कोश क्या है ?**

उत्तर— पाँच कर्मेन्द्रियों सहित पाँच प्राण, प्राणमय कोश है।

८८ प्रश्न— **पाँच कर्मेन्द्रियें और पाँच प्राण कौनसे हैं ?**

उत्तर— इन सबको पूर्व सूक्ष्मदेह की प्रक्रिया में कहा जा चुका है। (देखो पृष्ठ ९५)

८९ प्रश्न— **पाँच प्राणों के स्थान और क्रियायें, कौनसी हैं ?**

उत्तर— (१) **प्राण वायु :-** (क) हृदय **स्थान** में रहता है और (ख) जीव यदि वेद विधि अनुकूल जीवन व्यतीत करे तो प्रत्येक दिन-रात में २१६०० श्वास-उच्छ्वास लेने रूप क्रिया करता है।

(२) **अपान वायु :-** (क) गुदा स्थान में रहता है और (ख) मल-मूत्र व अपवित्र वायु के उत्सर्ग (त्याग) रूप क्रिया करता है।

(३) **समान वायु :-** (क) नाभि स्थान में रहता है और (ख) जैसे माली कूपजल को अनेक नालियों द्वारा बगीचे में पहुँचाता है, वैसे ही यह समान वायु भोजन किए गए अन्नादि को जठराग्नि में पचाकर, रस-रक्त आदि को निकालकर ७२७२१०२०१ नाड़ियों द्वारा सर्व शरीर में पहुँचाने रूप **क्रिया** करता है।

Scanned with CamScanner

(४) **उदान वायु :-** (क) कण्ठ **स्थान** में रहता है, (ख) खाये-पीये अन्न-जलादि का विभाग करता है और (ग) स्वप्न दिखाना तथा हिचकी, जँभाई (उबासी), छींक, डकार आदि लेना और आँखों को खोलना बन्द करना आदि-आदि रूप **क्रियाएँ** करता है।

(५) **व्यान वायु :-** (क) **सर्वाङ्गों** में रहता है और (ख) सब अङ्गों की सन्धियों के फेरने रूप **क्रिया** करता है।

इस रीति से **पाँच प्राणों के ये मुख्य स्थान और क्रियाएँ** हैं।

(नोट:— सद्योजात, वामन, ईशान, तत्पुरुष और अघोर-ये क्रम से इन पाँच प्राणों के पाँच अधिष्ठातृ देवता हैं। पंचमुखी शिवजी के पाँच मुखों के ये नाम हैं।)

९० प्रश्न— **प्राणादि वायु शरीर में क्या करते हैं ?**

उत्तर— प्राणादि वायु (१) सारे शरीर में पूर्ण होकर उसको बल देते हैं। और (२) इन्द्रियों को स्व-स्व कार्य में प्रवृत्तिरूप क्रिया के साधन होते हैं।

९१ प्रश्न— **प्राणमय कोश से मैं न्यारा हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) निद्रा में पुरुष सोया होवे, तब प्राण जागता है। परन्तु कोई स्नेही आवे तो भी उसका सन्मान करता नहीं और (२) चोर भूषण ले जावे तो उसको भी

Scanned with CamScanner

रोकता नहीं। इसलिये यह प्राणवायु घट की भाँति **जड़** है और मैं **चैतन्यरूप** इससे विलक्षण हूँ।

अतः यह प्राणमय कोश मैं नहीं और मेरा नहीं, यह सूक्ष्मदेहरूप है। इसका जाननेवाला मैं आत्मा, इससे न्यारा हूँ।

९२-९५ प्रश्न— **(३) मनोमय कोशः-**

९२ प्रश्न— **मनोमय कोश क्या है ?**

उत्तर— ज्ञानेन्द्रियों सहित मन, **मनोमय कोश** है।

९३ प्रश्न— **पाँच ज्ञानेन्द्रियें और मन कौनसे हैं ?**

उत्तर— इनको पूर्व सूक्ष्मदेह की प्रक्रिया में कहा जा चुका है। (देखो पृष्ठ ९४-९५)

९४ प्रश्न— **मन कैसा है ?**

उत्तर— मन देह में अहंता और गृहादि में ममता-रूप अभिमान करता है और इन्द्रियों द्वारा बाहिर गमन करता हुआ, सभी क्रियाओं का कारणरूप है।

९५ प्रश्न— **मनोमय कोश से मैं न्यारा हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) काम, क्रोधादि वृत्तियों से युक्त होने से, मन अनियमित स्वभाव वाला है। इसलिए **विकारी** है। और

Scanned with CamScanner

(२) मैं सर्व वृत्तियों का साक्षी, **निर्विकार** हूँ।

इसलिए यह मनोमय कोश मैं नहीं और मेरा नहीं। यह सूक्ष्मदेहरूप है। इसका जानने वाला, मैं आत्मा, इससे न्यारा हूँ।

९६-९९ प्रश्न— **(४) विज्ञानमय कोश :—**

९६ प्रश्न— **विज्ञानमय कोश क्या है ?**

उत्तर— ज्ञानेन्द्रियों सहित बुद्धि विज्ञानमयकोश है।

९७ प्रश्न— **पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि कौनसी हैं ?**

उत्तर— इनको पूर्व लिङ्ग (सूक्ष्म) देह की प्रक्रिया में कहा जा चुका है। (देखो पृष्ठ ९४-९५)

९८ प्रश्न— **बुद्धि कैसी है ?**

उत्तर— चिदाभास-युक्त बुद्धि (१) सुषुप्ति में विलीन होती है। और (२) जाग्रत् में नख के अग्र भाग से लेकर शिखा (चोटी) पर्यन्त शरीर में व्याप्त होकर वर्त्तती (बरताव करती) हुई कर्त्ता रूप है।

९९ प्रश्न— **विज्ञानमय कोश से मैं न्यारा हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) बुद्धि, घट-पटादि की भाँति, विलय-विकृति आदि अवस्था वाली होने से, **विनाशी** है। और

Scanned with CamScanner

(२) मैं विलय-विकृति आदि अवस्था से रहित होने से, इससे विलक्षण, **अविनाशी** हूँ।

इसलिए यह विज्ञानमय[६४] कोश मैं नहीं और मेरा नहीं, यह सूक्ष्मदेह रूप है। इसका जानने वाला, मैं आत्मा, इससे न्यारा हूँ।

१००-१०२ प्रश्न— **(५) आनन्दमय कोश:—**

१०० प्रश्न— **आनन्दमय कोश क्या है ?**

उत्तर— (१) पुण्यकर्म फल के अनुभवकाल में कदाचित् बुद्धि की वृत्ति अन्तर्मुख होकर आत्म-स्वरूप-भूत आनन्द के प्रतिबिम्ब को भजती है अर्थात् अभिव्यक्त करती है; उस प्रतिबिम्ब का भोक्ता चिदाभास है। (२) उसी प्रतिबिम्ब के प्रिय, मोद, प्रमोद नाम हैं। और (३) वही वृत्ति, पुण्य कर्म फल के भोग की निवृत्ति हो जाने पर, निद्रा रूप से स्व-स्व व्यष्टि-अज्ञान में विलीन हो जाती है।

यह वृत्ति आनन्दमय कोश है।

---

६४ स्थूल दृष्टि से (१) दीपक का प्रकाश और आकाश अभिन्न प्रतीत होते हैं, तो भी भिन्न है। और (२) तप्त लोहे में अग्नि और लोहा अभिन्न प्रतीत होते हैं, तो भी भिन्न हैं।

ऐसे ही अन्त:करण और आत्मा अभिन्न प्रतीत होते हैं, तो भी भिन्न हैं; क्योंकि सुषुप्ति में अन्त:करण के लय हो जाने पर भी आत्मा, अज्ञान के साक्षीरूप से, प्रतीयमान होता है।

Scanned with CamScanner

१०१ प्रश्न— **आनन्दमय कोश कैसा है ?**

उत्तर—

(१) इष्ट वस्तु के दर्शन से उत्पन्न प्रियवृत्ति जिसका सिर है।

(२) इष्ट वस्तु के लाभ से उत्पन्न मोदवृत्ति जिसका एक (दक्षिण=दाहिना) पक्ष है।

(३) इष्ट वस्तु के भोग से उत्पन्न प्रमोदवृत्ति जिसका द्वितीय (वाम=बाँया) पक्ष है।

(४) बुद्धि या अज्ञान की वृत्ति में आत्म-स्वरूप-भूत आनन्द का प्रतिबिम्ब जिसका स्वरूप है। और

(५) बिम्ब-रूप आत्मा का स्वरूप-भूत आनन्द जिसका पुच्छ[६५] (आधार) है।

ऐसा पक्षीरूप भोक्ता **आनन्दमय[६६] कोश** है।

---

६५ प्रिय, मोद व प्रमोद वृत्तियों में भोगरूप से, एवम् अन्त:करण अथवा व्यष्टि अविद्यारूप उपाधि में भोक्तारूप से जो प्रतिबिम्ब पड़ते हैं उन सभी का आधार होने से ब्रह्मरूपआनन्द को तैत्तीरीय श्रुति में 'पुच्छ' शब्द से कहा है।

६६ ऐसे अन्य चारों कोशों की पक्षीरूपता पीताम्बरजी कृत तैत्तीरीय उपनिषद् की भाषा-टीका में सविस्तार लिखी है। जिसकी इच्छा होवे, वहाँ देख लेवे।

Scanned with CamScanner

१०२ प्रश्न— **आनन्दमय कोश से मैं न्यारा हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) आनन्दमय कोश आकाश में चमकने वाली बिजली, बादल, बुदबुदा आदि पदार्थों की भाँति कदाचित् होने वाला है। इसलिए **क्षणिक** है। और (२) मैं सर्वदा स्थित होने से, **नित्य** हूँ।

इसलिए यह आनन्दमय कोश मैं नहीं और मेरा नहीं, यह कारण देहरूप है। इसका जानने वाला, मैं आत्मा, इससे न्यारा हूँ।

१०३ प्रश्न— **विद्यमान अन्नमयादि कोश यदि आत्मा नहीं, तो फिर आत्मा कौन है ?**

उत्तर— (१) बुद्धि आदि में प्रतिबिम्बरूप से स्थित और (२) प्रिय आदि शब्दों से कहे जाने वाले—
ऐसे आनन्दमय कोश का बिम्बरूप कारण जो आनन्द है, वह नित्य होने से, आत्मा है।

१०४ प्रश्न— **पाँच कोश जो हैं, वे ही अनुभव में आते हैं, इनसे न्यारा कोई आत्मा अनुभव में आता नहीं। इसलिए पाँच कोश से न्यारा आत्मा है, यह निश्चय कैसे होवे?**

उत्तर— यद्यपि पाँच कोश ही अनुभव में आते हैं,

Scanned with CamScanner

इनसे न्यारा कोई आत्मा अनुभव में आता नहीं, यह वार्ता सत्य है। तथापि जिस अनुभव से ये पाँच कोश जाने जाते हैं, उस अनुभव को कौन निवारण (निवृत्त) करेगा अर्थात् कोई भी नहीं कर सकता। इसलिए पाँचों कोशों का अनुभवरूप जो चैतन्य है वही, उनसे न्यारा आत्मा है।

१०५ प्रश्न— **आत्मा कैसा है ?**

उत्तर— सत्-चित्-आनन्द (स्वयं-प्रकाश, कूटस्थ, द्रष्टा) आदि स्वरूप है।

इति श्री विचार चन्द्रोदये पञ्चकोशातीत वर्णन नामिका चतुर्थ कला समाप्तः ॥४॥

कला का सारांश

बैंक भवन में स्थित सुरक्षित कमरे में रखी हुई लोहे की तिजोरी आलमारी में लॉकर-खण में स्वर्ण की डिबिया में एक अमूल्य हीरा रखा हुआ है। इसकी प्राप्ति हेतु इन सभी आवरणों की स्पष्ट जानकारी कर, इन सभी आवरणों को हटाना अति आवश्यक है। ऐसे ही स्व-आत्मा को पञ्चकोशों से भिन्न जानकर ही स्व स्वरूप में स्थिति की जा सकती है। अतः जिज्ञासु को अति लगनपूर्वक अपने पञ्चकोशातीत स्वरूप का अनुभव कर स्थिति को दृढ़ करना चाहिये। इसी में उसका परम कल्याण है।

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ पंचम् कला प्रारम्भः॥५॥

* तीन अवस्था का मैं साक्षी हूँ *

॥ मनहर छन्द॥

अवस्था तीन को साक्षी आतमा अन्वय[६७] याको।
व्यभिचारी अवस्था को व्यतिरेक[६८] पाइयो॥
त्रिपुटी चतुरदश करि व्यवहार जहाँ।
स्पष्ट सो जाग्रत जूठ ताकूं दृश्य ध्याईयो।
देखे सुने वस्तुन के संस्कार से सृष्टि जहाँ।
अस्पष्ट प्रतीति स्वप्न मृषा लोक गाईयो॥
सकल करण लय होय जहां[६९] सुषुप्ति सो।
पीताम्बर तुरीयहीं प्रत्यक[७०] प्रत्याईयो[७१]॥५॥

जाग्रत, स्वप्न एवं सुषुप्ति, इन तीनों अवस्थाओं का आत्मा साक्षी है। इस आत्मा का तीनों अवस्थाओं में

---

६७ इस आत्मा का उन तीनों अवस्थाओं में अन्वय है अर्थात् पुष्प-माला में सूत्र की भाँति, तीनों अवस्थाओं में अनुस्यूतपना है।

६८ पुष्पों की भाँति, तीनों अवस्थाओं का परस्पर व अधिष्ठान से भेद है।

६९ पद योजना-जहाँ सकल करण लय होय, सो सुषुप्ति है।

७० अन्तरात्मा।

७१ निश्चय किया।

Scanned with CamScanner

अनुस्यूतपना है। व्यभिचार धर्मवाली अवस्थाओं का परस्पर (आपस में) और अधिष्ठान के साथ भेद पाया गया है। जिस अवस्था में चौदह त्रिपुटी द्वारा व्यवहार होता है, स्पष्ट प्रतीति वाली वह अवस्था, **जाग्रत्** अवस्था है। उसको मिथ्या और दृश्य निश्चय किया गया है। निद्रा की जिस अवस्था में, इस जन्म में अथवा पूर्व जन्मों में देखी-सुनी वस्तुओं के, संस्कारों से सृष्टि रची जाती है, अस्पष्ट प्रतीति वाली वह अवस्था, **स्वप्न** अवस्था* है और उसको तो लोगों द्वारा भी झूठा ही कहा गया है। निद्रा की जिस अवस्था में सारे इन्द्रियादि साधनलय हो जाते हैं, वह अवस्था, **सुषुप्ति** अवस्था है। पीताम्बरजी कहते हैं कि इन तीनों अवस्थाओं के **साक्षी** को ही **अन्तरात्मा** निश्चय किया गया है।

(*यह स्वप्न अवस्था भौतिक निद्रा काल की है। अज्ञाननिद्राकालीन जाग्रत में ही, इन्हीं लक्षणों वाली अवस्था को **मनोराज्य** अवस्था अथवा **जाग्रतस्वप्न** कहते हैं। इसमें भूत-भविष्य सम्बन्धी चिंतनरूप सृष्टि की रचना होती है।)

१०६ प्रश्न— **तीन अवस्थाएँ कौनसी हैं ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— (१) जाग्रत[७२], (२) स्वप्न[७३] और (३) सुषुप्ति[७४]—ये **तीन अवस्थाएँ** है।

(१) जाग्रत् अवस्था का मैं साक्षी हूँ

१०७ प्रश्न— **जाग्रत् अवस्था क्या हैं ?**

("इन्द्रियैरर्थोपलब्धि जागरितम्" इन्द्रियों से विषयों की उपलब्धि ही जाग्रत अवस्था है।)

उत्तर— (१) चौदह इन्द्रियें 'अध्यात्म[७५] हैं।

---

७२ स्वप्न और सुषुप्ति से भिन्न, अन्त:करण सहित इन्द्रियजन्य ज्ञानों के और उन इन्द्रिय-जन्य ज्ञानों के संस्कारों के आधारकाल को **जाग्रत् अवस्था** कहते हैं।

७३ व्यावहारिक इन्द्रियों से अजन्य, प्रातिभासिक इन्द्रिय-जन्य, ज्ञान के विषयों को ग्रहण करने वाली, अन्त:करण की अपरोक्ष वृत्ति के काल को **स्वप्न अवस्था** कहते हैं।

७४ (विषयानन्द-रहित स्वरूपानन्द को विषय करने वाली) सुख गोचर और (स्वअधिष्ठान चैतन्य को ढ़कने वाली जो अविद्या है उसको विषय करने वाली) अविद्यागोचर, अविद्या की वृत्ति के काल को **सुषुप्ति अवस्था** कहते हैं।

७५ आत्मा को आश्रय कर बरतने वाली इन्द्रियों* को एवम् मन, बुद्धि आदि को **अध्यात्म** कहते हैं।

(*श्रोत्र ज्ञानेन्द्रिय है। शब्द उसका विषय है। कान रूप गोलक उसका घर है। ज्ञानात्मक श्रवण ही उसका व्यवहार है और इस व्यवहार के करने की शक्ति-विशेष ही उसका स्वरूप

Scanned with CamScanner

(२) उनके चौदह देवता 'अधिदैव[७६] हैं।
(३) उनके चौदह विषय 'अधिभूत[७७] हैं।

है; इसी को इन्द्रिय कहते है। अन्य इन्द्रियों के स्वरूप एवम् व्यवहारादि भी ऐसे ही समझना। ज्ञानेन्द्रियों में ज्ञानात्मक एवम् कर्मेन्द्रियों में क्रियात्मक व्यवहार ही होते हैं।)

७६ स्वसङ्घात से भिन्न, चक्षु आदि इन्द्रियों के अविषय को **अधिदैव** कहते हैं। प्राकृत इन्द्रियों से गृहीत प्रज्वलित-तेजोमय प्रकाशमंडल, शीतल-तेजोमय प्रकाशमंडल, गंगा-यमुनादि का जल, अग्नि आदि तो इनमें रहने वाले इनके अधिष्ठातृ सूर्य, चन्द्र, वरुणादि देवताओं के घर हैं, न कि वे देवता। 'अधिदैव' पद में इन्हीं अधिष्ठातृ देवताओं का ही ग्रहण है।

यहाँ पर इन्द्रियों की प्राकृत शक्तियों से देव दर्शनादि का निषेध है। 'दिव्यं ददामि ते चक्षु'-इस प्रकार उपासना आदि के बल पर दैव प्रदत्त शक्तियों के द्वारा तो देव दर्शनादि होते ही हैं।

इसी प्रकार जगत् को विषय करने वाली बुद्धि, जब गीता १०/७ से १० गत गुणों से युक्त होकर, तत्त्वानुसंधान-सन्मुख होती है तभी भगवान् 'ददामि बुद्धि योगं तं', इस प्रतिज्ञानुसार उस जिज्ञासु को उसी देव के एवं निज के लक्ष्यार्थ व्यापक-ब्रह्म का ज्ञान कराकर, उसकी ब्रह्म में स्थिति करा देते हैं। यही जीव का प्रयोजन एवं लक्ष्य है और इसी आत्माभिन्न ब्रह्म-पद में स्थिति करने में ही उसका परम कल्याण है।

७७ स्व सङ्घात से भिन्न, चक्षु आदि इन्द्रियों के विषय को **अधिभूत** कहते है।

Scanned with CamScanner

इन बयालीस तत्त्वों से जिस अवस्था में व्यवहार होता है, वही **जाग्रत्[७८] अवस्था** है।

१०८ प्रश्न— **चौदह इन्द्रियें कौनसी हैं ?**

उत्तर— देखो उत्तर ११२ प्रश्न का पहला कालम।

१०९ प्रश्न— **चौदह इन्द्रियों के चौदह देवता कौनसे हैं ?**

उत्तर— देखो उत्तर ११२ प्रश्न का दूसरा कालम।

११० प्रश्न— **चौदह इन्द्रियों के चौदह विषय कौनसे हैं ?**

उत्तर— देखो उत्तर ११२ प्रश्न का तीसरा कालम।

१११ प्रश्न— **अध्यात्म, अधिदैव और अधिभूत ये तीन-तीन मिलकर क्या कहलाते हैं ?**

उत्तर— आध्यात्मादि तीन पुट (आकार) मिलकर त्रिपुटी कहलाती है।

---

७८ यह स्थूल दृष्टि वाले पुरुषों के जानने योग्य जाग्रत का लक्षण है। ऐसे ही स्वप्न एवं सुषुप्ति में भी जानना।

तात्त्विक (पारमार्थिक) दृष्टि से "अन्यथा गृह्णत: स्वप्नम्, निद्रा तत्त्वमजानत:।" परमात्म तत्त्व को अन्यथा ग्रहण करना स्वप्न है; उसको नहीं जानना, निद्रा है एवं यथार्थ जानना ही जाग्रत है।

Scanned with CamScanner

११२ प्रश्न— **चौदह त्रिपुटीं किस रीति से जाननी ?**

चौदह इन्द्रिय (अध्यात्म)	**चौदह देवता** (अधिदेव)	**चौदह विषय** (अधिभूत)
१) श्रोत्र	दिशा (दिक्पाल)	शब्द
२) त्वचा (त्वक्)	वायु	स्पर्श
३) चक्षु	सूर्य	रूप
४) जिह्वा (रसना)	वरुण	रस
५) घ्राण	अश्विनी कुमार	गन्ध
६) वाक्	अग्नि	वाचन-क्रिया
७) हस्त (पाणि)	इन्द्र	लेना-देना
८) पाद	वामन	गमन-आगमन
९) उपस्थ	प्रजापति	रतिभोग
१०) गुदा (पायु)	यम	मल-त्याग
११) मन	चन्द्रमा	सङ्कल्प-विकल्प[७९]
१२) बुद्धि	ब्रह्मा	निश्चय
१३) चित्त	वासुदेव	चिन्तन
१४) अहंकार	रुद्र	अहंपना

इस रीति से **चौदह त्रिपुटी** जाननी।

१५) अन्तरिन्द्रियरूप विष्णु स्फुरण

अन्तःकरण*[८०]

(*कई आचार्यों की मान्यतानुसार पन्द्रहवीं त्रिपुटी।)

Scanned with CamScanner

११३ प्रश्न— **इन त्रिपुटियों का क्या स्वभाव है?**

उत्तर— तीन पदार्थों की एक त्रिपुटी होती है। उन तीन पदार्थों में से यदि कोई एक पदार्थ नहीं होवे, तो उस त्रिपुटी का व्यवहार नहीं चलता।

१) इन्द्रिय और देवता होवें और विषय नहीं होवे, तब भी व्यवहार नहीं चलता॥

२) विषय और इन्द्रिय होवें और देवता नहीं होवे, तब भी व्यवहार नहीं चलता।

३) देवता और विषय होवें और इन्द्रिय नहीं होवे, तब भी व्यवहार नहीं चलता।

---

* पिछले पृष्ठ का नोट

७९. सङ्कल्प-विकल्प मन का विषय नहीं है, किन्तु जिस वस्तु का सङ्कल्प होता है, वह वस्तु विषय है। ऐसे ही बुद्धि जिसका निश्चय, चित्त जिसका चिंतन तथा अहंकार जिसका अहंपना करता है वही क्रमशः उनके स्व-स्व विषय हैं, न कि निश्चय चिंतन अथवा अहंपना। इसी प्रकार कर्मेन्द्रियों की स्व-स्व क्रिया विषय नहीं, अपितु जिस-जिस वस्तु के प्रति जो-जो इन्द्रिय क्रिया करती है वह वह वस्तु ही विषय है। परन्तु ज्ञानेन्द्रियों में ऐसा नहीं है; उनके तो वस्तुएँ विषय न होकर, शब्दादि विषय ही विषय होते हैं।

८०. अन्तरिन्द्रय रूप अन्तःकरण। इसका देवता विष्णु है।

Scanned with CamScanner

११४ प्रश्न— **मेरा क्या स्वभाव है, यह कैसे जानना?**

उत्तर—

१) त्रिपुटी पूर्ण होवे, उसको भी मैं जानता हूँ।
२) पूर्ण नहीं होवे, उसको भी मैं जानता हूँ।
३) त्रिपुटी से व्यवहार चले, उसको भी मैं जानता हूँ।
४) व्यवहार नहीं चले, उसको भी मैं जानता हूँ।

ऐसा **मेरा स्वभाव** है, यह जानना।

११५ प्रश्न— **इस कथन (प्रक्रिया) से क्या सिद्ध हुआ?**

उत्तर— त्रिपुटी से जिस अवस्था में व्यवहार चलता है, वह **जाग्रत् अवस्था** है ; यह सिद्ध हुआ।

११६ प्रश्न— **जाग्रत अवस्था में जीव का स्थान, वाच्या, भोग, शक्ति, गुण और जाग्रत् के अभिमान से उस जीव का नाम क्या है?**

जाग्रत अवस्था नेत्र स्थान। बैखरी वाचा स्थूल भोग जान॥
क्रिया शक्ति रजोगुण मान। अकार मात्रा विश्व अभिमान॥

(पंचीकरण)

उत्तर—

जाग्रत अवस्था में जीव का (१) स्थान, नेत्र[८१], (२)

८१. यद्यपि जाग्रत् में इस चिदाभासरूप जीव की नख से लेकर शिखा पर्यन्त सारे देह में व्याप्ति है तथापि मुख्यता करके यह नेत्र में रहता है। इसलिए नेत्र को इसका स्थान कहा गया है।

Scanned with CamScanner

वाचा, बैखरी (व्यक्त होने वाली वाणी जो बोलने वाला भी सुने और दूसरे भी सुन सकें), (३) भोग, स्थूल (व्यावहारिक सुख-दुःखादि का प्रत्यक्ष भोग), (४) शक्ति, क्रिया (५) गुण,रज* और (६) जाग्रत् के अभिमान से विश्व, नाम है। ((१) पञ्चभौतिक संसार को विश्व कहते हैं और इस विश्व का भोक्ता होने से जाग्रत के अभिमानी जीव को विश्व कहते हैं। (२) जाग्रत में जीव स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण तीनों देहों का अभिमानी होता है। 'विश्व' पद

शरीर अथवा किसी अन्य इन्द्रिय के दीखने पर भी व्यक्ति को दर्शन-सम्बन्धी संतोष नहीं होता और नेत्र से नेत्र मिलते ही दर्शन-व्यवहार में तृप्ति हो जाती है। इसलिए जाग्रत् में नेत्र जीव का मुख्य स्थान कहलाता है।

* कई ग्रन्थों में लौकिक, वैदिक क्रियाओं की प्रधानता को लेकर जाग्रत अवस्था में रजोगुण एवं क्रिया-शक्ति कहा है; क्योंकि क्रियाएँ विशेषकर रजोगुण के कार्य हैं। परिशेषतया स्वप्नावस्था में सतोगुण एवं ज्ञान-शक्ति कहा है। कई ग्रन्थों में व्यावहारिक और पारमार्थिक ज्ञान की प्रधानता को लेकर जाग्रत् अवस्था में सतोगुण एवं ज्ञान-शक्ति कहा है; क्योंकि ज्ञान विशेषकर सतोगुण का कार्य है। परिशेषतया स्वप्नावस्था में रजोगुण एवं क्रिया-शक्ति कहा है।

Scanned with CamScanner

का अर्थ सम्पूर्ण अर्थात् त्रय देह उपाधिवाला होता है। अत: जाग्रत के अभिमानी जीव को विश्व कहते हैं।)

११७ प्रश्न— **जाग्रत अवस्था कहने से क्या सिद्ध हुआ?**

उत्तर— १) जाग्रत् अवस्था होवे, उसको भी मैं जानता हूँ। और

२) स्वप्न-सुषुप्ति में नहीं होवे, तब उसके अभाव को भी मैं जानता हूँ।

इसलिए जाग्रत् अवस्था मैं नहीं और मेरी नहीं, यह स्थूल देह की है। मैं इसका जानने वाला साक्षी, घटसाक्षी की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

इस रीति से जाग्रत अवस्था का मैं साक्षी हूँ।

(२) स्वप्न अवस्था का मैं साक्षी हूँ।

११८ प्रश्न— **स्वप्न अवस्था क्या है ?**

("करणेषूपसंहृतेषु जागरित संस्कारज: प्रत्यय: सविषय: स्वप्न इत्युच्यते।" करणों का उपसंहार हो जाने पर जाग्रत के संस्कार से उत्पन्न जो सविषयक वृत्ति है उसको स्वप्न कहते हैं।)

उत्तर— इस जन्म की या पूर्व जन्मों की जाग्रत् अवस्था में देखे, सुने और भोगे हुए पदार्थों के संस्कार, कण्ठ में रहने वाली बाल के हजारवें भाग के समान

Scanned with CamScanner

बारीक, हिता नामक नाड़ी में रहते है। उन संस्कारों से निद्राकाल मे प्रातिभासिक सत्ता वाले पाँच विषय आदि पदार्थ और उनके ज्ञान उत्पन्न होते हैं। इन दोनों से जिस अवस्था में व्यवहार होता है, वही **स्वप्न-अवस्था है।**

११९ प्रश्न— **स्वप्न अवस्था में जीव का स्थान, वाचा, भोग, शक्ति गुण और स्वप्न के अभिमान से उसका नाम क्या है ?**

स्वप्न अवस्था कण्ठ स्थान, मध्यमा वाचा सूक्ष्म भोग जाण।
ज्ञान शक्ति सत्त्वगुण मान, उकार मात्रा तैजस अभिमान॥

(पंचीकरण)

उत्तर— स्वप्न अवस्था में जीव का (१) **स्थान,** कण्ठ* (२) **वाचा,** मध्यमा+, (३) **भोग,** सूक्ष्म (जाग्रत् अवस्था के स्थूल भोगों के संस्कार-जन्य वासनामय भोग),

---

* स्वप्नावस्था में अन्त:करण सहित जीव, कण्ठ में रहने वाली हिता नामक नाड़ी में प्रधानतया रहता है। अन्त:करण स्वप्न रचयिता है और जीव उसका भोक्ता है। अत: स्वप्न में जीव का स्थान, कण्ठ कहा गया है।

+ कण्ठ में प्रत्यक्ष होने वाली वाणी, जो केवल बोलने वाले को अस्पष्ट रूप से सुनाई दे अथवा भाव रूप से स्वयं को एवं मुख की मुद्रा से अन्यों को प्रतीत होवे, उसे मध्यमा वाचा कहते है।

Scanned with CamScanner

(४) **शक्ति**, ज्ञान (५) **गुण**, सत्त्व[८२] और (६) स्वप्न के अभिमान से तैजस नाम है। (पञ्च भौतिक पदार्थों से भिन्न, अन्त:करण में स्थित केवल संस्कारों द्वारा रचित पदार्थों को तेजोमय पदार्थ कहते हैं और उन पदार्थों का स्वप्न में उपभोक्ता होने से स्वप्न के अभिमानी जीव को तैजस कहते हैं। इस अवस्था में स्थूलदेह के अभिमान को त्याग कर सूक्ष्म व कारणदेह का अभिमानी, तैजस नाम से कहा जाता है।)

१२० प्रश्न— **स्वप्नावस्था कहने से क्या सिद्ध हुआ ?**

उत्तर— १) स्वप्न अवस्था होवे, उसको भी मैं जानता हूँ। और

२) जाग्रत् सुषुप्ति में नहीं होवे, तब उसके अभाव को भी मैं जानता हूँ।

इसलिए यह स्वप्न अवस्था मैं नहीं और मेरी नहीं। यह सूक्ष्मदेह की है। मैं इसका जानने वाला साक्षी, घटसाक्षी की भाँति, इससे न्यारा हूँ। यह सिद्ध हुआ।

इस रीति से स्वप्न अवस्था का मैं साक्षी हूँ।

३) सुषुप्ति अवस्था का मैं साक्षी हूँ

१२१ प्रश्न— **सुषुप्ति अवस्था क्या है ?**

("सर्व प्रकार ज्ञानोपसंहारे बुद्धेःकारणात्मनाऽव-स्थान सुषुप्ति:" सर्व प्रकार के विशेष ज्ञान का उपसंहार होने पर

---

८२. कई ग्रन्थकार रजोगुण भी कहते है।

Scanned with CamScanner

बुद्धि की कारणरूप से जो अवस्थिति है, उसे सुषुप्ति कहते हैं।)

उत्तर— पुरुष निद्रा से जागकर, सुषुप्ति में अनुभव किए हुए सुख और अज्ञान का स्मरण करके कहता है कि "आज मैं सुख से सोया और कुछ भी नहीं जाना।" यह सुख और अज्ञान का प्रकाश (ज्ञान), साक्षी-चेतनरूप अनुभव से जिस अवस्था में होता है, ऐसी बुद्धि की विलय-अवस्था ही **सुषुप्ति अवस्था** है।

१२२ प्रश्न— **सुषुप्ति अवस्था में जीव का स्थान, वाचा, भोग, शक्ति, गुण और सुषुप्ति के अभिमान से उसका नाम क्या है ?**

सुषुप्ति अवस्था हृदय स्थान, पश्यन्ति वाचा आनन्द भोग जाण।
द्रव्य शक्ति तमोगुण मान, मकार मात्रा प्राज्ञ अभिमान॥

(पंचीकरण)

उत्तर— सुषुप्ति अवस्था में जीव का (१) **स्थान**, हृदय* (२) **वाचा**, पश्यंती+ (३) **भोग**, आनन्द (निर्विकार सुख का भोग) (४) **शक्ति**, द्रव्य (अज्ञान-रूप शक्ति या अज्ञान की आवरण शक्ति) (५) **गुण**, तम● और (६) सुषुप्ति के अभिमान से **प्राज्ञ○** नाम है।

---

* सुषुप्ति अवस्था में अविद्यासहित जीव, हृदय में रहने वाली पुरीतत् नामक नाड़ी में रहता है। अविद्या सुषुप्ति रचयिता है और

Scanned with CamScanner

जीव उसका भोक्ता है। अत: सुषुप्ति में जीव का स्थान, हृदय कहा है।

+ योगियों को नाभि-चक्र में स्थित वायु द्वारा अभिव्यक्त की हुई ध्वनि, ज्ञानियों को सूक्ष्म विचार के संस्कार एवं भक्तों को सूक्ष्म भाव के संस्कार, जो कि सभी को स्व-स्व हृदय में प्रत्यक्ष होते है, वे सब पश्यंती वाचा हैं और उनका स्थान, हृदय है।

नोट :- चार प्रकार की वाणियों मे चौथी 'परा' शब्दोच्चार की प्रथम अवस्था है और उसका स्थान नाभि-कमल है।

● जैसे स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चद्वय का उनकी कारणस्वरूपा तम: प्रधान प्रकृति में तथा जाग्रत-स्वप्न अवस्था द्वय का उनके कारणरूप सुषुप्ति में लय होता है; वैसे ही सत्व-रज गुणद्वय का उनके कारणस्वरूप तमोगुण में लय होता है। लय के कारणपने की समानता को लेकर सुषुप्ति में तमोगुण कहा है।

✪ सुषुप्ति में स्थूल व सूक्ष्म पदार्थों से भिन्न (१) स्वरूप को ढ़कने वाला अज्ञान एवं (२) ब्रह्मस्वरूप सम्बन्धी सुख; ये दो पदार्थ हैं। 'मैंने कुछ नहीं जाना' और मैं सुख से सोया' जाग्रतकालीन इन स्मृतियों का विषय सुषुप्तिकाल में क्रमश: (१) अज्ञानात्मक और (२) सुखात्मक है। यह सुखात्मक पदार्थ स्थूल व सूक्ष्म विषयों के अभाव में विषय सुख तो है नहीं, अपितु ब्रह्मस्वरूप-भूत सुख ही है एवं केवल प्रज्ञान-घन कूटस्थ सम्बन्धी ही है। अविद्या-वृत्ति द्वारा जीव उक्त सुख का भोक्ता होने से प्राज्ञ कहलाता हैं। इस अवस्था में स्थूल एवं सूक्ष्मदेह के अभिमान को त्याग कर केवल कारणदेह का अभिमानी, प्राज्ञ नाम से कहा जाता है।

Scanned with CamScanner

१२३ प्रश्न— **सुषुप्ति अवस्था संबंधी दृष्टान्त क्या है ?**

उत्तर— प्रथम दृष्टान्त : जैसे (१) किसी का भूषण कूप में गिर जाय और उसको निकालने के लिए कोई तैराकी पुरुष कूप में उतरे। वह पुरुष भूषण मिले, उसको भी और न मिले उसको भी जानता है। (२) परन्तु कहने के साधन वाक् इन्द्रिय के देवता अग्नि का जल के साथ विरोध होने से, तिरोधान होता है। इसलिए कह सकता नहीं। और (३) जल से बाहिर निकलने पर कहने के साधन वाक्-इन्द्रिय का, अतिरोहित देवता सहित होने से, भूषण मिला या नहीं, यह बात कह पाता है।

सिद्धान्त :— वैसे ही (१) सुषुप्ति अवस्था में सुख और अज्ञान का साक्षी चेतनरूप सामान्य-ज्ञान है। (२) परन्तु विशेष-ज्ञान के साधन इन्द्रिय और अन्त:करण का तब अभाव होता है। इसलिए सुख और अज्ञान का विशेष-ज्ञान होता नहीं। और (३) जब पुरुष जागता है; तब विशेष-ज्ञान के साधन इन्द्रिय और अन्त:करण होते हैं। इसलिए सुषुप्ति में अनुभूत सुख और अज्ञान का स्मृतिरूप विशेष-ज्ञान होता है।

द्वितीय दृष्टान्त :— जैसे (१) आतप (धूप) में पिघला हुआ घृत (२) छाया में स्थित होने से गट्ठा (गाढ़ा)

Scanned with CamScanner

रूप हो जाता है। और (३) फिर आतप में स्थित होने से पिघलता है*।

सिद्धान्त :— वैसे ही (१) सुषुप्ति में कारणशरीर-रूप अज्ञान है। (२) वही जाग्रत् एवं स्वप्न में बुद्धि-रूप हो जाता है। और (३) सुषुप्ति में पुनः अज्ञान-रूप हो जाता है।

(*नोट :- एक ही घृत की दो अवस्थाएँ होती हैं- पहिली पिघली हुई और दूसरी गट्ठारूप। घृत की पिघली-अवस्था कारण-अवस्था है और गट्ठा-अवस्था कार्य-अवस्था है। प्रथम अवस्था में 'घृत है' इस आकार वाला एक ज्ञान का विषय है और द्वितीय अवस्था गट्ठारूप में 'घृत है' यह तो एक ज्ञान का विषय है, परन्तु उसमें के नाना रवे, नाना कण ('यह कण है, वह कण है' इस आकार वांले) नाना ज्ञान के विषय हैं।

सिद्धान्त में पिघले घृतवत् कारणरूप व्यष्टि-अज्ञान-संज्ञक अवस्था (कारणशरीर) एक ज्ञान का विषय है। वही व्यष्टि-अज्ञानरूप कारणशरीर जब अपनी कार्य-अवस्था अन्तःकरणरूप में आता है, तब वह भी गट्ठा-घृतवत् एक ही ज्ञान का विषय होता है। उसी अन्तःकरण* में स्थित नाना विचार भाव, क्रिया अथवा ज्ञान, इच्छा, कृषि आदि अष्टपुरी, गठ्ठाघृत में स्थित रवों अथवा कणोंवत् नाना ज्ञान के विषय होते हैं।

---

* (अन्तःकरण जब अपने कारणशरीररूप व्यष्टिअज्ञान अवस्था में होता है वही उसकी सुषुप्तिवत् कारण-अवस्था है। तब उसमें

Scanned with CamScanner

तृतीय दृष्टान्त :— (१) कोई बालक लड़कों के साथ खेलने जावे। (२) वह श्रम को पाकर (परिश्रम से थककर), माता की गोद में सोकर, गृह के सुख का अनुभव करता है। और (३) फिर लड़कों के बुलाने से, बाहिर जाकर खेलता है।

सिद्धान्त :— ऐसे ही (१) कारणशरीर, अज्ञान-रूप माता है। उसका बुद्धिरूप बालक, कर्मरूप लड़कों के साथ जाग्रत्-स्वप्नरूप बहिर्भूमि में व्यवहाररूप खेल करता है। (२) विक्षेपरूप श्रम को पाकर, सुषुप्ति अवस्थारूप गृह में

विचार, भाव, क्रिया अथवा अष्टपुरी संस्काररूप से रहते हैं और उनकी प्रतीति योगियों व देवताओं को होती है।)

जब अन्त:करण अपने कार्यरूप में आता है, तब वही उसकी स्वप्नवत् सूक्ष्म-अवस्था है। उसमें वे ही संस्कार सूक्ष्मरूप से प्रत्यक्ष रहते हैं और उनकी प्रतीति विज्ञजनों व साधकजनों को होती है। (कार्यरूप-कार्यअवस्था)

अन्त:करण जब अपने वृत्ति-व्यवहार अवस्था में आता है, तब वही उसकी जाग्रतवत् स्थूल-अवस्था है। तब इन्हीं संस्कारों की स्थूलरूप से प्रतीति जनसाधारण को भी होती है।

अन्तत: जब व्यष्टि-अज्ञानरूप से अवस्थित इसी अन्त:करण का महाप्रलयकाल में समष्टि-अज्ञान में लय हो जाता है, तब उपरोक्त संस्कारों की प्रतीति तो केवल ईश्वर को ही होती है।)

Scanned with CamScanner

अज्ञानरूप माता में लीन होकर, ब्रह्मानन्द का अनुभव करता है। और (३) फिर कर्मरूप लड़कों के बुलाने से जाग्रत्-स्वप्नरूप बहिर्भूमि में व्यवहार-रूप खेल करता है।

चतुर्थ दृष्टान्त :— (१) समुद्र-जल से पूर्ण घट को (२) गले में रस्सी बाँधकर समुद्र में लीन करें, (३) तब घट में स्थित जल समुद्र के जल से एकता को प्राप्त होता है, (४) तो भी घटरूप उपाधि कर भिन्न सा है। और (५) फिर रस्सी को खींचने पर जल-सहित बाहिर आकर भेद को पाता है। (६) परन्तु जल सहित घट का आधार घटाकाश और समुद्र का आधार महाकाश भिन्न होते नहीं, अपितु (७) तीनों काल में एक रस ही हैं।

सिद्धान्त :— ऐसे ही (१) अज्ञानरूप समुद्र-जल से पूर्ण लिङ्ग-देहरूप घट है। (२) अदृष्टरूप रस्सी से बन्धा हुआ सुषुप्तिकाल में और उसके अवान्तर भेदरूप मरण, मूर्छाकाल में वह व्यष्टि-अज्ञान में लीन होता है और वही प्रलयकाल में समष्टि-अज्ञान-रूप ईश्वर की उपाधि माया में लीन होता है। (३) तब जीव की उपाधि व्यष्टि-अज्ञानरूप वही अविद्या समष्टि-अज्ञान से एकता को प्राप्त होती है। (४) तो भी संस्काररूप उपाधि-युक्त लिङ्ग शरीर भिन्नसा है।

Scanned with CamScanner

और (५) अदृष्टरूप रस्सी को अन्तर्यामी द्वारा प्रेरने पर भेद को पाता है। परन्तु (६) व्यष्टि-अज्ञानरूप जल सहित लिङ्ग-देहरूप घट का आधार 'साक्षी-चेतन' और समष्टि-अज्ञान रूप समुद्र का आधार 'चिदाकाश' (ब्रह्म चेतन), दोनों भिन्न होते नहीं, अपितु (७) तीनों काल में एक रस ही हैं।

१२४ प्रश्न— **सुषुप्ति के कहने से क्या सिद्ध हुआ ?**

उत्तर— १) सुषुप्ति अवस्था होती है, उसको भी मैं जानता हूँ। और

२) जाग्रत् स्वप्न में यह नहीं होती, तब उसके अभाव को भी मैं जानता हूँ।

इसलिए यह सुषुप्ति अवस्था मैं नहीं और मेरी नहीं, यह कारणदेह की है। मैं इसका जाननेवाला साक्षी, घटसाक्षी की भाँति, इससे न्यारा हूँ।

इस रीति से सुषुप्ति अवस्था का मैं साक्षी हूँ।

इति श्री विचार चन्द्रोदये अवस्था त्रय साक्षी वर्णन नामिका पञ्चम् कला समाप्तः ॥५॥

Scanned with CamScanner

इन्द्रियों के प्रत्यक्षीकरण का विवेचन :

साक्षी-आत्मा स्वयंप्रकाश है। इसके सन्मुख जो भी पदार्थ, अवस्था आदि होती है, वह इसके प्रकाश से ही प्रकाशित होती है। इन्द्रिय-करण द्वारा बाह्य जगत्, अन्त:करण की वृत्तियों द्वारा सुख-दु:ख एवम् अहम् ब्रह्मास्मि वृत्ति स्वयं, सभी इस साक्षी के सन्मुख होने पर इसी के प्रकाश से ही प्रकाशित होते हैं। इस प्रकार साकार ब्रह्म पर्यन्त सारा जगत् साक्षी-भाष्य ही है।

साक्षी-आत्मा अन्त:करण-उपाधि-उपहित है। दसों इन्द्रियें अन्त:करण-उपहित आत्मा के आश्रित होने पर भी 'पराञ्चिखानि' श्रुति के कथनानुसार स्वयंभू द्वारा ये बहिर्मुखी अर्थात् विषयोन्मुख ही रची गई हैं। अत: ये कभी भी साक्षी-सन्मुख हो पाती नहीं और इसलिए साक्षी-भाष्य हो ही नहीं सकती।

पुन: ये इन्द्रिएँ अपञ्चीकृत भूतों के कार्य होने से प्रत्यक्षादि प्रमाणों द्वारा भी प्रत्यक्ष होने के अयोग्य ही हैं।

फिर भी प्रमाण-सिरताज वेद-शास्त्र इन इन्द्रियों की सत्ता स्वीकार कर इनका कथन कर रहे हैं। और इन इन्द्रियों द्वारा होने वाले ज्ञानात्मक व क्रियात्मक व्यवहारों की प्रतीति तथा अनुभूति तो प्राणी-मात्र को सदैव प्रत्यक्ष प्रमाण द्वारा हो ही रही है। प्रबलातिप्रबल इन दोनों हेतुओं के आधीन अनुमान-प्रमाण द्वारा ये इन्द्रियें अनुमेय हैं।

मन, बुद्धि चित्त व अहंकार, इन चारों वृत्तियों सहित अन्त:करण और पाँचों प्राण साक्षी-सन्मुख हैं। अत: ये सभी साक्षी-भाष्य ही है।

***

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ षष्ठम् कला प्रारम्भः ॥६॥

* प्रपञ्च मिथ्यात्व वर्णन *

॥ ललित[८३] छन्द ॥

सकल दृश्य सो-ऽध्यास छोड़ना।
जग अधार में चित्त जोड़ना॥
त्रयदशाहि[८४] जो जाग्रदादि हैं।
सब प्रपञ्च सो भिन्न नाहिं हैं॥६॥

सकल दृश्य (सम्पूर्ण संसार) अध्यासरूप ही है। (दृश्यरूप वस्तु अर्थाध्यास है एवम् उसमें सतत्त्व, रसत्व और रमणीयत्व बुद्धिरूप आसक्ति ज्ञानाध्यास है।) उस अध्यास को छोड़ना (बाध करना) और जगदाधार शुद्धब्रह्म में चित्त जोड़ना चाहिए।

जाग्रदादि जो तीन अवस्थाएँ हैं, (सो) इन अवस्थाओं के अन्तर्गत (हि) ही सकल प्रपञ्च है; यह सकल प्रपञ्च इन अवस्थाओं से भिन्न अर्थात् इनकी सीमा के बाहिर बिल्कुल ही नहीं है॥६॥

---

८३ श्रीमद्भागवत के दशम स्कन्ध के इकत्तीसवें अध्यायगत गोपिकागीत की भाँति यह छन्द है।

८४ तीन अवस्था।

Scanned with CamScanner

रजत आदि हैं सीपि में यथा।
त्रयदशा सु हैं ब्रह्म में तथा।
रजत-आदिवत् दृश्य ये मृषा।
शुगतिकादिवत् ब्रह्म अमृषा[८५]॥

जैसे रजत, भोडल व कागज अपने अधिष्ठानरूप सीपी में कल्पित हैं, वैसे ही सकल प्रपञ्च सहित जाग्रत, स्वप्न व सुषुप्ति (सु) ये तीनों अवस्थाएँ अपने अधिष्ठानरूप ब्रह्म में कल्पित हैं।

जैसे रजत, सर्प व पुरुष स्व-स्व अधिष्ठानरूप सीपी, रज्जू व स्थाणु में दृश्य होने से मिथ्या हैं, वैसे ही उपरोक्त सकल प्रपञ्च सहित तीनों अवस्थाएँ भी अपने अधिष्ठानरूप ब्रह्म में दृश्य होने से मिथ्या ही हैं। सीपी, रज्जु व स्थाणु की भाँति, अधिष्ठान होने से ब्रह्म सत्य है॥९॥

व्यभिचरै मिथो[८६] रजत आदि[८७] ज्यों।
इनहि की मिथो व्यावृती[८८] जु त्यों॥

---

८५ अ+मृषा=झूठ नहीं अर्थात् सत्य। ८६ परस्पर।
८७ यहाँ 'आदि' शब्द द्वारा भोडल (अभ्रक) और कागज का ग्रहण है।
८८ भेद अर्थात् अन्योन्या-भाव।

Scanned with CamScanner

शुगति सूत्रवत्[८९] अनुग एक जो।
अनुवृतीयुतो[९०] ब्रह्म आप सो ॥८॥

जैसे रजत, भोडल व कागज का परस्पर तथा अधिष्ठानरूप सीपी के साथ (व्यभिचार) भेद हैं, वैसे ही सकल प्रपञ्च सहित (जु) जो तीनों अवस्थाएँ हैं (इनहि की) इनका भी आपस में तथा अधिष्ठानरूप ब्रह्म के साथ (व्यावृति) भेद है, अन्योन्याभाव है।

जैसे रजत आदि में ओत प्रोत एक ही सीपी है और सूत्र से बनी हुई माला में ओतप्रोत एक ही सूत्र है, वैसे ही सकल प्रपञ्च सहित तीनों अवस्थाओं में जो अनुस्यूतता करके युक्त अर्थात् ओत प्रोत है सो एक स्वयं ब्रह्म आप ही है॥८॥

शुगतिका महीं तीन अंश[९१] ज्यूँ॥
अजड़ ब्रह्म में तीन अंश त्यूँ॥
उभय-अंश[९२] कूँ सत्य जानिले।
त्रतिय[९३] त्याग दे मोक्ष तौ मिले॥९॥

---

८९ सूत्र से बनी माला में सूत्र की भाँति।
९० अनुस्यूतता करके युक्त।
९१ सामान्य, विशेष और कल्पित-विशेष; ये तीन अंश हैं।
९२ सामान्य और विशेष-इन दो अंशों को।
९३ तृतीय कल्पित विशेष-अंश को।

Scanned with CamScanner

जैसे सीपी में (१) सामान्य, (२) विशेष और (३) कल्पित-विशेष ये तीन अंश होते हैं, वैसे ही चेतन ब्रह्म में भी तीन अंश हैं। इन तीन में से सामान्य और विशेष, इन दो अंशों को साधक सत्य जान ले और तीसरे कल्पित-विशेष अंश को त्याग दे तो उसे मोक्ष अवश्य ही मिलता है॥९॥

भिद-भ्रमादि[९४] जो पंचधाभवं[९५]।
त्रिविध तापता तप्त सो दवं[९६]॥
परशु[९७] पंचधा-युक्तियों करी।
करि विचार तूँ छेद ना डरी॥१०॥

भेद-भ्रान्ति आदि जो पाँच प्रकार की भ्रान्तियाँ हैं, वही पाँच प्रकार का संसार है। यह संसाररूपी वन त्रिविध तापों से तप्त (पीड़ित) हो रहा है। साधक, तूँ इस संसाररूपी वन को पाँच प्रकार की दृष्टान्तात्मक युक्तियाँ-रूपी कुल्हाड़ियों द्वारा विचार कर छेदन कर दे; इसमें डर मत॥१०॥

---

९४ भेद-भ्रांति आदि। यहाँ 'आदि' शब्द से कर्त्ता-भोक्तापने की भ्रांति, सङ्ग-भांति, विकार-भ्रांति और ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यता की भ्रांति-**इन चारों** का ग्रहण है।

९५ पाँच प्रकार का संसार है। ९६ वन है।

९७ अन्वय:- पञ्चधा अर्थात् पाँचप्रकार की युक्तियों अर्थात् दृष्टान्तरूप परशु अर्थात् कुठार करके।

Scanned with CamScanner

न हि जु जाहि में तीन काल में।
तहँहि भान व्है मध्य काल में।।
शुगति रौप्यवत् ध्यास सो भ्रमं।
अरथ-ज्ञान[९८] दो-भाँति का क्रमं।।११।।

ये जो प्रपञ्चसहित तीनों अवस्थाएँ हैं सो तीन काल में भी ब्रह्म में हैं ही नहीं; फिर भी वे सब मध्यकाल (वर्तमान्काल अर्थात् भ्रान्तिकाल) में उसी ब्रह्म में ही सत्य प्रतीत होती हैं।

जैसे सीपी में चांदी आदि का जो अध्यास है सो भ्रम है, वैसे ही ब्रह्म में प्रपञ्च सहित अवस्थात्रय का अध्यास भी भ्रम ही है। यह भ्रम 'अर्थाध्यास' और 'ज्ञानाध्यास' इस क्रम से दो प्रकार का है।।१।।

द्विविध[९९] वेम है ज्ञान अर्थ को।

---

९८ **अन्वयः-** सो भ्रम अर्थात् अध्यास, अर्थ-अध्यास अर्थात् अर्थाध्यास और ज्ञान-अध्यास अर्थात् ज्ञानाध्यास ; इस क्रम से दो प्रकार का है।

९९ अन्वयः- ज्ञानवेम अर्थात् ज्ञानाध्यास और अर्थवेम अर्थात् अर्थाध्यास ; प्रत्येक वेम, स्वरूपाध्यास और सम्बन्धाध्यास (संसर्गाध्यास) भेद से, दो दो प्रकार का होता है।

कल्पित सर्प का ज्ञान स्वरूप से व्यावहारिक रस्सी के इदं पने के ज्ञान में अध्यस्त है। यह **स्वरूपाध्यास** है। और

Scanned with CamScanner

अरथ-भ्रांति[१००] वा षड् विधा बको।।
सकल ध्यास जे जगत में दसे[१०१]।

व्यावहारिक रस्सी के इदं पने के ज्ञान का सम्बन्ध कल्पित सर्प के विशेष ज्ञान में अध्यस्त है। यह **सम्बन्धाध्यास** है।

इस प्रकार एक ही ज्ञानाध्यास दो प्रकार का हुआ।

कल्पित सर्प स्वरूप से व्यावहारिक रस्सी में अध्यस्त है। यह **स्वरूपाध्यास** है। व्यावहारिक रस्सी का सम्बन्ध कल्पित सर्प में अध्यस्त है। यह **सम्बन्धाध्यास** है।

इस प्रकार एक ही अर्थाध्यास दो प्रकार का हुआ।

सिद्धान्त :- वैसे ही व्यावहारिक जगत् का ज्ञान स्वरूप से पारमार्थिक ब्रह्म के इदं पने के ज्ञान में अध्यस्त है। यह **स्वरूपाध्यास** है। पारमार्थिक ब्रह्म की इदंता ज्ञान का सम्बन्ध व्यावहारिक जगत् के ज्ञान में अध्यस्त है। यह **संबंधाध्यास** है।

इस प्रकार एक ही ज्ञानाध्यास दो प्रकार का हुआ।

व्यावहारिक जगत् स्वरूप से पारमार्थिक ब्रह्म में अध्यस्त है। यह **स्वरूपाध्यास** है। पारमार्थिक ब्रह्म का सम्बन्ध व्यावहारिक जगत् में अध्यस्त है। यह **सम्बन्धाध्यास** है।

इस प्रकार एक ही अर्थाध्यास दो प्रकार का हुआ।

१०० वा (अथवा) अरथ भ्रांति अर्थात् अर्थाध्यास षड् विधा अर्थात् षट् प्रकार का, बको अर्थात् कहो (कहा गया है)।

१०१ दिखाए गए हैं।

Scanned with CamScanner

सब सु याहि के बीच में धसे[१०२]॥१२॥

ज्ञानवेम (ज्ञानाध्यास) और अर्थवेम (अर्थाध्यास), प्रत्येक, स्वरूपाध्यास एवम् सम्बन्धाध्यास (संसर्गाध्यास) भेद से, दो दो प्रकार का होता है। पुनः यही अर्थाध्यास छः प्रकार का कहा गया है।

जो सारे अध्यास (छः अध्यास एवम् पाँच भ्रान्तिएँ) जगत् में दिखाए गए हैं। (सु) वे सब (याही) इसी अर्थाध्यास के द्वि विभाग स्वरूपाध्यास और सम्बन्धाध्यास के अन्तर्गत ही समा जाते हैं॥१२॥

निज चिदात्म कूँ ब्रह्म जानिके।
सकल वेम को मूल[१०३] भानिके॥
परम-मोद[१०४] कूँ आप बूजिले।
इहहि मुक्ति पीताम्बरो मिले॥१३॥

पीताम्बरजी कहते हैं कि निजस्वरूप चिदात्मा को ब्रह्मस्वरूप जानकर, सारे अध्यासों का मूलभूत अर्थात् कारण-स्वरूप जो अज्ञान है उसका बाधकर, "मैं स्वयं ही परमानन्दस्वरूप ब्रह्म हूँ," ऐसा दृढ़ निश्चय करने से (इहहि) इसी जीवन में ही मुक्ति मिल जाती है॥१३॥

---

१०२ प्रवेश को पाए हैं। १०३ अज्ञान।
१०४ परमानन्द रूप ब्रह्म को आत्मा जान ले।

Scanned with CamScanner

१२५ प्रश्न— **आत्मा में तीनअवस्थाएँ किस की भाँति भासती (प्रतीत होती) हैं ?**

उत्तर— दृष्टान्त:—सीपी में रूपा (चाँदी) अथवा भोडल (अभ्रक) अथवा चाँदीवत् चमकीला कागज; ये तीनों सीपी के अज्ञान से कल्पित भासते हैं।

(१) इन तीनों का परस्पर व सीपी के साथ व्यतिरेक है।

(क) सीपी में जब रूपा भासता है, तब भोडल और कागज नहीं भासते।

(ख) जब भोडल भासता है, तब रूपा और कागज नहीं भासते और

(ग) जब कागज भासता है, तब रूपा और भोडल नहीं भासते।

यह इन तीनों का **परस्पर व्यतिरेक** (भेद) है।

सीपी में आदि (भ्रांति से पूर्व), मध्य (भ्रांतिकाल) और अन्त (भ्रांति की निवृत्तिकाल) में इन तीनों वस्तुओं का व्यावहारिक और पारमार्थिक अत्यन्त अभाव है। यह सीपी में इन तीनों का **व्यतिरेक** है।

(२) सीपी का इन तीनों वस्तुओं में अन्वय है। भ्रांतिकाल में (क) **यह** रूपा है।' (ख) '**यह** भोडल है।' (ग) '**यह** कागज है।'

इस रीति से सीपी का 'इदं अंश' इन तीनों वस्तुओं

Scanned with CamScanner

में अनुस्यूत भासता है। यह इन तीनों वस्तुओं में सीपी का **अन्वय** है।

यहाँ सीपी के तीन अंश हैं

(१) सामान्य अंश (२) विशेष अंश और (३) कल्पित विशेष अंश।

[१] जो अधिक समय तक प्रतीत होता है, वह **सामान्य अंश** कहलाता है। इदं पना।

१) भ्राँतिकाल में प्रतीत होता है। और

२) भ्राँतिकाल के अभावकाल में ही 'यह सीपी है', ऐसे प्रतीत होता है।

अत: यह इदं पना **सामान्य अंश** है। इसको आधार भी कहते है।

[२] जो न्यूनकाल में प्रतीत होता है, वह **विशेष अंश** कहलाता है।

१) भ्राँतिकाल में नीलपृष्ठ-तीनकोण आदि की प्रतीति नहीं होती। किन्तु

२) इनकी प्रतीति से भ्रांति की निवृत्ति होती है।

अत: यह **विशेष अंश** है। इसको **अधिष्ठान** भी कहते है।

[३] अधिष्ठान के ज्ञानकाल में जो प्रतीत नहीं होता, वह **कल्पित-विशेष अंश** कहलाता है।

Scanned with CamScanner

१) रूपा आदि सीपी के अज्ञानकाल में प्रतीत होते हैं।
२) सीपी के ज्ञानकाल में इनकी प्रतीति नहीं होती।
(अर्थात् सीपी से व्यभिचारी हैं।)

अतः यह **कल्पित-विशेष अंश** है। इसको भ्राँति भी कहते हैं।

सिद्धान्त : ऐसे ही अधिष्ठानरूप आत्मा में जाग्रत् स्वप्न अथवा सुषुप्ति, ये तीनों भ्रांतियें आत्मा के अज्ञान से होती हैं। (१) इनका परस्पर और अधिष्ठान आत्मा के साथ **व्यतिरेक**[१०५] है।

(क) जाग्रत् भासता तब स्वप्न-सुषुप्ति नहीं भासते।
(ख) स्वप्न भासता, तब जाग्रत्-सुषुप्ति नहीं भासते।
(ग) सुषुप्ति भासती, तब जाग्रत्-स्वप्न नहीं भासते।

यह तीनों अवस्थाओं का **परस्पर व्यतिरेक** है और अधिष्ठान में इन तीनों अवस्थाओं का पारमार्थिक अत्यन्त अभाव (नित्य निवृत्ति) है। यह तीनों अवस्थाओं का अधिष्ठान में **व्यतिरेक** है। और

(२) आत्मा का उनमें अन्वय[१०६] है।

---

१०५ अभाव या व्यावृत्ति, यही **व्यतिरेक** है।
१०६ भाव या अनुवृत्ति, यही **अन्वय** है।

Scanned with CamScanner

आत्मा इन तीनों अवस्थाओं में अनुस्यूत होकर प्रकाशता है।

यह आत्मा का इन तीनों अवस्थाओं में **अन्वय** है।

यहाँ आत्मा के अविद्या-उपाधि से आरोपित तीन अंश है। (१) सामान्य अंश (२) विशेष अंश और (३) कल्पित-विशेष अंश।

[१] (क) 'जाग्रत है', 'स्वप्न है', 'सुषुप्ति है' इस रीति से आत्मा का सत्पना भ्राँतिकाल में भी प्रतीत होता है। और (ख) भ्रांति की निवृत्तिकाल में 'मैं सत् हूँ, चित् हूँ, आनन्द हूँ, परिपूर्ण हूँ, असङ्ग हूँ, नित्य मुक्त हूँ, ब्रह्म हूँ' इस रीति से आत्मा के सत्पने की प्रतीति होती है।

अत: यह सत्रूप ('है' पनारूप) **सामान्य-अंश** है। इसको **आधार** भी कहते हैं।

[२] चेतन, आनन्द, असङ्ग, अद्वितीयपना आदि जो आत्मा के विशेषण हैं,

(क) इनकी प्रतीति भ्रान्तिकाल में नहीं होती। किन्तु

(ख) इनकी प्रतीति से भ्रांति की निवृत्ति होती है।

अत: यह **विशेष-अंश** है। इसको **अधिष्ठान** भी कहते हैं।

Scanned with CamScanner

[३] तीन अवस्थारूप प्रपञ्च,

(क) ब्रह्म से अभिन्न आत्मा के अज्ञानकाल में प्रतीत होता है। और

(ख) 'मैं ब्रह्म हूँ' ऐसे आत्मा के ज्ञानकाल में आत्मा से भिन्न सत् प्रतीत नहीं होता।

अतः यह तीन-अवस्थारूप प्रपञ्च कल्पित विशेष-अंश है। इसको भ्राँति भी कहते हैं।

इस रीति से ये तीनों अवस्थाएँ आत्मा में मिथ्या प्रतीत होती हैं।

१२६ प्रश्न— **आत्मा में मिथ्या प्रपञ्च की प्रतीति में अन्य दृष्टान्त कौनसे हैं।**

उत्तर— (१) स्थाणु में पुरुष, (२) साक्षी में स्वप्न, (३) मरुभूमि में जल, (४) आकाश में नीलता, (५) रज्जु में सर्प, (६) जल में अधोमुख पुरुष या वृक्ष और (७) दर्पण में नगर-जो प्रतीत होते हैं, वे सब मिथ्या हैं।

ऐसे ही चिदाभास को आत्मा के अज्ञान से स्व-आत्मा में प्रपञ्च प्रतीत होता है। वह मिथ्या है।

इस रीति से प्रपञ्च के मिथ्यापने का निश्चय करना, यही **प्रपञ्च का बाध**[१०७] है।

---

१०७ मिथ्यापने के निश्चय का नाम बाध है। वह शास्त्रीय, यौक्तिक और अपरोक्ष भेद से **तीन प्रकार का** होता है।

Scanned with CamScanner

१२७ प्रश्न— **भ्राँतिरूप संसार कितने प्रकार का है ?**

उत्तर— (१) भेद-भ्रांति[१०८], (२) कर्त्ता-भोक्तापने[१०९] की भ्रांति, (३) सङ्ग[११०] की भ्रांति, (४) विकार[१११] की भ्रांति और (५) ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यता की भ्रांति।

यह **पाँच प्रकार का भ्रांतिरूप संसार है।**

---

१०८ (१) जीव व ईश्वर का भेद, (२) जीवों का परस्पर भेद, (३) जड़ों का परस्पर भेद, (४) जीव व जड़ का भेद और (५) जड़ व ईश्वर का भेद। ये **पाँचं प्रकार की भेद-भ्राँति** हैं।

१०९ अन्त:करण के धर्म कर्त्तापने व भोक्तापने की आत्मा में प्रतीति होती है। यह **कर्त्ता-भोक्तापने** की भ्रांति है।

११० आत्मा का (१) देहादि (देह, अन्त:करण आदि सङ्घात), में अहंता रूप और गृहादि में ममता रूप सम्बन्ध और (२) सजातीय, विजातीय, स्वगत वस्तु के साथ सम्बन्ध की प्रतीति यह दोनों **सङ्ग-भ्रांतियाँ** हैं।)

नोट :- **सजातीय :** ब्राह्मण देह में होने वाली अहंता को लेकर अन्य ब्राह्मणों की देहों के साथ सजातीय सङ्ग-भ्रांति है।

विजातीय : ब्राह्मण देह में होनेवाली अहंता को लेकर क्षत्रिय आदि की देहों के साथ विजातीय सङ्ग-भ्रांति है।

स्वगत : ब्राह्मण देह में होनेवाली अहंता को लेकर स्व-देह में स्थित भिन्न-भिन्न अङ्गों के साथ स्वगत सङ्ग-भ्रांति है।

१११ दूध के विकार दही की भाँति, ब्रह्म का विकार जीव तथा जगत् है। ऐसी प्रतीति ही **विकार-भ्रांति** है।

Scanned with CamScanner

१२८ प्रश्न— **पाँच प्रकार के भ्रम की निवृत्ति किन दृष्टान्तों से होती है?**

उत्तर— १) बिम्ब-प्रतिबिम्ब[११२] के दृष्टान्त से **भेद-भ्रांति की निवृत्ति** होती है।

२) स्फटिक में लाल वस्त्र के लाल रङ्ग की प्रतीति के दृष्टान्त से **कर्त्ता-भोक्तापने की भ्रांति की निवृत्ति** होती है।

३) घटाकाश के दृष्टान्त से **सङ्ग-भ्रांति की निवृत्ति** होती है।

४) रज्जु में कल्पित सर्प के दृष्टान्त से **विकार-भ्रांति की निवृत्ति** होती है। और

५) कनक (स्वर्ण) में कुण्डल की प्रतीति के दृष्टान्त से ब्रह्म से भिन्न **जगत् के सत्यपने की भ्रांति की निवृत्ति** होती है।

१२९ प्रश्न— **बिम्ब-प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से भेद-भ्रांति की निवृत्ति कैसे होती है ?**

---

११२ सूत्र भाष्य के ऊपर 'पञ्चपादिका' टीका श्री पद्मपादाचार्य ने करी है। उसका व्याख्यानरूप 'विवरण' ग्रन्थ है, जिसके कर्त्ता श्री प्रकाशात्मचरण आचार्य हैं। उनकी रीति के अनुसार उपरोक्त बिम्ब-प्रतिबिम्ब का दृष्टान्त है।

Scanned with CamScanner

उत्तर– दृष्टान्तः– (१) दर्पण में मुख का प्रतिबिम्ब भासता है। यह प्रतिबिम्ब दर्पण में नहीं है, किन्तु दर्पण को देखने के वास्ते निकली हुई नेत्र की वृति, दर्पण को स्पर्श करके पीछे लौटकर मुख को ही देखती है। इसलिए बिम्बरूप मुख के साथ प्रतिबिम्ब अभिन्न होने से मिथ्या नहीं, किन्तु सत्य है। किन्तु (२) प्रतिबिम्ब के धर्म, (क) बिंब से भिन्नपना, (ख) दर्पण में स्थितपना और (ग) बिम्ब से उलटेपना ; ये तीनों और इनकी प्रतीतिरूप ज्ञान-ये सभी भ्रांति हैं। अतः (३) इन धर्मों के मिथ्यापने का निश्चयरूप बाध करके बिंब और प्रतिबिंब का सदा अभेद निश्चय होता है।

सिद्धान्त : ऐसे ही (१) शुद्ध ब्रह्मरूप बिम्ब का अज्ञानरूप दर्पण में जीवरूप प्रतिबिम्ब भासता है, उसमें स्वप्न की भाँति, 'अहं प्रत्यय गृहीत' अर्थात् अहमाकार मै-मैं' आकार वाली बुद्धि से ग्रहण होने वाला एक जीव मुख्य है और दूसरे स्थावर-जङ्गमरूप नाना जीव भासते हैं, वे **जीवाभास** हैं। वह जीवरूप प्रतिबिम्ब ईश्वररूप बिम्ब से सदा अभिन्न हैं।

(२) परन्तु माया के बल से उस जीव के धर्म, (क) बिंबरूप ईश्वर से भेद, (ख) जीवपना, (ग) अल्पज्ञपना,

Scanned with CamScanner

(घ) अल्प शक्तिपना (ड़) परिच्छिन्नपना (च) नानापना इत्यादि और उनकी प्रतीतिरूप ज्ञान, ये सब ही भ्रांति हैं।

इसलिए (३) इनका मिथ्यापने का निश्चयरूप बाध करके जीवरूप प्रतिबिम्ब और ईश्वररूप बिम्ब का सदा अभेद निश्चय होता है।

इस रीति से बिम्ब-प्रतिबिम्ब के दृष्टान्त से भेद-भ्रांति[११३] की निवृत्ति होती है।

१३० प्रश्न— [२] **स्फटिक में लाल वस्त्र के लाल रङ्ग की प्रतीति के दृष्टान्त से कर्त्ता-भोक्तापने की भ्रांति कैसे निवृत्त होती है ?**

उत्तर— दृष्टान्तः— (१) लाल वस्त्र के ऊपर रखे स्फटिक मणि में वस्त्र का लाल रङ्ग संयोग-सम्बन्ध से भासता है। (२) परन्तु यह वस्त्र का धर्म है। (३) वस्त्र और स्फटिक के वियोग होने से स्फटिक में भासता नहीं। (४) इसलिए स्फटिक का धर्म नहीं है। किन्तु (५) स्फटिक में भ्रांति से भासता है।

---

११३ मुख्य जीव व ईश्वर के भेद के निषेध से ही अन्य चारों भेदों का निषेध सहज ही सिद्ध हो जाता है। सब भेद उपाधि के किए हुए हैं। उपाधियों के मिथ्या होने से उनके किए हुए सारे भेद भी मिथ्या ही हैं। इसलिए वास्तव में अद्वैत ब्रह्म ही अवशेष रहता है।

Scanned with CamScanner

सिद्धान्त :- ऐसे ही (१) अन्त:करण के धर्मकर्त्ता-भोक्तापना आत्मा में तादात्म्य सम्बन्ध से भासते हैं। (२) परन्तु ये अन्त:करण के धर्म हैं। (३) सुषुप्ति में अन्त:करण और आत्मा के वियोग होने पर आत्मा में भासते नहीं। (४) इसलिए आत्मा के धर्म नहीं हैं। किन्तु (५) आत्मा में भ्रांति से भासते हैं।

इस रीति से स्फटिक में लाल रङ्ग की प्रतीति के दृष्टान्त से कर्त्ता-भोक्तापने की भ्रांति की निवृत्ति होती है।

१३१ प्रश्न— **[३] घटाकाश के दृष्टान्त से सङ्ग-भ्राँति की निवृत्ति कैसे होती है ?**

उत्तर— दृष्टान्त:— (१) घट उपाधि वाले आकाश को घटाकाश कहते हैं। (२) यह आकाश घट के सङ्ग भासता है। (३) फिर भी घट के धर्म उत्पत्ति-नाश, गमन-आगमन आदि आकाश को स्पर्श नहीं करते हैं। (४) इसलिए आकाश असङ्ग है। और (५) आकाश का जो सम्बन्ध घट के साथ भासता है, वह भ्राँति है।

सिद्धान्त :— ऐसे ही (१) देहादि सङ्घातरूप उपाधि वाले आत्मा को जीव कहते हैं। (२) यह आत्मा सङ्घात के सङ्ग भासता है। (३) फिर भी सङ्घात के जन्म-मरणादि जो धर्म हैं, वे आत्मा को स्पर्श नहीं करते; क्योंकि सङ्घात

Scanned with CamScanner

दृश्य है और आत्मा द्रष्टा है। (४) इसलिए आत्मा सङ्घात से न्यारा असङ्ग है। (५) (क) आत्मा सङ्घातरूप नहीं; अत: आत्मा का सङ्घात के साथ अहंता-रूप सम्बन्ध भी नहीं। (ख) सङ्घात आत्मा का नहीं, किन्तु पञ्च-महाभूतों का है; अत: आत्मा का सङ्घात के साथ ममता-रूप सम्बन्ध भी नहीं। (ग) आत्मा सङ्घात से न्यारा है; अत: आत्मा का सङ्घात के सम्बन्धी स्त्री-पुत्र, गृहादि केसाथ ममता-रूप सम्बन्ध भी नहीं।

ऐसे आत्मा असङ्ग है। इसका सङ्घात के साथ अहंता-ममतारूप सम्बन्ध, सङ्ग-भ्रांति है।

इस रीति से घटाकाश के दृष्टान्त से **सङ्ग-भ्रांति** की निवृत्ति होती है।

१३२ प्रश्न— **[४] रज्जु में कल्पित सर्प के दृष्टान्त से विकार-भ्रांति की निवृत्ति कैसे होती है ?**

उत्तर— दृष्टान्त:— (१) मंद अन्धकार में, रज्जु को देखने के वास्ते नेत्ररूप द्वार से निकली हुई अन्त:करण की वृत्ति, अन्धकारादि दोष से, रज्जु के आकार को प्राप्त नहीं कर पाती। अत: उस वृत्ति से रज्जु के आवरण का भङ्ग नहीं होता। तब रज्जु उपाधि वाले चैतन्य के आश्रित

Scanned with CamScanner

रहने वाली तूल-अविद्या[११४] क्षोभ को पाकर सर्परूप विकार को धारण करती है। (२) यह सर्प दुग्ध के परिणाम दधि की भाँति, अविद्या का परिणाम है। और (३) रज्जु उपाधि वाले चैतन्य का विवर्त है, परिणाम (विकार) नहीं है।

सिद्धान्त :— ऐसे ही (१) ब्रह्म-चैतन्य के आश्रित रहने वाली मूल-अविद्या[११५] प्रारब्धादि निमित्त से क्षोभ[११६] को पाकर जड़ (स्थावर) और चेतन (चिदाभास-युक्त जङ्गम) प्रपञ्चरूप विकार को धारण करती है। (२) वह प्रपञ्च अविद्या का परिणाम[११७] है। और (३) अधिष्ठान[११८] ब्रह्मचैतन्य

---

११४ घटादि रूप उपाधि वाले चैतन्य को आवरण करने वाली अविद्या, तूल अविद्या है।

११५ शुद्ध ब्रह्म और आत्मा को आवरण करने वाली अविद्या, मूल अविद्या है।

११६ कार्य करने के सन्मुख होने को **क्षोभ** कहते हैं।

११७ (१) पूर्व रूप को त्याग कर अन्य रूप की प्राप्ति परिणाम है।
या (२) उपादान के समान सत्ता वाला अन्यथारूप अर्थात् उपादान से भिन्न प्रकार का आकार परिणाम है। जैसे दुग्ध का परिणाम दधि है। इसी को **विकार** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

का विवर्त[११९] है, परिणाम नहीं है।

(चिदाभास-युक्त जङ्गम में चिदाभास भाग तो ब्रह्म-चेतन का प्रतिबिम्बरूप अंश है।)

इस रीति से रज्जु में कल्पित सर्प के दृष्टान्त से विकार-भ्रांति की निवृत्ति होती है।

१३३ प्रश्न— **[५] कनक में कुण्डल की प्रतीति के दृष्टान्त से ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यता की भ्रांति की निवृत्ति कैसे होती है ?**

उत्तर— दृष्टान्तः— (१) कनक और कुण्डल का कार्य-कारण भाव करके जो भेद भासता है, वह कल्पित है। (२) कनक से कुण्डल का भिन्न स्वरूप दिखलाई नहीं देता।

---

११८ जो आप (स्वयं) निर्विकार रूप से स्थित होवे और अविद्याकृत कल्पित कार्य का आश्रय होवे, वह **अधिष्ठान** है। जैसे कल्पित सर्प का अधिष्ठान रज्जु है। इसी को परिणामी उपादान से विलक्षण **विवर्त उपादान** भी कहते हैं।

११९ अधिष्ठान से विषम सत्ता वाला अर्थात् अल्पकालीन और भिन्न सत्तावाला, अधिष्ठान से अन्यथा स्वरूप अर्थात् भिन्न प्रकार का आकार, **विवर्त** है। जैसे रज्जु का विवर्त सर्प है। इसी को **कल्पित कार्य** और **कल्पित विशेष** भी कहते हैं।

Scanned with CamScanner

(३) अतः वास्तव में अभेद है। इसलिए (४) कनक से भिन्न कुण्डल की सत्ता नहीं है।

सिद्धान्त :- ऐसे ही (१) ब्रह्म और जगत् का कार्य-कारण भाव लेकर और दोनों के भिन्न-भिन्न विशेषणों को लेकर जो भेद भासता है,वह कल्पित है। (ब्रह्म कारण है, जगत् कार्य है। ब्रह्म के सत्-चित्-आनन्दादि और जगत् के असत्, जड़, दुःखादि विशेषण हैं।) (२) विचारपूर्वक देखा जाय तो अस्ति, भाति, प्रिय से भिन्न नाम-रूप जगत् सत्य सिद्ध नहीं होता किन्तु मिथ्या ही सिद्ध होता है और जो वस्तु जिसमें कल्पित होती है, वह वस्तु उससे भिन्न सिद्ध नहीं होती। (३) अतः ब्रह्म से जगत् का वास्तव अभेद है। इसलिए (४) ब्रह्म से भिन्न जगत् की सत्ता नहीं है।

इस रीति से कनक में कुण्डल की प्रतीति के दृष्टान्त से, ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यता की भ्रांति की निवृत्ति होती है।

१३४ प्रश्न— **भ्रांति क्या है ?**

उत्तर— भ्रांति अध्यास है ?

१३५ प्रश्न— **अध्यास क्या है ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— भ्रांति ज्ञान का विषय, मिथ्या वस्तु और उसका भ्रांति ज्ञान ; इन दोनों का नाम अध्यास है।

१३६ प्रश्न— **यह अध्यास कितने प्रकार का है ?**

उत्तर— ज्ञानाध्यास और अर्थाध्यास। इस भेद से अध्यास दो भाँति का है।

अर्थाध्यास के निम्न षट् प्रकार होते हैं:

१) केवल सम्बन्धाध्यास[१२०],

२) सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास[१२१],

(नोट:- निम्न टिप्पणों को भली प्रकार समझने के लिए इसी कला के अन्त में दिए हुए विवरण को भी देखें।)

१२०. चिदाभास को अनात्मा में (तीनों देहों में अथवा सङ्घात में) आत्मा का अध्यास होता है। उस समय में आत्मा का अनात्मा के साथ तादात्म्य सम्बन्ध मात्र अध्यस्त है; स्वरूप नहीं (क्योंकि मिथ्या वस्तु ही अध्यस्त (कल्पित) होती है और आत्मा तो मिथ्या है नहीं)। इसलिए अनात्मा में आत्मा का केवल **सम्बन्धाध्यास** है।

(संक्षेप में अनात्मा में आत्मा का सम्बन्ध-मात्र ही अध्यस्त है, स्वरूप नहीं। यह केवल **सम्बन्धाध्यास** है।)

१२१ आत्मा में अनात्मा का तादात्म्य सम्बन्ध और स्वरूप दोनों अध्यस्त हैं। इसलिए आत्मा में अनात्मा का **सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास** है।

Scanned with CamScanner

३) केवल धर्माध्यास[१२२],

४) धर्म सहित धर्मी का अध्यास [१२३],

५) अन्योन्याध्यास[१२४] और

६) अन्यतराध्यास[१२५]।

---

१२२ स्थूलदेह के गोरा-कालापना आदि और इन्द्रियों के दर्शन आदि धर्मों का ही आत्मा में अध्यास होता है ; उनके स्वरूप (धर्मी) का नहीं। इसलिए आत्मा में देह और इन्द्रियों के केवल धर्मों का अध्यास है। **अत: यह धर्माध्यास** है।

१२३ अन्त:करण के कर्त्ता-भोक्तापना आदि धर्म और स्वरूप (धर्मी) दोनों आत्मा में अध्यस्त हैं। इसलिए अन्त:करण का आत्मा में धर्म **सहित धर्मी का अध्यास** है।

१२४ लोहा और अग्नि की तरह, आत्मा में अनात्मा का और अनात्मा में आत्मा का अध्यास **अन्योन्याध्यास** है।

(लोहे के अग्नि में तपकर लाल होने पर, लोहे का आकार अग्नि में और अग्नि की लालिमा लोहे में प्रतीत होती है। इसी भाँति अन्त:करण और देहादि का चेतन के साथ संयोग होने पर, अन्त:करण के कर्त्ता-भोक्तापना और देह के जन्म-मरणादि धर्म आत्मा में और आत्मा के सत्-चित् धर्म अन्त:करण और देहादि में प्रतीत होते हैं।)

१२५ अनात्मा में आत्मा का स्वरूप अध्यस्त नहीं, किन्तु आत्मा में अनात्मा का स्वरूप अध्यस्त है। यही **अन्यतराध्यास** है। दोनों में से एक के अध्यास को **अन्यतराध्यास** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

अथवा स्वरूपाध्यास[१२६] और संसर्गाध्यास[१२७], इस भेद से, अर्थाध्यास दो प्रकार का है। उपरोक्त षट् अध्यास इनके अन्तर्गत[१२८] ही हैं और पाँचों भ्रांतियाँ भी इन दोनों के अन्तर्गत[१२९] ही हैं। आत्मा-अनात्मा के विशेषणों का अन्योन्याध्यास भी इन दोनों के अन्तर्गत ही है (देखो टिप्पण १३० पृष्ठ १६८-१६९)।

---

१२६ ज्ञान से बाध होने योग्य वस्तु ही अधिष्ठान में स्वरूप से अध्यस्त होती है। देहादि अनात्मा का अधिष्ठान के ज्ञान से बाध होता है। इसलिए इस सङ्घात का आत्मा में **स्वरूपाध्यास** है।

१२७ बाध के अयोग्य वस्तु का स्वरूप अध्यस्त नहीं होता अपितु उसका सम्बन्ध मात्र ही अध्यस्त होता है। इसलिए अनात्मा में आत्मा का **संसर्गाध्यास** है। इसी को सम्बंधाध्यास भी कहते हैं।

१२८ **स्वरूपाध्यास के अन्तर्गत:-**
(१ केवल धर्माध्यास, (२) धर्म सहित धर्मी का अध्यास, (३) अन्यतराध्यास, (४) सम्बन्ध सहित सम्बन्धी का अध्यास। इसको संसर्गाध्यास सहित स्वरूपाध्यास भी कहते हैं और ($४\frac{१}{२}$ अन्योन्याध्यास का आधा भाग-अनात्मा का स्वरूप ही आत्मा में अध्यस्त है। इसलिए यह स्वरूपाध्यास है।)
ससंर्गाध्यास के अन्तर्गत:-
(१) केवल सम्बन्धाध्यास और ($१\frac{१}{२}$) अन्योन्याध्यास का

शेष पृष्ठ १७८ पर

Scanned with CamScanner

१३७ प्रश्न— **अहंकारादि अनात्मा का और आत्मा का अध्यास जानने में विशेष उपयोगी अर्थात् सर्व अध्यासों में अनुस्यूत कौनसा अध्यास है।**

उत्तर— अन्योन्याध्यास है।

१३८ प्रश्न— **अन्योन्याध्यास क्या है ?**

उत्तर— परस्पर में परस्पर के अध्यास का नाम अन्योन्याध्यास[१३०] है।

आधा भाग- आत्मा का स्वरूप सत्य होने से अध्यस्त नहीं, किन्तु उसका संसर्ग अर्थात् तादात्म्य सम्बन्ध अनात्मा में अध्यस्त है। इसलिए यह संसर्गाध्यास है। इस प्रकार अन्योन्याध्यास दोनों के अन्तर्गत है।

१२९ **स्वरूपाध्यास के अन्तर्गत:-**
(१) भेद-भ्रांति, (२) कर्त्ता-भोक्तापने की भ्रांति, (३) विकार की भ्रांति और (४) ब्रह्म से भिन्न जगत् के सत्यता की भ्रांति है। और
संसर्गाध्यास के अन्तर्गत:- (१) सङ्ग-भ्रांति है।
(नोट :- इस प्रकार स्वरूपाध्यास के अन्तर्गत ४$\frac{१}{२}$ अध्यास एवं ४ भ्रांति-कुल ८$\frac{१}{२}$ होती हैं और संसर्गाध्यास के अन्तर्गत १$\frac{१}{२}$ अध्यास एवं १ भ्रांति-कुल २$\frac{१}{२}$ होती हैं।)

१३० यहाँ सब अध्यासों के स्वरूप और उदाहरण विस्तार के भय से विशेष नहीं लिखकर संक्षेप से ही लिखे हैं। परन्तु

Scanned with CamScanner

१३९ प्रश्न— **आत्मा और अनात्मा का परस्पर अध्यास कैसे है ?**

उत्तर— [१-४] सत्, चित्, आनन्द और अद्वैत-पना; ये चार विशेषण आत्मा के हैं।

[१-४] असत्, जड़, दु:ख और द्वैत-सहितपना (प्रलयकाल में अनात्मा में द्वैतपना प्रतीत होता नहीं, सृष्टिकाल में होता है। इसी हेतु से 'द्वैत-सहितपने' का प्रयोग है) ; ये चार विशेषण अनात्मा के हैं।

उनमें [१-२] अनात्मा के दु:ख और द्वैत सहितपना ;

अन्योन्याध्यास के स्वरूप को विशेष उपयोगी जानकर स्पष्ट दिखाया है। उसमें-

१) अनात्मा के धर्म दु:ख और द्वैत-सहितपना, आत्मा के आनन्द और अद्वैतपने में स्वरूप से अध्यस्त होकर उनको ढकते हैं। और

२) आत्मा के धर्म सत् और चित्, अनात्मा के असत्ता और जड़ता में संसर्ग (सम्बन्ध) द्वारा अध्यस्त होकर उनको ढ़कते हैं।

कार्य सहित अज्ञान से जो आवृत (ढ़का हुआ) होता है, उसे **अधिष्ठान कहते** हैं।

इस रीति से आत्मा और अनात्मा का यह अन्योन्याध्यास संसर्गाध्यास और स्वरूपाध्यास दोनों के अन्तर्गत है।

Scanned with CamScanner

इन दोनों विशेषणों ने आत्मा के आनन्द और अद्वैतपने को ढ़क रखा है। इस कारण से आत्मा में:-

१) 'मैं आनन्दरूप और अद्वैतरूप हूँ' ऐसी प्रतीति नहीं होती। किन्तु

२) 'मैं दुःखी और ईश्वरादि से भिन्न हूँ' ऐसी प्रतीति होती है।

[३-४] आत्मा के सत् और चित् ; इन दोनों विशेषणों ने अनात्मा के असत् और जड़पने को ढ़क रखा है। इस कारण से अनात्मारूप अहंकारादि में :-

३) 'असत् है और अभान (जड़) रूप है' ऐसी प्रतीति नहीं होती। किन्तु

४) 'विद्यमान है और भासता (चेतन) है' ऐसी प्रतीति होती है।

इस रीति से आत्मा और अनात्मा का परस्पर[१३१] अध्यास है।

इति श्री विचार चन्द्रोदये प्रपञ्च मिथ्यात्व वर्णन नामिका षष्ठ कला समाप्तः ॥६॥

---

१३१ ब्रह्म व ईश्वर का और कूटस्थ व जीव का जो परस्पर अध्यास है, उसका वर्णन आगे ग्यारहवीं कला में करेंगे।

Scanned with CamScanner

कुछ परिभाषाएँ व विवेचन

(१) **आत्मा:**— शुद्ध साक्षी चेतन आत्मा है।

(२) **अनात्मा:**— स्थूल, सूक्ष्म एवं कारण-तीनों देह अनात्मा है।

(३) **चिदाभास:**— सूर्य-प्रकाश स्वच्छ शीशे को बाहिर-भीतर से धूपरूप से व्याप्त कर, शीशे में पड़कर उसी शीशे के आकार वाली चमक बनकर, दीवार-स्थित सामान्य धूप पर शीशे के आकाररूप से भासता है। यह सामान्य धूप न होकर, सामान्य धूप सा ही है। इसको **दुपट्टा-प्रकाश** कहते हैं। शीशे की उपाधि नष्ट होने पर यह प्रकाश सामान्य धूप ही है।

ऐसे ही शुद्ध ब्रह्मस्वरूप प्रकाश अन्त:करण अथवा व्यष्टि-अज्ञान को बाहिर-भीतर से कूटस्थरूप से व्याप्त कर, अन्त:करण में पड़कर, उसी अन्त:करण के आकार की चमक बनकर, स्थूल-सूक्ष्मादि शरीर के अधिष्ठान-रूप इसी कूटस्थ पर अन्त:करण के आकाररूप (''मैं'' रूप) से, दुपट्टा-प्रकाशवत्, भासता है। यही चिदाभास का स्वरूप है। यही **जीव** कहलाता है।

Scanned with CamScanner

यह चिदाभास चैतन्य के लक्षण से रहित है फिर भी चैतन्य की भाँति प्रतीति वाला है एवम् चेतनसा है।

"मैं" पद के प्रयोग-अप्रयोग को लेकर **जड़** और **चेतन** की दो-दो कोटि बन जाती हैं। स्थूल-सूक्ष्म देहादि जड़ पदार्थों में तो "मैं अमुक नाम आदि, गुण आदि वाला हूँ", इस प्रकार "मैं" पद का प्रयोग होता है और घट-स्तम्भादि जड़ पदार्थों में "मैं" पद का प्रयोग नहीं होता। ऐसे ही साक्षी-चेतन में तो "मैं आत्मा हूँ", इस प्रकार "मैं" पद का प्रयोग होता है, लेकिन ईश्वर-चेतन में "मैं" पदका प्रयोग नहीं होता।

घट-स्तम्भादि **जड़**, व ईश्वर आदि **चेतन**, "मैं" बुद्धि के विषय नहीं हैं, लेकिन चिदाभास "मैं" बुद्धि का विषय है। अत: चिदाभास इन दोनों से स्वत: ही अति विलक्षण है।

स्थूल-सूक्ष्म देहादि जड़, साक्षी चेतन तथा स्वयं चिदाभास-ये तीनों "मैं" पद के प्रयोग-स्थल होने में तो समान हैं, लेकिन चिदाभास, स्थूल-सूक्ष्म देहादि जैसा जड़ न होकर, उनसे अति विलक्षण है।

चिदाभास साक्षी-चेतन से भी विलक्षण है। यह स्वयं

Scanned with CamScanner

चेतन न होकर चिद्-आभास अर्थात् चेतन की आभा, चमक, प्रतिबिम्ब, छाया-मात्र ही है। साक्षी-चेतन अन्त:करण के धर्मों से रहित सामान्य चेतनस्वरूप, अविनाशी, निर्विकारी आदि हैं। और चिदाभास इनसे बिल्कुल उल्टे धर्मों वाला है, फिर भी साक्षी-चेतन सा है। अपने धर्म व स्वरूप को त्याग देने पर साक्षी-स्वरूप ही है।

इस प्रकार चिदाभास न जड़ है, न चेतन ; न अनात्मा है, न आत्मा ही ; अपितु एक बीच की कोटि का **अनिर्वचनीय** है।

(४) **चिदाभास को अनात्मा में आत्मा के अध्यासों के आकार:-**

(क) **स्थूलदेह** में "मैं अमुक नाम वाला हूँ" और इसके धर्मों में "मैं जन्म-मरणादि धर्मों वाला हूँ, मैं गोरा-काला आदि रूप वाला हूँ", ऐसे अध्यास होते हैं।

(ख) अहं अहं वृत्ति के संस्कार-आत्मक अन्त:करण-प्रधान **सूक्ष्मदेह** में "मैं हूँ" और इसके धर्मों में "मैं विद्वान् हूँ, मैं गुणवान् हूँ, मैं कर्त्ता-भोक्ता, सुखी-दु:खी हूँ" आदि रूप वाले अध्यास होते हैं।

(ग) अविद्यात्मक **कारणदेह** में "मैं अज्ञानी हूँ" ऐसा अध्यास होता है और अज्ञान की आवरण-शक्ति के

Scanned with CamScanner

कार्य असत्त्वापादक व अभानापादक नामक अध्यास होते हैं।

(घ) **सङ्घात** में तो आत्मा का एक ही मिला-जुला अध्यास होता है।

जैसे 'हलुवा' आटा, चीनी व घृत-तीनों का मिलाजुला सङ्घात है, वैसे ही 'जीव' भी अन्त:करण, साक्षी एवम् चिदाभास-इन तीनों का मिलाजुला सङ्घात हैं। अहं अहं वृत्ति-धारा वाला अन्त:करण है; इस धारा आदि सर्व का प्रकाशक साक्षी है। और इसी धारा का अभिमानी चिदाभास है।

यह स्पष्टतया जानकर चिदाभास स्व-सहित अन्त:करण का बाधकर साक्षी में स्थिति करता हुआ ब्रह्म की प्राप्ति करे-यही चिदाभास का परम प्रयोजन है।

(५) अध्यास एवं उसका हेतु:-

अध्यास:- भ्रांति-ज्ञान का विषय मिथ्या वस्तु और उसका ज्ञान-इन दोनों का नाम अध्यास है। इसी को भ्रान्ति, भ्रम अथवा वेम भी कहते हैं।

हेतु:- अधिष्ठान के सामान्यरूप का ज्ञान और विशेष रूप का अज्ञान ही अध्यास का हेतु है और यह अध्यास चिदाभास को अधिष्ठान-आत्मा व अध्यस्त-अनात्मा के

Scanned with CamScanner

सम्बन्ध-भ्रम से ही होता है।

६) **अर्थाध्यास:-** भ्रांति-ज्ञान का विषय मिथ्या वस्तु, अर्थाध्यास है।

७) **ज्ञानाध्यास:-** भ्रांति-ज्ञान, ज्ञानाध्यास है।

८) **अर्थाध्यास का हेतु:-** अधिष्ठान के सामान्य स्वरूप और अध्यस्त के विशेष स्वरूप, दोनों के भिन्न-भिन्न होने पर भी, उन दोनों के भेद का अग्रहण, अर्थाध्यास का हेतु है।

९) **ज्ञानाध्यास का हेतु:-** अधिष्ठान के सामान्य स्वरूप को विषय करने वाली 'अहम्-अहम्, इदम्-इदम्' इन दोनों आकारों वाली अन्त:करण को वृत्ति-रूप ज्ञान और अध्यस्त के विशेष स्वरूप को विषय करने वाली 'मैं अमुक हूँ', 'यह अमुक वस्तु है', इन दोनों आकार वाली अविद्या की वृत्ति-रूप ज्ञान-इन दोनों के भेद का अग्रहण ज्ञानाध्यास का हेतु है।

१०) **भ्रांति ज्ञान:-** 'मैं अमुक हूँ' 'यह सर्प है' इस प्रकार का अविद्या की वृत्ति, भ्रांति-ज्ञान है और यही ज्ञानाध्यास एवं विपरीत भावना है।

११) **भ्रांति-ज्ञान का हेतु:-** अन्त:करण की वृत्ति-रूप ज्ञान और अविद्या की वृत्ति-रूप ज्ञान-इन दोनों ज्ञानों के भिन्न-भिन्न होने पर भी एक रूप की प्रतीति भ्रांति-ज्ञान का

Scanned with CamScanner

हेतु है।

१२) **तादात्म्य सम्बन्ध:-** अधिष्ठान और अध्यस्त का वास्तविक अभेद और कल्पित भेद, तादात्म्य सम्बन्ध है।

१३) **अहंकार के स्वरूप:-**

(१) **सामान्य अहंकार (अन्त:करण):-** देहादि धर्म के उद्देश्य से रहित केवल 'अहम्' (मैं) ऐसा स्फुरण अर्थात् सर्वप्रथम ईक्षण स्फूर्ति ही सामान्य अहंकार है। यही अन्त:करण है और मन, बुद्धि आदि चारों वृत्तियों का उपादान कारण है। और

(२) **विशेष अहंकार:-** देहादि धर्म (नाम, जाति आदि) को उद्देश्य करके उदय हुआ 'अहम्' (मैं) ऐसा स्फुरण अशुद्ध अहंकार है और ब्रह्म को उद्देश्य करके उदय हुआ 'अहम्' (मैं) ऐसा स्फुरण शुद्ध अहंकार है। ये विशेष अहंकार के दो प्रकार हैं।

शङ्का:- रस्सी-सर्प, सीपी-चाँदी के भिन्न-भिन्न होते हुए भी 'यह सर्प है', 'यह चाँदी है' इन दोनों आकारों वाले भ्रांति-व्यवहार में रस्सी और सर्प की लम्बाई, मोटाई आदि एवं सीपी और चाँदी की चाकचिक्यता, श्वेततादि की सादृश्यता होने पर एक ही इदम् बुद्धि के सन्मुख अधिष्ठान व अध्यस्त दोनों के सम्बन्ध का भ्रम व्यक्ति को होता है।

Scanned with CamScanner

ऐसे ही आत्मा व अनात्मा भी भिन्न-भिन्न हैं; चिदाभास द्वारा एक ही अहम् बुद्धि के विषय हैं; परन्तु आत्मा व अनात्मा की किसी प्रकार की सादृश्यता तो है नहीं। तब उस सादृश्यता के अभाव में चिदाभास को आत्मा व अनात्मा का सम्बन्ध-भ्रम कैसे होगा ?

उत्तर:- ''आकाश नीला है'' इस व्यवहार में 'आकाश' और 'नीलता' का, ''मैं ब्राह्मण हूँ'' इस व्यवहार में 'मैं' स्थूल देह और 'ब्राह्मण' जाति का; यहाँ अधिष्ठान व अध्यस्त में किसी प्रकार की सादृश्यता नहीं होने पर भी अधिष्ठान व अध्यस्त का सम्बन्ध-भ्रम व्यक्ति को होता है। ऐसे ही आत्मा व अनात्मा की किसी प्रकार की सादृश्यता नहीं होने पर भी चिदाभास को अधिष्ठान (आत्मा) व अध्यस्त (अहंकार-देहादि) इन दोनों का सम्बन्ध-भ्रम होता है।

अत: सादृश्यता अध्यास में हेतु नहीं है। अपितु भिन्न-भिन्न विषय होते हुए भी जब वे विषय एक ही अहमाकार अथवा इदमाकार वृत्ति के विषय बन जाते हैं तभी अध्यास होते हैं ;

आत्मा-अनात्मा भिन्न-भिन्न विषय होने पर भी अज्ञानकाल में जब एक ही अहमाकार वृत्ति के विषय बनते

Scanned with CamScanner

हैं, उसी काल में चिदाभास को आत्मा का अनात्मा में अध्यास होता है। विचारकाल में आत्मा-अनात्मा, इन दोनों की स्पष्ट प्रतीति हो जाने पर अध्यास की गांठ खुल जाती है। इसी को चिद्-जड़ ग्रन्थि का खुलना कहते है।

(नोट - अविद्या की अहमाकार, इदमाकार वृति-रूप भ्रांति-ज्ञान जिस किसी भी प्रकार की अवस्था में अध्यास रचने में सर्वथा समर्थ है - किसी की भी अपेक्षा नहीं रखता।)

दृष्टान्तः- सीपी के तीन स्वरूप हैं- (१) 'यह है' इस आकार वाले ज्ञान का विषय सीपी का सामान्य स्वरूप है। यही **आधार** है। (२) त्रिकोण नीलपृष्ठ वाली 'यह सीपी है' इस आकार वाले ज्ञान का विषय सीपी का विशेष स्वरूप है। यही **अधिष्ठान** है। और (३) चमकने वाली श्वेत रूप वाली 'यह चाँदी है', इस आकार वाले ज्ञान का विषय सीपी का **कल्पित विशेष** स्वरूप है। यही अध्यस्त (कल्पित) है और काल्पनिक रजत का शरीर है। इस रजत के शरीर में सीपी के सामान्य स्वरूप का तादात्म्य सम्बन्ध मात्र ही अध्यस्त है-स्वरूप नहीं।

उपरोक्त सीपी अपने **विशेष** और **कल्पित विशेष** दोनों स्वरूपों के अस्तित्वकाल में अपने सामान्य स्वरूप से

Scanned with CamScanner

सदा ही विद्यमान रहती है। अतः सीपी का सामान्य स्वरूप तो कहीं, कभी और किसी में भी अध्यस्त नहीं होता, केवल सामान्य स्वरूप का तादात्म्य-सम्बन्ध ही रजत शरीर में अध्यस्त होता है।

सिद्धान्तः- इसी प्रकार ब्रह्म के भी तीन स्वरूप हैं- (१) 'ब्रह्म है' इस आकार वाले ज्ञान का विषय सामान्य चेतन ही ब्रह्म का सामान्य स्वरूप है। (२) चिदाभास अपने सहित प्रपञ्च और तीनों देहों को बांधकर 'सत्, चित्, आनन्द, अद्वैत स्वरूप ब्रह्म ही मैं हूँ' इस आकार वाले ज्ञान का विषय आत्माभिन्न ब्रह्म ही, ब्रह्म का विशेष स्वरूप है। और (३) तीनों देहात्मक और चिदाभासात्मक 'मैं ही सत्-चित् हूँ' इस आकार वाले ज्ञान का विषय तीनों देह एवं चिदाभास ही ब्रह्म का कल्पित विशेष स्वरूप है। इन्हीं तीनों देह एवं चिदाभास में ब्रह्म के सामान्य स्वरूप का तादात्म्य सम्बन्ध मात्र ही अध्यस्त है-स्वरूप नहीं।

उपरोक्त ब्रह्म अपने विशेष और कल्पित विशेष ; इन दोनों स्वरूपों के अस्तित्वकाल में अपने सामान्य स्वरूप से सदा ही विद्यमान है। अतः ब्रह्म का अस्ति स्वरूप अर्थात् सामान्य स्वरूप तो कहीं, कभी और किसी में भी अध्यस्त होता नहीं, केवल ब्रह्म के सामान्य स्वरूप का तादात्म्य

Scanned with CamScanner

सम्बन्ध ही चिदाभास सहित तीनों देह में अध्यस्त होता है। यह तादात्म्य सम्बन्ध मात्र ही अध्यास का बीज है।
(नोट :- सारे अध्यास चिदाभास को ही होते हैं।)

(१४) चिदाभास एवम् उसकी सप्त अवस्थाएँ:-

अन्त:करण में चेतन का प्रतिबिम्बस्वरूप **चिदाभास** है।

(१) ब्रह्मरूप आत्मा को मैं नहीं जानता हूँ, ऐसा अज्ञान, प्रथम अवस्था है।

(२) आत्मा है नहीं और भासता नहीं, ये क्रमश: असत्त्वापादक और अभानापादक आवरण वाली दूसरी अवस्था है।

(३) स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्चसहित चिदाभास और उसके धर्म जन्मादि, क्षुधादि, दर्शनादि और कर्त्तृत्व आदि एवम् उसकी जाग्रदादि अवस्थाएँ तथा उनका ज्ञान इत्यादि संसार-रूप विक्षेप-यह तीसरी अवस्था है।

(४) "ब्रह्म है", ऐसा परोक्ष ज्ञान-यह चौथी अवस्था है।

(५) "निष्प्रपञ्च ब्रह्म मैं हूँ", ऐसा अपरोक्ष ज्ञान-यह पाँचवीं अवस्था है।

(६) अधिष्ठान ब्रह्मरूप मुझ में परमार्थ सत्ता करके

Scanned with CamScanner

प्रपञ्च का तीन काल में अत्यन्त अभाव है और व्यावहारिक अथवा प्रातिभासिक सत्ता करके भासमान प्रपञ्च मिथ्या है, इस निश्चय सहित सभी विक्षेप का नाश-यह छटी अवस्था है।

(७) परमानन्द ब्रह्म-भाव की प्राप्ति करके अत्यन्त हर्षरूप निरंकुश तृप्ति-यह सप्तम अवस्था है।

(पं. पीताम्बर जी कृत "श्री बालबोध" ग्रन्थ से)

(१५) परम पद (ब्रह्म) प्राप्ति के सोपान :-

(१) **अन्त:करणकालीन व्यवहार** :- सामान्य अहंकार में स्थित पूर्व जन्मों के सांसारिक वा पारमार्थिक संस्कार व्यक्ति की भावी सृष्टि के उपादान कारण हैं और उन संस्कारों के अनुकूल ही व्यक्ति की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है।

(सांसारिक संस्कारों की प्रधानता तथा पारमार्थिक संस्कारों की गौणता वाला मन्द जिज्ञासु है और पारमार्थिक संस्कारों की प्रधानता एवं सांसारिक संस्कारों की गौणता वाला उत्तम जिज्ञासु है।)

(२) **मन का व्यवहार** :- मन्द जिज्ञासु दृढ़ अभ्यास द्वारा सांसारिक संस्कारों को हटावे और विवेक वैराग्यादि पारमार्थिक संस्कारों की इतनी वृद्धि करे कि इन संस्कारों का ब्रह्म की ओर प्रबल वेग बने, जिससे वह

Scanned with CamScanner

उत्तम जिज्ञासु की भूमि में आ जावे। इन संस्कारों के आधीन जिज्ञासु, संसार के भोगों से पूर्ण ग्लानि होने पर विकलतापूर्वक साधन की खोज में लगकर, "क्या करूँ? किसकी शरण लूँ ? प्रभु कैसे मिलें ? कौनसा साधन करूँ" इत्यादि आतुर एवं विरहात्मक भावों से ग्रसित व पीड़ित होकर, बारम्बार प्रभु से प्रार्थना करता है।

(३) **बुद्धि का व्यवहार** :- प्रभु कृपा से जिज्ञासु साधन का निश्चय कर, साधन-सम्पन्न होकर, सद्गुरु-शरण लेता हुआ, श्रवण, मनन आदि में लीन हो जाता है।

(४) **चित्त का व्यवहार** :- निदिध्यासन द्वारा ब्रह्म चिन्तन का निरन्तर अभ्यास करते-करते उस जिज्ञासु में यह चिन्तन स्वाभाविक अथवा स्वत: ही होने लगता है परन्तु त्रिपुटी दर्शन बना रहता है।

(५) **शुद्ध विशेष अहंकार का व्यवहार** :- शरीर में अहम् बुद्धि की भाँति 'अहम् ब्रह्मास्मि आकार वाली ज्ञान की दृढ़ स्थिति हो जाती है। इसी को स्थिति-स्थापक संस्कार अथवा स्वत:-सिद्ध-स्थिति भी कहते हैं। और

(६) **सामान्य अहंकार का व्यवहार** :- उपरोक्त स्थिति की दृढ़ता तब ही होगी, जब यह वृत्ति-रूप प्रवाह

Scanned with CamScanner

सामान्य अहंकार में संस्कार रूप से प्रवेश कर जाय। इन संस्कारों द्वारा या संस्कार उपहित चेतन द्वारा ही लेशाविद्या की निवृत्ति होवेगी।

अत: साधक इस प्रवाह को इस संस्कार अवस्था तक पहुँचाने का अथक प्रयत्न करता रहे, इसीमें उसका परम कल्याण है।

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ सप्तम् कला प्रारम्भः॥७॥

* आत्मा के विशेषण *

॥ इन्द्र विजय छन्द[१३२]॥

आत्म विशेषण हैं जु दुभाँति।
विधेय निषेध्य कहों निरधारे॥
वे[१३३] सब जानि भले गुरु शास्त्र सु।
सो अपनो निज रूप निहारे॥
सच्चिदानन्द रु ब्रह्म स्वयं पर-।
काश कुटस्थ रु साक्षि विचारे॥
द्रष्ट्ट अरु उपद्रष्ट्ट रु एकहि।
आदि विधेय विशेषण धारे॥१४॥

"आत्मा के दो भाँति के जो विधेय एवं निषेध्य विशेषण हैं, उनको निर्णय करके कहता हूँ। वे (विधेय, निषेध्य विशेषण जो हैं), (सु) उन सबको गुरु व शास्त्र द्वारा विधिपूर्वक जानकर (सो) साधक अपने निज स्वरूप को निहारे (प्रत्यक्ष करे)।

सत्, चित्, आनन्द ब्रह्म (व्यापक), **स्वयं-प्रकाश,**

---

१३२ इन्द्रविजयछन्द ठुमरी और लावनी में गाया जाता है।

१३३ ये विधेय-निषेध्य विशेषण।

Scanned with CamScanner

कूटस्थ, साक्षी, द्रष्टा, उपद्रष्टा, एक इत्यादि विधेय-विशेषणों को विचारकर धारण (आत्मा में भली प्रकार अनुभव) करे॥१४॥

अन्त - विहीन[१३४] अखण्ड असङ्ग रु।
अद्वय जन्म-विना[१३५] अविकारे॥
चारि अकार-विना[१३६] अरु व्यक्त।
न मानन[१३७] को विषयो जु निकारे॥
कर्म करीहि बढ़ै न घटै इस।
हेतुहि अव्यय वेद पुकारे॥
अक्षर नाशविना कहिये इस।
आदि निषेध्य पीताम्बर सारे॥१५॥

पीताम्बर जी कहते हैं कि इसी आत्मा के **अनन्त, अखण्ड, असङ्ग, अद्वितीय, अजन्मा, निर्विकार, निराकार, अव्यक्त (अप्रमेय), अव्यय** एवं **अक्षर** इत्यादि जो निषेध्य विशेषण हैं, उन सभी को साधक सारे (आत्मा में भली प्रकार से अनुभव करे)।

प्रमाण की जो विषयता संसार में होती है, उसका वेद-शास्त्र आत्मा में (निकारे) निषेध करते हैं। इसके फलस्वरूप आत्मा को **अप्रेमय** कहते हैं। आत्मा कर्म करके

---

१३४ अनन्त। १३५ अजन्मा।
१३६ निराकर १३७ अप्रमेय।

घटता-बढ़ता नहीं, क्योंकि इसमें क्रिया है ही नहीं-इस कारण से ही वेद इसे **अव्यय** पुकारते हैं। और नाश रहित होने से इसे **अक्षर** कहते हैं॥१५॥

१४० प्रश्न— **आत्मा के विशेषण कितने प्रकार के हैं ?**

उत्तर— आत्मा के विशेषण, विधेय[१३८] अर्थात् साक्षात् बोधक और निषेध्य[१३९] अर्थात् प्रपञ्च के निषेध द्वारा बोधक, इस भेद से दो प्रकार के हैं।

१४१-१५१ प्रश्न— **विधेय विशेषण:-**

१४१ प्रश्न— **आत्मा के विधेय-विशेषण कौनसे हैं ?**

उत्तर— (१) सत्, (२) चित्, (३) आनन्द, (४) ब्रह्म, (५) स्वयं-प्रकाश, (६) कूटस्थ, (७) साक्षी, (८) द्रष्टा, (९) उपद्रष्टा, (१०) एक इत्यादि आत्मा के विधेय-विशेषण हैं।

---

१३८ 'सधवा' शब्द विधवा स्त्री का निषेध कर, सुहागिन स्त्री का साक्षात् बोधक है। ऐसे ही 'सत्' आदि विधेय-विशेषण, 'असत्' आदि प्रपञ्च के विशेषणों का निषेधकर, सत् आदि रूप ब्रह्म के साक्षात् बोधक हैं। इसलिए इनको **विधेय-विशेषण** कहते हैं।

१३९ 'अविधवा' शब्द विधवा स्त्री का निषेध कर उससे विलक्षण सुहागिन स्त्री का बोधक है। ऐसे ही अनन्त आदि निषेध्य-विशेषण, अन्त आदि प्रपञ्च के धर्मों का निषेध कर उनसे विलक्षण, ब्रह्म के बोधक हैं। इसलिए इनको **निषेध्य-विशेषण** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

१४२ प्रश्न— [१] **आत्मा सत् कैसे है ?**

उत्तर— जिसकी ज्ञान से या और किसी से भी निवृत्ति नहीं होती, उसको सत् कहते हैं।

आत्मा की ज्ञान से या और किसी से भी निवृत्ति नहीं होती; अतः **आत्मा सत्** है।

१४३ प्रश्न— [२] **आत्मा चित् कैसे है ?**

उत्तर— अलुप्त-प्रकाश, सो **चित्** है।

आत्मा अलुप्त-प्रकाशरूप है ; अतः **आत्मा चित्** है।

१४४ प्रश्न— [३] **आत्मा आनन्द कैसे है ?**

उत्तर— परम अर्थात् सबसे अधिकप्रीति का जो विषय हो, सो **आनन्द** कहा जाता है।

आत्मा में सबकी परम प्रीति है ; अतः **आत्मा आनन्द** है।

१४५ प्रश्न— [४] **आत्मा ब्रह्मरूप कैसे है ?**

उत्तर— (१)क) आत्मा सत्-चित्-आनन्दरूप श्रुति, युक्ति और अनुभव से सिद्ध है। और

ख) ब्रह्म भी शास्त्र (उपनिषद्) में सत्-चित्-आनन्द कहा गया है।

अतः आत्मा **ब्रह्मरूप** है। अथवा

(२) **ब्रह्म** नाम व्यापक का है। जिसका देश से अन्त नहीं होता, उसको **व्यापक** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

क) आत्मा यदि ब्रह्म से भिन्न होवे तो देश से अन्त वाला होवेगा। और

ख) जिसका देश से अन्त होता है, उसका काल से भी अन्त होता है। यह नियम है।

जिसका देश-काल से अन्त होवे उसको **अनित्य** कहते है। इसलिए आत्मा अनित्य होवेगा। यह वार्ता श्रुति से विरुद्ध है।

अत: आत्मा ब्रह्म से भिन्न नहीं है। और

(३) क) यदि आत्मा से भिन्न ब्रह्म होवे तो वह ब्रह्म अनात्मा होवेगा। तथा

ख) जो घटादि अनात्मा हैं, सो सभी जड़ हैं। अत: आत्मा से भिन्न, ब्रह्म भी जड़ होवेगा। यह वार्ता भी श्रुति से विरुद्ध है।

अत: आत्मा से भिन्न ब्रह्म नहीं; **आत्मा ब्रह्मरूप** ही है।

१४६ प्रश्न— [५] **आत्मा स्वयं-प्रकाश कैसे है ?**

उत्तर— (१) (क) दीपक अथवा सूर्य की भाँति जो अपने आपके प्रकाशित होने में किसी की भी अपेक्षा नहीं करता। और (ख) आप सबका प्रकाशक होता है, वह स्वयं-प्रकाश कहलाता है। ऐसा आत्मा ही है। अत: आत्मा स्वयं-प्रकाश है। अथवा

Scanned with CamScanner

(२) (क) जो स्वत: सदा अपरोक्षरूप होवे। और (ख) किसी ज्ञान का विषय नहीं होवे, वह **स्वयं-प्रकाश** कहलाता है।

आत्मा स्वत: सदा अपरोक्षरूप और प्रकाशरूप होने से किसी भी ज्ञान का विषय (प्रकाश्य) नहीं है। अत: **आत्मा स्वयं-प्रकाश** है।

१४७ प्रश्न— [६] **आत्मा कूटस्थ कैसे है ?**

उत्तर— कूट अर्थात् लोहार के अहरन की भाँति जो निर्विकार (अचल) रूप से स्थित होता है, उसको **कूटस्थ** कहते हैं। जैसे लोहार अनेक घाट घड़ता है, फिर भी अहरन ज्यों का त्यों रहता है। वैसे ही मनरूप लोहार भी व्यवहाररूप अनेक घाट घड़ता है, फिर भी आत्मा ज्यों का त्यों रहता है।

अत: **आत्मा कूटस्थ** है। कूटस्थ कहने से **अचल** और **अक्रिय** अर्थ से ही सिद्ध हो जाता है।

१४८ प्रश्न— [७] **आत्मा साक्षी कैसे है ?**

उत्तर— (१) लोक व्यवहार में जो (क) उदासीन अर्थात् राग-द्वेष रहित होवे (ख) समीपवर्ती होवे और (ग) चेतन होवे, उसी को साक्षी कहते हैं।

आत्मा देहादि से (क) उदासीन है, (ख) समीपवर्ती

Scanned with CamScanner

परिच्छेद नहीं होता; अतः **आत्मा अनन्त** है।

१५४ प्रश्न— **[२] आत्मा अखण्ड कैसे है ?**

उत्तर— (क) (१) जीव व ईश्वर का भेद, (२) जीवों का परस्पर भेद, (३) जीव व जड़ का भेद (४) जड़ व ईश्वर का भेद और (५) जड़ व जड़ का भेद-आत्मा इन पाँचों भेदों से रहित है।

ख) आत्मा सजातीय, विजातीय और स्वगत भेद से भी रहित है।

अतः **आत्मा अखण्ड** है।

१५५ प्रश्न— **[३] आत्मा असङ्ग कैसे है ?**

उत्तर— सङ्ग नाम सम्बन्ध का है। यह संबंध तीन प्रकार का होता है- (क) सजातीय, (ख) विजातीय और (ग) स्वगत।

दृष्टान्त :- (क) ब्राह्मण का अपनी जाति वाले ब्राह्मण से जो संबंध है, सो **सजातीय संबंध** है।

(ख) ब्राह्मण का अन्य जातिवाले शूद्र से जो संबंध है, सो **विजातीय संबंध** है। और

(ग) ब्राह्मण का अपने अवयवों अर्थात् हस्त, पाद, मस्तक आदि अङ्गों से जो सम्बन्ध है, सो स्वगत सम्बन्ध है।

सिद्धान्त :- ऐसे ही (क) आत्मा (चेतन) एक है,

Scanned with CamScanner

इसलिए इसकी जाति नहीं। जीव, ईश्वर, ब्रह्मा, विष्णु, शिव, मैं, तूँ इत्यादि भेद तो उपाधि के हैं, इसलिए मिथ्या हैं। अतः आत्मा का किसी के साथ **सजातीय सम्बन्ध नहीं बनता।**

(ख) आत्मा अद्वैत है, सत् है और वस्तु है। इससे भिन्न, माया (अज्ञान) और माया का कार्य स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्च जो प्रतीत होता है, वह द्वैत है, असत् है और अवस्तु है। अतः आत्मा का किसी के साथ विजातीय सम्बन्ध नहीं बनता। और

(ग) आत्मा निरवयव है। सच्चिदानंद आदि तो आत्मा के अवयव नहीं, किन्तु एकरूप होने से आत्मा के स्वरूप हैं। अतः आत्मा का किसी के साथ **स्वगत सम्बन्ध नहीं बनता।**

इस रीति से आत्मा सारे सम्बन्धों से रहित है। अतः असङ्ग है।

१५६ प्रश्न— [४] **आत्मा अद्वैत कैसे है ?**

उत्तर— द्वैत जो प्रपञ्च है, सो स्वप्न की भाँति कल्पित होने से, वास्तव (सत्य) नहीं है। अतः आत्मा द्वैत से रहित होने से अद्वैत है।

१५७ प्रश्न— [५] **आत्मा अजन्मा कैसे है ?**

उत्तर— जन्म स्थूलदेह का धर्म है। यह सूक्ष्मदेह का

Scanned with CamScanner

धर्म भी नहीं तो आत्मा का कैसे होगा ? फिर भी यदि आत्मा का जन्म मानें तो उसका मरण भी मानना पड़ेगा। इससे आत्मा अनित्य सिद्ध होगा। यह आत्मा का जन्म-मरण परलोकवादी आस्तिकों को भी निम्न कारणोंसे अनिष्ट अर्थात् अवांछित है।

(क) जन्म-मरण वाली जो वस्तु होती है उसका आदि-अन्त में अभाव होता है। पूर्व जन्म में आत्मा और उसके कर्म जब थे ही नहीं, तब इस जन्म में आत्मा को कर्म से बिना भोग प्राप्त होता है। यह अकृताभ्यागम दोष है।

ख) मरण से अनन्तर यदि आत्मा नहीं होगा, तब इस जन्म में किए हुए कर्मों का भोग के बिना ही नाश हो जायेगा। यह कृतनाश दोष है।

इन दोनों दोषों से वेदोक्त कर्मों की व्यर्थता हो जायगी। इसलिए जन्म आत्मा का धर्म नहीं है।

अतः **आत्मा अजन्मा** अर्थात् **अजर-अमर** है।

१५८ प्रश्न— **[६] आत्मा निर्विकार कैसे है ?**

उत्तर— घट के (१) जन्म, (२) अस्तिपना अर्थात् प्रकटता, (३) वृद्धि, (४) विपरिणाम, (५) अपक्षय और (६) विनाश-ये षट् धर्म (विकार) हैं। परन्तु घट में स्थित होते हुए भी घट से भिन्न जो आकाश है, उसके धर्म नहीं

Scanned with CamScanner

हैं। ऐसे ही

१) 'देह जन्मता है', यह जन्म।
(गर्भ से बाहिर आने के समय से लेकर लड़का है या लड़की-इसकी अस्पष्टता तक।)

२) 'देह जन्मा है', यह **अस्तिपना** (पूर्व नहीं था अब है)।
(लड़का है या लड़की इसकी स्पष्टता।)

३) 'देह बालक हुआ', यह **वृद्धि**।
(मातृ-दुग्ध, अन्न आदि द्वारा बढ़ता हुआ बाल्य-अवस्था पर्यन्त।)

४) 'देह युवा हुआ', यह **विपरिणाम**।
(बाल्यावस्था के अनन्तर कौमार्य आदि अवस्थाएँ प्राप्त करता हुआ पूर्ण यौवनपर्यन्त।)

५) 'देह वृद्ध हुआ', यह **अपक्षय**।
(यौवन की पूर्णता के पश्चात् ह्रास अर्थात् क्षय होते-होते मरण से पहिले तक।) और

६) 'देह मरण को प्राप्त हुआ',यह **विनाश**।
(मृत्यु अवस्था-देह से प्राणों का गमन।)

ये षट् विकार देह के धर्म हैं। देह को जानने वाला और देह से न्यारा जो आत्मा है, उसके धर्म नहीं हैं।

Scanned with CamScanner

इस रीति से षट् विकारों से रहित, **आत्मा निर्विकार** है।

१५९ प्रश्न— **[७] आत्मा निराकार कैसे है ?**

उत्तर— (१) स्थूल, (मोटा) (२) सूक्ष्म, (पतला) (३) लम्बा और (४) टुँका (ठिगना)-ये चार प्रकार के जगत् में आकार हैं।

१) आत्मा, इन्द्रियों और मन का अविषय होने से, सूक्ष्म है। इसलिए **स्थूल नहीं** है।

२) आत्मा व्यापक है। इसलिए सूक्ष्म अर्थात् **अणु नहीं** है।

३-४ आत्मा सर्वत्र (देश, काल, वस्तु में) ओतप्रोत है। इसलिए **लम्बा** और **टुँका नहीं** है।

अतः **आत्मा निराकार** है।

१६० प्रश्न— **[८] आत्मा अव्यक्त कैसे है ?**

उत्तर— आत्मा, मन व इन्द्रियों आदि का अगोचर होने से, अस्पष्ट है। **अतः आत्मा अव्यक्त** है।

१६१ प्रश्न— **[९] आत्मा अव्यय कैसे है ?**

उत्तर— कोठे में से अन्न निकालने से अन्न का व्यय अर्थात् घटना होता है। ऐसे आत्मा का व्यय नहीं होता। अतः **आत्मा अव्यय** है।

१६२ प्रश्न— **[१०] आत्मा अक्षर कैसे है ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— क्षर अर्थात् नाश से रहित होने से **आत्मा अक्षर** है। इसी को **अक्षय, अमृत** और **अविनाशी** भी कहते हैं।

इस रीति से **आत्मा के निषेध्य-विशेषण** हैं।

१६३ प्रश्न— **उपरोक्त आत्मा के विशेषण परस्पर अभिन्न कैसे हैं ?**

उत्तर— यदि सच्चिदानन्दादि आत्मा के गुण होते तो परस्पर भिन्न होते। किन्तु ये आत्मा के गुण नहीं-स्वरूप हैं। इसलिए परस्पर भिन्न नहीं-अपितु अभिन्न हैं। एक ही आत्मा-

१) नाश रहित होने से, **सत्** है।
२) जड़ से विलक्षण, प्रकाश-रूप होने से, **चित्** है।
३) दु:ख से विलक्षण, मुख्य **प्रीतिका** विषय होने से, **आनन्द** है।
४) परिच्छिन्नता से विलक्षण, व्यापकरूप होने से, **ब्रह्म** है। और
५) सूर्य, चन्द्र आदि पर-प्रकाश्य से विलक्षण होने से, **स्वयं-प्रकाश** है।

ऐसे ही सारे विशेषणों में जानना।

दृष्टान्त :- एक ही पुरुष, (१) पिता की दृष्टि से पुत्र, (२) पितामह की दृष्टि से **पौत्र**, (३) पितृ-भ्राता

Scanned with CamScanner

(ताऊ-चाचा) की दृष्टि से **भ्रातृज** भतीजा, (४) मातुल (मामा) की दृष्टि से **भेणीज** (भाणजा) कहलाता है।

अथवा एक ही संन्यासी (१) पशु की दृष्टि से मनुष्य, (२) स्त्री की दृष्टि से पुरुष, (३) गृहस्थ की दृष्टि से त्यागी और (४) अदण्डी की दृष्टि से दण्डी आदि **विधेय-विशेषणों** द्वारा तथा (५) घट की दृष्टि से अघट, (६) पाषाण की दृष्टि से अपाषाण और (७) वृक्ष की दृष्टि से अवृक्ष आदि **निषेध्य-विशेषणों** द्वारा बतलाया जाता है।

सिद्धान्त :- ऐसे ही एक ही आत्मा, प्रपञ्च के विशेषण- (१) असत् की दृष्टि से सत्, (२) जड़ की दृष्टि से चित्, (३) दुःख की दृष्टि से आनन्द विधेय-विशेषणों द्वारा और (४) अन्त की दृष्टि से अनन्त, (५) खण्ड की दृष्टि से अखण्ड, (६) सङ्ग की दृष्टि से असङ्ग आदि निषेध्य-विशेषणों द्वारा निर्देशित किया जाता है।

इस रीति से आत्मा के उपरोक्त विशेषण परस्पर भिन्न नहीं-किन्तु अभिन्न ही हैं।

इति श्री विचार चन्द्रोदये आत्म विशेषण वर्णन नामिका सप्तम् कला समाप्तः ॥७॥

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ अष्टम् कला प्रारम्भः ॥८॥

* सत्-चित्-आनन्द का विशेष वर्णन *

॥ इन्द्रविजय छन्द ॥

सच्चिदानंद सरूपहि मैं यह।
सद्गुरु के मुख सैं पहिचान्यो॥
जागृत स्वप्न सुषुप्ति जु आदिक।
तीनहुं कालहि मैं परमान्यो॥
जागृत आदि लयाविध तीनहुँ।
कालहि हों इसतैं सत मान्यो॥
तीनहुँ काल विषै सब जानहुँ।
या हित मैं चिदरूपहि जान्यो॥१६॥

मैं, तीनों काल में अबाधित होने से सत्, स्वयं-प्रकाश होने से चित् और परमप्रीति का विषय होने से आनन्द-स्वरूप आत्मा ही हूँ। मैंने (यह) इस निश्चय को सद्गुरु के मुख से सुनकर पहिचान (अपरोक्ष जान) लिया है। जो जाग्रत् स्वप्न, सुषुप्ति, बाल्य, यौवन, वृद्ध आदि अवस्थाएँ और भूत, भविष्य, वर्तमान तीनकाल हैं, उन सभी में साक्षीरूप से विद्यमान होता हुआ भी मैं उनसे अत्यन्त (परमान्या=पर+मान्यो) पर (असङ्ग, असम्बद्ध

Scanned with CamScanner

श्रेष्ठ) हूँ, ऐसा मैंने माना (निश्चय किया) है। अथवा उपरोक्त अवस्थाओं एवं कालों में केवल मैं ही परमान्यो (प्रमाणित) हूँ, अन्य सब मिथ्या है। जाग्रत् आदि अवस्थाएँ व तीनों काल, स्व-स्व स्वरूप से तो लयाविध (लयवाले) हैं और प्रवाहरूप से लयाविध (लय+अविध) अर्थात् महाप्रलय पर्यन्त लयवान् नहीं हैं। मैं इनके लय और अलय दोनों स्वरूपों में धुरीवत् सदैव विद्यमान हूँ। इससे मैंने अपने आपको सत्-स्वरूप माना (निश्चय किया) है। तीनों काल में मैं सबको जानता हूँ। इसलिए मैं स्वयं **चित्** स्वरूप ही हूँ, ऐसा मैंने निश्चय किया है॥१६॥

मैं प्रिय हूँ धन पुत्र रु पुद्गल[१४०]।
आदिक तैं त्रयकाल अगान्यो[१४१]॥
आतम अर्थ सबे प्रिय आतम।
आपहि है प्रिय दुःख नसान्यो॥
या हित मैं सब तैं प्रियतम्म रु।
हों परमानन्द दुःखहि भान्यो॥
देह दशादि[१४२] अतीत सु आतम।
पूरण ब्रह्म पीताम्बर गान्यो॥१७॥

---

१४० स्थूलशरीर १४१ तृप्त १४२ अवस्था आदि से

Scanned with CamScanner

मैं आत्मा, धन, पुत्र और स्थूल शरीरादि सबसे अधिक प्यारा हूँ। इससे मैं स्वयं तीनों कालों में तृप्त हूँ, ऐसा मैंने निश्चय किया है। ये धन-पुत्रादि सब तो आत्मा के लिए प्यारे हैं और मैं आत्मा अपने स्वयं के लिए ही प्यारा हूँ। इससे मेरा दु:ख निवृत्त हो गया है। इस कारण मैं स्वयं ही सबसे अधिक प्रियतम और **परमानन्द** स्वरूप हूँ, ऐसा जानकर मैंने दु:ख का बाध (अत्यन्ताभाव) निश्चय किया है। पीताम्बर जी कहते हैं कि देह की अवस्था आदि से इस प्रकार अतीत जो मैं आत्मा हूँ, सो मैं आत्मा ही पूर्ण ब्रह्म हूँ॥१७॥

१६४ प्रश्न— [१] **सत् क्या है ?**

उत्तर— तीनों कालों में जो अबाधित हो, वह सत् है।

१६५ प्रश्न— [२] **चित् क्या है ?**

उत्तर— तीनों कालों में जो सबको जानता हो वह **चित्** है।

१६६ प्रश्न— [३] **आनन्द क्या है ?**

उत्तर— तीनों कालों में जो परम प्रेम का विषय हो, वह **आनन्द** है।

१६७-१७१ प्रश्न— [१] **सत्** -

Scanned with CamScanner

१६७ प्रश्न— **मैं 'सत्' कैसे हूँ ?**

उत्तर— तीनों कालों में, मैं विद्यमान हूँ अत: 'मैं सत् हूँ'।

१६८ प्रश्न— **तीनों कालों में विद्यमान होने से मैं सत् हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— १) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति में मैं हूँ।

२) प्रात:, मध्याह्न और सायंकाल में मैं हूँ।

३) दिवस, रात्रि और पक्ष में मैं हूँ।

४) मास, ऋतु और वर्ष में मैं हूँ।

५) बाल्य, यौवन और वृद्ध अवस्था में मैं हूँ।

६) पूर्व देह, वर्तमान देह और भावी देह में मैं हूँ।

७) युग, मनु (मनवन्तर) और कल्प में मैं हूँ।

८) भूत, वर्तमान और भविष्यत् काल में मैं हूँ।

इस रीति से तीनों कालों में मैं विद्यमान हूँ; अत: मैं सत् हूँ। यह ऐसे जानना।

---

* इस प्रकरण में 'था' और 'होऊगा', ऐसे उच्चारण करने योग्य, भूत और भविष्यकाल का भी 'हूँ', ऐसे वर्तमान की भाँति उच्चारण किया है ; यह भूतादि काल की कल्पना-मात्रता (मिथ्यात्व) की सूचना करने के लिए है। आत्मा की सदादि रूपता में श्रुति आदि अनेक प्रमाणों का सद्भाव है और उसकी किसी काल में असत्ता आदि सम्बन्धी प्रमाण का अभाव है। इसलिए सब कालों में आत्मा सच्चिदानन्दरूप सिद्ध है, यह जानना।

Scanned with CamScanner

१६९ प्रश्न— **मेरे से भिन्न नाम रूप वस्तु सहित तीनों कालों को क्या जानना ?**

उत्तर— मेरे से भिन्न, नाम-रूप-वस्तु सहित तीनों काल **असत्** हैं, यह जानना।

१७० प्रश्न— **सत् और असत् का निर्णय किससे होता है ?**

उत्तर— **सत् और असत् का निर्णय अन्वय** व्यतिरेक रूप युक्ति से होता है।

१७१ प्रश्न— **सत् और असत् के निर्णय में अन्वय व व्यतिरेक रूप युक्ति कैसे जाननी ?**

उत्तर— अन्वय-व्यतिरेक युक्ति जानने की विधि-

(क) **अन्वय युक्ति:**— जो मैं (१) जाग्रत में हूँ, वही मैं स्वप्न में, सुषुप्ति में; (२) प्रात:, मध्याह्न एवं सायंकाल में; (३) दिवस, रात्रि एवं पक्ष में; (४) मास, ऋतु एवं वर्ष में; (५) बाल्य, यौवन एवं वृद्ध अवस्थाओं में; (६) पूर्व देह, इस देह एवं भावी देह में; (७) युग, मनु एवं कल्प में; (८) भूत, वर्तमान एवं भविष्यत् काल में हूँ-इस रीति से सर्व अवस्था व काल में मैं ही विद्यमान हूँ। अत: मैं **सत्** हूँ।

Scanned with CamScanner

(ख) **व्यतिरेक युक्तिः**— जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाएँ, भूत, भविष्यत्, वर्तमान आदि काल; देहादि पदार्थ इत्यादि कोई भी मेरे में नहीं हैं। अतः ये सभी **असत्** हैं।

इस रीति से **सत्-असत् के निर्णय में अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति** जाननी।

१७२-१७६ प्रश्न— **(२) चित् -**

१७२ प्रश्न— **मैं चित् कैसे हूँ ?**

उत्तर— तीनों कालों में मैं जानने वाला हूँ, अतः मैं चित् हूँ।

१७३ प्रश्न— **तीनों कालों में मैं जानने वाला होने से चित् हूँ, यह कैसे जानना ?**

उत्तर— (१) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, (२) प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल, (३) दिवस, रात्रि और पक्ष, (४) मास, ऋतु और वर्ष, (५) बाल्य, यौवन और वृद्ध अवस्था, (६) पूर्व देह, वर्तमान देह और भावी देह, (७) युग, मनु और कल्प, (८) भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल—

इन सभी को मैं जानता हूँ। इस रीति से सर्व कालों में मैं जानने वाला **चित्** हूँ। यह ऐसे जानना।

१७४ प्रश्न— **मेरे से भिन्न नाम रूप वस्तु सहित तीनों कालों में क्या जानना ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— मेरे से भिन्न, नाम-रूप-वस्तु सहित तीनों काल जड़ हैं, यह जानना।

१७५ प्रश्न— **चित् और जड़ का निर्णय किससे होता है ?**

उत्तर— चित् और जड़ का निर्णय अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति से होता है।

१७६ प्रश्न— **चित् और जड़ के निर्णय में अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति कैसे जाननी ?**

उत्तर—

(क) **अन्वय युक्ति** :- जो मैं जाग्रत को जानता हूँ, वही मैं स्वप्न को जानता हूँ। अत: मैं चित् हूँ।

(ख) **व्यतिरेक युक्ति** :- जाग्रत मेरे को नहीं जानता। अत: **जाग्रत् जड़** है।

स्वप्न इत्यादि के भी चित् और जड़ के निर्णय में इसी रीति से अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति जाननी।

१७७-१८१ प्रश्न— **(३) आनन्द :-**

१७७ प्रश्न— **मैं आनन्द कैसे हूँ ?**

उत्तर— तीनों कालों में मैं परम प्रिय हूँ; अत: मैं आनन्द हूँ।

१७८ प्रश्न— **तीनों कालों में परम प्रिय होने से मैं आनन्द हूँ; यह कैसे जानना ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— १) जाग्रत्, स्वप्न और सुषुप्ति, २) प्रातः, मध्याह्न और सायंकाल, ३) दिवस, रात्रि और पक्ष ४) मास, ऋतु और वर्ष, ५) बाल्य, यौवन और वृद्ध अवस्था, ६) पूर्व देह, वर्तमान देह और भावी देह, ७) युग, मनु और कल्प, ८) भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल

इन सभी में मैं प्रिय हूँ। इस रीति से सर्व कालों में परम प्रिय होने से **मैं आनन्द** हूँ।

१७९ प्रश्न— **मेरे से भिन्न नाम-रूप-वस्तु सहित तीनों कालों को क्या जानना ?**

उत्तर— मेरे से भिन्न नाम-रूप-वस्तु सहित तीनों काल दुःखरूप हैं, यह जानना।

१८० प्रश्न— **आनन्द और दुःख का निर्णय किससे होता है ?**

उत्तर— आनन्द और दुःख का निर्णय अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति से होता है।

१८१ प्रश्न— **आनन्द और दुःख के निर्णय में अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति कैसे जाननी ?**

उत्तर— (क) **अन्वय युक्ति** : जो मैं जाग्रत् में परम प्रिय हूँ वही मैं स्वप्न में परम प्रिय हूँ। अतः मैं **आनन्द**[१४३] हूँ।

* अङ्क १४३ की टिप्पणी

Scanned with CamScanner

(ख) **व्यत्तिरेक युक्ति :** जाग्रत् आदि मेरे को प्रिय नहीं। अत: यह **जाग्रत आदि दु:ख** है।

इस रीति से **आनन्द** और **दु:ख के निर्णय में, अन्वय-व्यतिरेकरूप युक्ति** जाननी।

१८२ प्रश्न— **मैं परम प्रिय हूँ यह कैसे जानना ?**

उत्तर— दृष्टान्त : (१) पुत्र के मित्र में जो प्रीति है, वह पुत्र के लिए है। और

(२) पुत्र में जो प्रीति है, वह उसके मित्र के लिए नहीं है।

इसलिए पुत्र अधिक प्रिय है।

सिद्धान्त :- ऐसे ही—

(१) धन, पुत्रादि में जो प्रिति है, सो आत्मा के लिए है। परन्तु

---

१४३ जो-जो जाग्रत् आदि काल आत्मा में भासते हैं, वे सब यद्यपि दु:खरूप हैं तथापि

१) चिदाभास द्वारा अध्यास करके, आत्मा में जब कोई एक काल प्रिय भासता है, तब अन्य काल प्रिय नहीं भासते। इसलिए सब कालों में **व्यभिचारी प्रीति** हैं। अत: वे वास्तव में दु:खरूप ही हैं। और

२) आत्मा में अर्थात् स्वयं अपने आप में सर्वदा **अव्यभिचारी प्रीति** है। इसलिए **आत्मा आनन्दरूप** है।

Scanned with CamScanner

(२) आत्मा में जो प्रीति है, वह धन, पुत्रादि के लिए नहीं है।

अत: आत्मा अधिक प्रिय है। इस रीति से मैं **परम प्रिय हूँ,** यह ऐसे जानना।

१८३ प्रश्न— **प्रीति का न्यूनाधिक भाव कैसे जानना ?**

उत्तर— १) जाग्रत् में सबसे प्रिय द्रव्य (धन) है। इसके लिए पुरुष देश छोड़कर परदेश जाता है और अनेक नीच कर्म भी करता है। अत: द्रव्य प्रिय है।

२) **द्रव्य की अपेक्षा पुत्र अधिक प्रिय है।** पुत्र किसी दुष्ट कर्म के दण्ड-स्वरूप कारागार में बन्द हो जावे तो द्रव्य देकर उसको छुड़ाते हैं। अत: द्रव्य से पुत्र अधिक प्रिय है।

३) **पुत्र से शरीर अधिक प्रिय हैं।** दुर्भिक्ष अर्थात् दुष्काल में, द्रव्य के अभाव में, पुत्र को बेचकर भी शरीर का निर्वाह करते हैं। अत: पुत्र से शरीर अधिक प्रिय है।

४) **शरीर से इन्द्रियें अधिक प्रिय हैं।** जब कोई शस्त्र लेकर मारने आता है, तब इन्द्रियों को छिपाता है और ऐसे कहता है- 'मेरे शरीर में मार, परन्तु आँख, कान, नाक, मुख पर मारना नहीं।' अत: शरीर से इन्द्रियें अधिक प्रिय हैं।

Scanned with CamScanner

५) **इन्द्रियों से प्राण अधिक प्रिय है।** किसी दुष्ट-कर्म करने से राजा इसको प्राणदण्ड (फाँसी) की सजा सुनावें, तब यह कहता है-'मेरे धन, पुत्र, स्त्री, गृह आदि ले लो, परन्तु प्राण मत लो।' जब इतने पर भी नहीं मानते, तब यह कहता है- 'मेरा कान, नाक, हाथ, पाँव काट लो, परन्तु मेरे प्राण मत लो।' अत: इन्द्रियों से प्राण अधिक प्रिय है।

६) **प्राण से आत्मा अधिक प्रिय है।** अतिशय (भयंकर) व्याधि की पीड़ा सहन न कर सकने पर कहता है-'मेरे प्राण निकल जाएँ तो सुखी हो जाऊँ।' अत: प्राण से आत्मा अधिक प्रिय है।

इस रीति से **प्रीति का न्यूनाधिक भाव** जानना।

इति श्री विचार चन्द्रोदये सच्चिदानन्द विशेष वर्णन नामिका अष्टम् कला समाप्त: ॥८॥

Scanned with CamScanner

सत् व असत् का विवरण

१) **पारमार्थिक सत्** :– "त्रिकाल अबाध्यत्वं सत्यत्वं", जिसका तीन काल में क्रिया द्वारा नाश अथवा ज्ञान द्वारा बाध हो ही नहीं सकता, वही **पारमार्थिक सत्** है।

"ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति" आदि श्रुतियों के अनुसार (१) विदेहमुक्त ज्ञानी, (२) जीवन्मुक्तकाल में (नित्य प्राप्त) परमानन्द की प्राप्तिरूप मोक्ष का अंश और (३) निर्विकल्प अवस्था में ब्रह्मनिष्ठा (जो राहू के सिरवत्, ब्रह्म ही है) :- ये सभी ब्रह्मरूप होने से **पारमार्थिक सत्** के अन्तर्गत ही है।

२) **व्यावहारिक सत्** :- माया, माया का स्थूल-सूक्ष्म कार्यरूप सकल प्रपञ्च, जीव व ईश्वर इत्यादि व्यावहारिक सत् हैं।

वेदरूप शब्द-प्रमाण, पञ्चीकृत पञ्चमहाभूत एवं भौतिक प्रपञ्चादि, ईश्वरीय स्थूल-प्रपञ्च हैं। ईश्वर की ज्ञान-इच्छादि तथा अपञ्चीकृत पञ्चभूतादि, ईश्वरीय सूक्ष्म-प्रपञ्च हैं।

शास्त्र (गीता आदि) व पुराण आदि शब्द-प्रमाण, अहंता-विषयक स्थूलदेह व ममता-विषयक स्थावर-जङ्गम व्यक्ति-वस्तु, जीव-जगत् के स्थूल-प्रपञ्च हैं। अदृष्ट व

Scanned with CamScanner

वासनादि, जीव-जगत् के सूक्ष्म-प्रपञ्च हैं।

ये सभी **व्यावहारिक सत्** के अन्तर्गत ही हैं।

३) **प्रातिभासिक सत्** : स्वप्नकालीन अभिमानी जीव व सत्य-स्वप्न और तद्जन्य सुख-दुःखादि, **स्वप्नावस्था के अन्तर्गत प्रातिभासिक सत्** हैं। मङ्गल-अमङ्गल फलप्रद स्वप्न को देखकर मङ्गल-अमङ्गल फल का निश्चय होने से ऐसा स्वप्न, सत्य-स्वप्न है एवम् प्रातिभासिक सत् है। किन्तु इस निश्चय का फल केवल प्रतीति-मात्र न होकर, फलप्रदत्व दृष्टि से सत्य है; अतः वह फल तो व्यावहारिक सत् ही है।

इसके अतिरिक्त (क) धार्मिक लीलाओं में राम-कृष्णादि तथा खेल तमाशों में व्यक्त नाटकीय व्यक्ति आदि, (ख) भूत-प्रेतादि रचित वस्तु आदि, (ग) जादूगर-बाजीगर रचित वस्तु आदि, (घ) चित्रपट पर प्रदर्शित व्यक्ति-वस्तु आदि :- ये सभी प्रतीतिमात्र सत्ता वाले होने से **जाग्रत अवस्था के अन्तर्गत प्राति-भासिक सत्** हैं। इनसे वैराग्य आदि का उदय, भक्तिभाव आदि की जागृति एवं दिव्य-रस की अनुभूति आदि उत्तम फल; सुख-दुःखादि एवम् मनोरंजन आदि मध्यम फल; तथा कुदृष्टि-आदि-जन्य निकृष्ट फल :- ये सभी फल व्यावहारिक सत् ही होते हैं।

Scanned with CamScanner

४) **आत्यन्तिक असत्** :- तीनकाल मे अबाधित होने से **भावस्वरूप** ब्रह्म का क्रिया से नाश अथवा ज्ञान से बाध नहीं होता। ऐसे ही **अभाव-स्वरुप** अर्थात् नितान्त असत्-स्वरूप होने से जिस वस्तु के विषय में क्रिया से नाश अथवा ज्ञान से बाध होने का प्रश्न उठना ही सम्भव नहीं, वही **आत्यन्तिक असत्** है। इसी के नाश के अथवा बाध के न होने में उनकी आत्यन्तिकता है और स्वरुप से असत् तो वह है ही। वन्ध्या-पुत्र, आकाश के फूलों की गन्ध, शश-शृङ्ग-धनुष आदि ऐसे ही आत्यन्तिक असत् हैं। ये निरुपाधिक भ्रान्ति के विषय रज्जु में सर्प की भांति एवम् सौपाधिक भ्रान्ति के विषय स्फटिक में लालिमा अथवा नदी-जल में अधोमुख वृक्षादि की भांति, इन भ्रान्तियों के विषयों से भी अत्यन्त अलीक हैं। ये व्यावहारिक शब्द-प्रयोग के विषय-मात्र ही हैं। इनमें प्रातिभासिक अप्रतीति-प्रतीति का प्रश्न ही नहीं उठता। जैसे :-

वन्ध्या को पुत्र गन्धर्वपुर में तृषित भयो,
तब मृगवारि के पियन को सिधायो है।
मारग में खरगोस ने सींग से मार दियो,
गयो तट रज्जु को सर्प डसायो है।
खपुष्प ठूंठ पुरुष औषध बताय दीन्हीं,
सीपी की चांदी ले खरीदन को धायो है।
कहे 'विज्ञान' कछु भयो है न हवई आगे,
वेद शास्त्र संत जन जग ऐसो ही बतायो है॥

Scanned with CamScanner

अथवा

"सुन्दर अति वन्ध्या सुवन, नभ कुसुम गल माल।
'आत्यन्तिक असत्' हित, कैसी बनी मिसाल॥"

५) **व्यावहारिक असत्** : रज्जु में सर्प एवम् उसकी प्रतीति; नदी के जल में, किनारे वाले वृक्षादि की अधोमुख स्थिति एवम् प्रतीति, **व्यावहारिक असत्** हैं। ये निरुपाधिक-सौपाधिक भ्रान्ति के विषय हैं; व्यावहारिक शब्द-प्रयोग के विषय होते हुए भी भ्रान्ति मिटने पर, अप्रतीतिवान्-प्रतीतिवान् वस्तु हैं। ये सब अविद्या-रचित होने से, मिथ्या हैं और व्यावहारिक सत्ता से भिन्न होने से, प्रातिभासिक सत्ता वाले हैं; ऐसा शास्त्रों ने स्वीकार किया है। जाग्रतकालीन व्यवहार में मिथ्यापने का व्यवहार करवाने वाले होने से, ये **व्यावहारिक असत् कोटि में** हैं अर्थात् **अनिर्वचनीय (मिथ्या)** हैं, ऐसा मानना योग्य है।

६) **प्रातिभासिक असत्** : प्रातिभासिक सत् के अन्तर्गत, सत्य-स्वप्न से भिन्न, मिथ्या स्वप्न फल-प्रदत्व दृष्टि से निरर्थक होने से, प्रातिभासिक असत् कोटि में आते हैं। व्यावहारिक वस्तु एवम् व्यावहारिक शब्द-प्रयोग आदि का अभाव होने से, इनको व्यावहारिक असत् कोटि में न लिखकर **प्रातिभासिक असत् कोटि** में लिखा गया है। ऐसे स्वप्नों के पदार्थ व तद्जन्य सुख-दु:खादि तो प्रातिभासिक सत् ही है।

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ नवम् कला प्रारम्भः ॥९॥

* अवाच्य सिद्धान्त वर्णन *

॥ इन्द्र विजय छन्द ॥

ब्रह्म अहै मनबानि - अगोचर।
शास्त्र रु सन्त कहैं अरु ध्यावैं॥
वेद वदें लछनादिक रीति रु।
वृत्ति विआप्ति जनो मन लावैं॥
हैं जु सदादि विधेय विशेषण।
वे असदादिक भिन्न कहावे॥
सत्य अपेक्षिक आदि विरोधि[१४४] जु।
अंस तजी परमार्थ[१४५] लखावैं॥१८॥

शास्त्र कहते हैं कि ब्रह्म मन-वाणी का विषय नहीं है। सन्त भी ऐसा ही कहते हैं और उसी ब्रह्म का ध्यान भी करते हैं। वेद इसी ब्रह्म के ज्ञान के लिए लक्षणादि रीति (प्रक्रिया) का वर्णन करते हैं। गुरुओं से उपदिष्ट जिज्ञासुजन,

---

१४४ आपेक्षिक सत्य, वृत्तिज्ञान और विषयानन्दादि विरोधी अंश जो हैं, उनको त्याग कर।

१४५ वास्तवरूप अर्थात् निरपेक्ष सत्य, चेतनरूप ज्ञान और स्वरूपानन्द आदिस्वरूप ब्रह्म को, लक्षणा से बोध कराते हैं।

Scanned with CamScanner

अज्ञान की निवृत्ति के लिए, वृत्ति व्याप्तिरूप से ब्रह्म में मन लगाते हैं अर्थात् ब्रह्माभिन्नात्माकार वृत्ति बनाते हैं।

सत्,चित्, आनन्द आदि जो ब्रह्म के विधेय-विशेषण हैं, वे प्रपञ्च के असत्, जड़, दु:ख आदि विशेषणों से सर्वथा भिन्न कहलाते हैं। ये ही विधेय-विशेषण अपनी शब्द-शक्ति द्वारा आपेक्षिक सत्य, वृत्ति-ज्ञान और विषयानन्द आदि, जो सभी अभेद-ज्ञान में विरोधी अंश हैं, उन सबको त्यागकर, अलखस्वरूप परमार्थ (निरपेक्ष सत्य, चेतन रूप ज्ञान और स्वरूपानन्द आदिस्वरूप ब्रह्म) को लक्षणा द्वारा लखाते हैं अर्थात् साक्षात्कार कराते हैं॥१८॥

हैं जु अनन्त अखण्ड असङ्ग रु।
अद्वय आदि निषेध्य रहावैं॥
वे परपञ्च निषेध करी अव-।
शेषित वस्तु गिरा बिन गावैं॥
यूँ परमातम आतम देवही।
वेद रु शास्त्र सबे सुरटावैं॥
पण्डित[१४६] त्यागि अभास पीताम्बर।
वृत्ति अहं अपरोक्षहि पावैं॥१९॥

---

१४६ पीताम्बरजी कहते हैं कि आभास (फलव्याप्ति को) त्याग कर अहंवृत्ति (वृत्तिव्याप्ति) से अपरोक्ष जानें।

Scanned with CamScanner

अनन्त, अखण्ड, असङ्ग और अद्वितीय आदि निषेध्य-विशेषण जो तादात्म्य सम्बन्ध से ब्रह्म में रहते हैं, वे अन्त, खण्ड, सङ्ग और द्वैत आदि विशेषणों वाले प्रपञ्च का निषेधकर, अवशिष्ट (शेष बची हुई) वस्तु (ब्रह्म) को गिरा बिन गाते हैं।

इस प्रकार सभी वेद और शास्त्र 'आत्म देव ही परमात्मा है', ऐसा भली प्रकार से निश्चय करवाते हैं। पण्डित पीताम्बर जी कहते हैं कि साधक इसी आत्माभिन्न परमात्मा का आभास अर्थात् फल-व्याप्ति त्याग कर अहंवृत्ति अर्थात् वृत्ति-व्याप्ति करके अपरोक्ष रूप से साक्षात्कार करें।

१८४ प्रश्न— **ब्रह्मात्मा जब वाणी का ही विषय नहीं, तब उसे सत्-चित्-आनन्द आदि विशेषणों से कैसे कहते हैं ?**

उत्तर— ब्रह्मात्मा के अनेक विधेय-विशेषण[१४७] हैं और अनेक निषेध्य-विशेषण[१४८] हैं। उनमें

---

१४७ 'सत् है', 'चित् है' इस प्रकारविधि मुख से ब्रह्म के बोधक पद, **विधेय-विशेषण** हैं।

१४८ 'अनन्त' (अन्तवाला नहीं), 'अखण्ड' (खण्डवाला नहीं) इस प्रकार निषेध मुख से ब्रह्म के बोधक पद, **निषेध्य-विशेषण** हैं।

Scanned with CamScanner

१) सत् आदि विधेय-विशेषण प्रपञ्च का निषेध करके, अवशेष (बाकी रहे) ब्रह्म को लक्षणा[१४९] से **साक्षात् बोध कराते हैं।** और

---

१४९ १) **वाच्यार्थ** :- माया और प्रपञ्च में आपेक्षित सत्यता है और ब्रह्म में निरपेक्ष सत्यता है। ये दोनों **'सत्' पद के वाच्य हैं।**
लक्ष्यार्थ :- माया की सत्यता को त्यागकर, **केवल ब्रह्म की सत्यता लक्ष्य है।**

२) **वा. :-** अन्त:करण की वृत्तिरूप ज्ञान और चेतन रूप ज्ञान, ये दोनों **'चित्'** पद के **वाच्य** हैं।
ल. :- वृत्तिज्ञान को छोड़कर केवल चेतनरूप ज्ञान, चित् पद का **लक्ष्य** है।

३) **वा. :-** विषयानन्द, वासनानन्द और ब्रह्मानन्द, ये तीनों **'आनन्द' पद के वाच्य** हैं।
ल. :- प्रथम दोनों को छोड़कर **केवल ब्रह्मानन्द, 'आनन्द' पद** का लक्ष्य है।

४) **वा. :-** माया और उसके कार्य आकाशादि में आपेक्षिक व्यापकता है और ब्रह्म (आत्मा) में निरपेक्ष व्यापकता है। ये दोनों **'ब्रह्म'** (विभु) **पद के वाच्य** हैं।
ल. :- 'केवल' 'ब्रह्म', 'ब्रह्म' पद का लक्ष्य है।

५) **वा. :-** साभास बुद्धि में आपेक्षिक स्व-प्रकाशता है और चेतन में निरपेक्ष स्व-प्रकाशता है। ये दोनों **'स्वयं-प्रकाश' पद के वाच्य हैं।**
ल. :- केवल चेतन, 'स्वयं-प्रकाश' पद का लक्ष्य है।

Scanned with CamScanner

६) **वा. :-** रज्जु आदि में आपेक्षिक अविकारिता है और चेतन में निरपेक्ष अविकारिता है। ये दोनों 'कूटस्थ' पद के वाच्य हैं।

ल. :- केवल चेतन, 'कूटस्थ' पद का लक्ष्य है।

७) **वा. :-** लौकिक साक्षी और माया-अविद्याउपहित चेतन (ब्रह्म और आत्मा) ; ये दोनों **'साक्षी' पद के वाच्य** हैं।

ल. :- केवल माया-अविद्या:उपहितचेतन, 'साक्षी' पद का लक्ष्य है।

८) **वा. :-** अन्त:करण की वृत्ति-विशिष्टचेतन (चिदाभास) और वृत्ति-उपहितचेतन। (साक्षी) ; ये दोनों **'द्रष्टा' पद के वाच्य हैं।**

ल. :- केवल चेतन भाग, 'दृष्टा' पद का लक्ष्य है।

९) **वा. :-** यज्ञ का उपद्रष्टा तथा स्थूलदेह-स्थित इन्द्रियादि पन्द्रह ऋत्विज, मनरूपी यजमान और बुद्धि रुपी उसकी स्त्री, इन सत्रहों का समीपवर्ती जानने वाला प्रत्यगात्मा-रूपी उपद्रष्टा ; ये दोनों **'उपद्रष्टा' पद के वाच्य** हैं।

ल. :- केवल प्रत्यगात्मा, 'उपद्रष्टा। पद का लक्ष्य है।

१०) **वा. :-** लोकगत एकाकी पुरुष और सजातीय भेद रहित ब्रह्म, **'एक' पद के वाच्य** हैं।

ल. :- केवल ब्रह्म, 'एक' पद का लक्ष्य है।

ऐसे ही अनुक्त (नहीं कहे गए) अन्य **विधेय विशेषणों** में भी जान लेना चाहिये।

इस रीति के प्रपञ्च के 'असत्' आदि विशेषणों के निषेधक सत् आदि पदों के अर्थ में भाग-त्याग लक्षणा की प्रवृत्ति है।

Scanned with CamScanner

२) अनन्त आदि निषेध्य-विशेषण तो साक्षात् प्रपञ्च का ही निषेध करते हैं। उनसे विलक्षण, ब्रह्मात्मा की **सिद्धि अर्थ से ही हो जाती है।**

इसलिए ब्रह्मात्मा **अवाच्य** होने के कारण किसी विशेषण से नहीं कहा जाता है।

१८५ प्रश्न— **सत् आदि विधेय-विशेषण प्रपञ्च का निषेध करके अवशेष ब्रह्म को कैसे बोध कराते हैं।**

उत्तर— १) **सत्** कहने से असत् का निषेध हुआ। बाकी रहा सद्रूप, वह लक्षणा से सिद्ध है।

२) **चित्** कहने से जड का निषेध हुआ। बाकी रहा चिद्रूप, वह लक्षणा से सिद्ध है।

३) **आनन्द** कहने से दु:ख का निषेध हुआ। बाकी रहा आनन्द (सुख) रूप, वह लक्षणा से सिद्ध है।

४) **ब्रह्म** कहने से परिच्छिन्न का निषेध हुआ। बाकी रहा व्यापक, वह लक्षणा से सिद्ध है।

५) **स्वयं-प्रकाश** कहने से पर-प्रकाश का निषेध हुआ। बाकी रहा स्वयं-प्रकाश, वह लक्षणा से सिद्ध है।

६) **कूटस्थ** (अविकारी) कहने से विकार का निषेध हुआ। बाकी रहा निर्विकारी, वह लक्षणा से सिद्ध हैं।

Scanned with CamScanner

७) **साक्षी** कहने से साक्ष्य (दृश्य) का निषेध हुआ। बाकी रहा साक्षी, वह लक्षणा से सिद्ध है।

८) **द्रष्टा** कहने से दृश्य का निषेध हुआ। बाकी रहा द्रष्टा, वह लक्षणा से सिद्ध है।

९) **उपद्रष्टा** कहने से उपदृश्य अर्थात् समीप वस्तु का निषेध हुआ। बाकी रहा उपद्रष्टा, वह लक्षणा से सिद्ध है। और

१०) **एक** कहने से नाना (अनेक का) निषेध हुआ। बाकी रहा एक, वह लक्षणा से सिद्ध है।

इस रीति से अन्य अनुक्त **विधेय-विशेषणों** में भी जानना।

१८३ प्रश्न— **अनन्तादि निषेध्य-विशेषण प्रपञ्च का निषेध कैसे करते हैं ?**

उत्तर— अनन्त कहने से देश-काल-वस्तुकृत परिच्छेद का निषेध हुआ। बाकी रहा अनन्त, वह अर्थ से सिद्ध है।

इस रीति से अन्य निषेध्य-विशेषणों में भी जानना।

१८७ प्रश्न— **इन विशेषणों का ऐसा अर्थ करने का क्या प्रयोजन है ?**

उत्तर— इन विशेषणों का ऐसा अर्थ करने का यह प्रयोजन है कि चेतन को मन व वाणी का अविषय कहने

Scanned with CamScanner

वाली श्रुति के अर्थ का अविरोध होता है। गुण, क्रिया, जाति और सम्बन्धादि जो शब्द की और मन की प्रवृत्ति के निमित्तरूप धर्म (हेतु) हैं, वे ब्रह्म में नहीं हैं। निर्धर्मक होने से ब्रह्म निर्विशेष है। अतः श्रुति भी उसको मन-वाणी का अविषय कहती है।

(मन-वाणी का अविषय अर्थात् फलव्याप्ति का विषय नहीं होने से **मन** का अविषय है और शब्द की शक्तिवृत्ति का विषय नहीं होने से **वाणी** का अविषय है।)

किंवा जो कुछ बोलना होता है, वह द्वैत से होता है-अद्वैत से नहीं। इससे इन विशेषणों का ऐसा अर्थ करने से श्रुति विरुद्ध द्वैत की सिद्धि नहीं होती और अद्वैत सुखपूर्वक समझ में आ सकता है।

इति श्री विचार चन्द्रोदये अवाच्य सिद्धांत वर्णन नामिका नवम् कला समाप्तः ॥९॥

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ दशम् कला प्रारम्भः ॥१०॥

* सामान्य विशेष चैतन्य वर्णन *

॥ इन्द्र विजय छन्द ॥

चेतन हैं जु समान विशेष सु।
दोविध सत्य सुजान समानै ॥
भ्रान्ति सरूप विशेष जु कल्पित।
संसृति आश्रय सो तिहि भानै ॥
ज्यों रवि को प्रतिबिम्ब जलादिक।
सो रविरूप विशेष पिछानै ॥
त्यों मति में प्रतिबिम्ब[१५०] परातम।
सो कलपीत विशेषहिं जानै ॥२०॥

जो (चेतन) चैतन्य है सो सामान्य और विशेष दो प्रकार का होता है। सुजान (विवेकी पुरुष) सामान्य चैतन्य को सत्य और विशेष चैतन्य जो है, उसको भ्रान्ति-स्वरूप, कल्पित और जन्म-मरण का आश्रय कहते हैं। अतः सुजान (तिहि भानै) उस विशेष-चैतन्य का बाध निश्चय करते हैं।

---

१५० परमात्मा का प्रतिबिम्ब।

Scanned with CamScanner

सूर्य का जो प्रतिबिम्ब जल या दर्पण आदि में दिखलाई पड़ता है, वह सूर्य का विशेष स्वरूप है। सुजान उस प्रतिबिम्ब को मिथ्या पहिचानते हैं। ऐसे ही परमात्मा का जो प्रतिबिम्ब बुद्धि में चिदाभासरूप से भासता है, वह विशेष-चैतन्य है। सुजान उसको कल्पित (मिथ्या) ही जानते हैं ॥२०॥

आवत जावत लोक प्रलोक हिं।
भोगत भोग जु कर्म[१५१] निपानै॥
सो सब चित-अभास[१५२] करे अरु।
शुद्ध समान महीं नहिं आनै॥
अस्ति रु भाति प्रियं सब पूरन-।
ब्रह्म समान सु चेतन मानै॥
नाम रु रूप तजी सत् चेतन।
मोद पीताम्बर आप पिछानै॥२१॥

यह चिदाभासरूप विशेष चैतन्य ही लोक-परलोक में आता-जाता है ओर जो कर्म रचित भोग हैं, उनको भोगता है। यह सब आना-जाना आदि चैतन्य का प्रतिबिम्ब (चिदाभास) ही करता है। और शुद्ध सामान्य चैतन्य में

---

१५१ जो कर्म रचित भोग हैं, उनको भोगता है।
१५२ चेतन का प्रतिबिम्ब।

Scanned with CamScanner

सुजान आना-जाना आदि नहीं आनै अर्थात् नहीं मानते हैं।

अस्ति, भाति और प्रियरूप से सबमें अनुस्यूत जो सामान्य चैतन्य है, सुजान (सु) उसी सामान्य-चैतन्य को आत्माभिन्न पूर्णब्रह्म (सर्वात्मा) मानते हैं। पीताम्बर जी कहते हैं कि नाम और रूप को त्यागकर, "मैं स्वयं ही सत्-चित्-आनन्दस्वरूप ब्रह्म हूँ" सुजान ऐसा पहिचानते हैं अर्थात् साक्षात् करते हैं ॥२१॥

१८८ प्रश्न— **विशेष चैतन्य क्या है ?**

उत्तर— अन्त:करण और उसकी वृत्तियों में जो सामान्य-चैतन्यब्रह्म का प्रतिबिम्बरूप चिदाभास है वही विशेष चैतन्य[१५३] है।

१८९ प्रश्न— **चिदाभास का क्या लक्षण है ?**

उत्तर— जो १) चैतन्य (ब्रह्म) के लक्षण से रहित हो,
और
२) चैतन्य की भाँति भासता हो,
उसे **चिदाभास** कहते हैं।

(इस पर लेख पृष्ठ १७१-१७३ पर देखें)

---

१५३ यहाँ चिदाभासरूप जो **विशेष चैतन्य** कहा है, सो षष्ठ कला में वर्णित **'कल्पित विशेष-अंश'** के अन्तर्गत है।

Scanned with CamScanner

१९० प्रश्न— **चिदाभास को विशेष चैतन्य क्यों कहते हैं ?**

उत्तर— अल्प देश और अल्प काल में जो वस्तु होवे, उसको विशेष[१५४] कहते हैं। चिदाभास अन्त: करण देश और जाग्रत्-स्वप्नकाल अथवा अज्ञानकाल में ही रहता है। अत: इसको विशेष चैतन्य कहते हैं।

१९१ प्रश्न— **विशेष चैतन्य में क्या दृष्टान्त है ?**

उत्तर— दृष्टांत : १) सूर्य का प्रकाश सर्वत्र समान है, किन्तु प्रतिबिम्ब सर्वत्र नहीं होता। जहाँ जल या दर्पण रूप

---

१५४ अधिष्ठान और अध्यस्त भेद से, **विशेष दो प्रकार** का होता है। उनमें :-

१) जो भ्रांतिकाल में प्रतीत नहीं होता, किन्तु जिसकी प्रतीति से भ्रांति की निवृत्ति होती है, वह **अधिष्ठानरूप विशेष** है। (इसको विषय करने वाला अहंकार, विशेष-अहंकार के अन्तर्गत **'शुद्ध-अहंकार'** है।)

२) भ्रांतिकाल में जिसकी प्रतीति होती है और अधिष्ठान के ज्ञानकाल में नहीं होती, वह **अध्यस्तरूप विशेष** है। इसी को **कल्पित-विशेष** भी कहते हैं। (इसको विषय करने वाला अहंकार, विशेष-अहंकार के अन्तर्गत **'अशुद्ध** अर्थात् मलिन अहंकार' है।)

Scanned with CamScanner

उपाधि होती है, वहीं पर प्रतिबिम्ब-रूप से विशेष प्रतीत होता है। अथवा

२) सूर्य का प्रकाश सर्वत्र समान है तथापि वस्त्र, कपास आदि को नहीं जलाता। जहाँ आगिआ (सूर्य-कांतमणि) रूप उपाधि होती है, वहीं अग्निरूप से विशेष होकर वस्त्र, कपास आदि को जलाता है। उनमें-

क) **सामान्यरूप** से जो भासता है सो सर्वदा ज्यों का त्यों होने से यथार्थ (बहुकाल स्थायी) है और

ख) उपाधि से जो **विशेषरूप** से भासता है, सो व्यभिचारी होने से अयथार्थ (अल्पकाल स्थायी) है।

सिद्धांत : ऐसे ही (१) जो अस्ति-भाति-रूप **सामान्य चैतन्य** है, सो सर्वत्र समान है। परन्तु उससे बोलना, चलना इत्यादि विशेष व्यवहार नहीं होता है। और

(२) जहाँ अन्त:करणरूप उपाधि होती है, वहीं चिदाभासरूप से **विशेष-चैतन्य** होकर बोलना, चलना, परलोक-इसलोक में गमन-आगमन एवं कर्त्तापना, भोक्तापना इत्यादि विशेष व्यवहार होता है। उनमें-

Scanned with CamScanner

क) सामान्य-चैतन्य जो ब्रह्म है, सो सत्य है। और

ख) उपाधि करके भासने वाला जो विशेष-चैतन्य चिदाभास है, सो **मिथ्या** है।

ऐसे ही पुण्य-पाप का कर्त्तापना, सुख-दुःख का भोक्तापना, परलोक-इसलोक में गमन-आगमन, जन्म-मरण, चौरासी लक्ष योनियों की प्राप्ति इत्यादि संसाररूप धर्म भी चिदाभास के हैं ; अतः **मिथ्या** है।

१९२ प्रश्न— **विशेष चैतन्य के जानने में क्या निश्चय करना ?**

उत्तर— १) विशेष-चैतन्य रूप चिदाभास और

२) उसके धर्म।

ये मैं नहीं और मेरे नहीं, किन्तु ये मेरे में कल्पित हैं। मैं इनका अधिष्ठान, सामान्य-चैतन्य, इनसे न्यारा हूँ। यह निश्चय करना।

१९३ प्रश्न— **सामान्य चैतन्य क्या है ?**

उत्तर— जो (१) आकाश की भाँति सर्वत्र परिपूर्ण है, (२) सर्व नाम-रूप का अधिष्ठान है, (३) अस्ति-भाति-प्रियरूप है और (४) निर्विकार है, वह **सामान्य चैतन्य** है।

ब्रह्म ऐसा ही है। अतः ब्रह्म सामान्य चैतन्य है।

१९४ प्रश्न— **ब्रह्म को सामान्य चैतन्य क्यों कहते हैं ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— १) जो वस्तु अधिक देश व काल में होती है, उसे **सामान्य** कहते हैं। ब्रह्म बुद्धि-कल्पित सर्व देश और सर्व काल में व्यापक है। अतः ब्रह्म को **सामान्य चैतन्य** कहते हैं।

२) ऊपर प्रश्न १९३ के उत्तर में वर्णित चारों लक्षणों से ब्रह्म युक्त है। इसलिये भी ब्रह्म को सामान्य-चैतन्य कहते हैं।

१९५ प्रश्न— **सामान्य चैतन्य जानने में क्या दृष्टांत है ?**

उत्तर— दृष्टांत : एक ही रज्जु में, नाना पुरुषों मेंसे किसी को सर्प की, किसी को डण्डे की, किसी को पृथ्वी की रेखा की, किसी को जल-धारा की भ्रांति हो जाती है। इस भ्रान्ति में **दो अंश** हैं-

१) सामान्य-इदंअंश और २) सर्पादि विशेषअंश है।

१) **सामान्य इदंअंश** : यह सर्प है, यह 'डण्डा' है, यह 'पृथ्वी' की रेखा है, यह 'जल धारा' है; इस रीति से सर्पादि विशेष अंशों में सामान्य 'इदं' अंश अर्थात् 'यह' अंश जो सर्बत्र व्यापक है, सो रज्जु का स्वरूप है। यही **सामान्य इदंअंश** है। यह

(क) भ्रांतिकाल में भी भासता है और (ख) भ्रांति की निवृत्तिकाल में भी 'यह रज्जु है', इस रीति से भासता है।

Scanned with CamScanner

अत: सामान्य-इदंअंश अव्यभिचारी होने से सत्य है।

२) **विशेष अंश** : परस्पर व्यभिचारी जो सर्पादि **विशेष अंश** हैं सो **कल्पित** है।

(नोट : एक सामान्य, **ब्रह्म अंश** और दूसरा विशेष, माया अंश को लेकर एक **'ईश्वर'** संज्ञा होती है और सर्व पदार्थ उक्त ईश्वर-रचित ही हैं। इन पदार्थों में (१) अस्ति, (२) भाति व (३) प्रिय- ये तो ब्रह्म के होने से सामान्य अंश हैं और (४) नाम व (५) रूप, मायिक होने से, विशेष अंश हैं। विशेष अंश का बाध कर सामान्य अंश में स्थिति करने से ही ब्रह्म की प्राप्ति होंती है। इस प्राप्ति हेतु निम्न **''कार्य का कारण में लय''** नामक प्रक्रिया है।)

सिद्धान्त :- ऐसे ही सर्व पदार्थों में (१) अस्ति, (२) भाति, (३) प्रिय, (४) नाम और (५) रूप-ये पाँच अंश हैं।

१) (अ) **बाह्य पदार्थों में :-**

क) 'घट है' ; यह **अस्ति** (सत्) है।

ख) घट भासता है ; यह **भाति** (**चित्**) है।

ग) 'घट प्यारा है'; जल भरने में उपयोगी होता है। इसलिए यह **प्रिय** (आनन्द) है।

घ) 'घट' ; यह दो अक्षर **नाम** है। और

Scanned with CamScanner

ड़) स्थूल गोल उदरवान्; घट का **रूप**(आकार) है।

ऐसे ही अन्य सर्व भूत और उनके कार्यों में भी जानना। (सर्प, सिंह आदि भी सर्पिणी, सिंहनी आदि को प्रिय लगते हैं।)

ये बाहिर के पदार्थों में पाँच अंश दिखाए। ऐसे ही :-

१) (आ) **भीतर देह आदि में :-**

क) 'मैं हूँ' ; यह **अस्ति** है।

ख) 'मैं भासता (जानता) हूँ' ; यह भाति है।

ग) 'मैं अपने आप को प्यारा हूँ'; यह **प्रिय** है।

घ) 'देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि चित्त, अहंकार, अज्ञान और इनके धर्म'; ये **नाम** हैं। और

ड़) इनके यथा योग्य आकार हैं ; सो **रूप** हैं।

ये अन्तर के पदार्थों में पाँच अंश दिखाए।

२) **उपरोक्त बाह्य व भीतर के जो पदार्थ हैं, इन सर्व के नाम-रूप के त्याग करने से :-**

क) 'पृथ्वी है'। ख) 'पृथ्वी **भासती** है'।

ग) 'पृथ्वी **प्रिय** है', क्योंकि रहने को स्थान देती है।

घ) 'पृथ्वी', ऐसा नाम है। और

ड़) 'गन्ध गुणयुक्त', **रूप** है।

Scanned with CamScanner

३) **पृथ्वी के नाम-रूप के त्याग करने से :-**

क) 'जल है'। ख) '**जल भासता** है'।

ग) 'जल **प्रिय** है', क्योंकि जल तृषा को दूर करता है।

घ) 'जल', ऐसा **नाम** है। और

ड़) 'शीत-स्पर्श गुणयुक्त', **रूप** है।

४) **जल के नाम-रूप के त्याग करने से :-**

क) 'तेज है'। ख) 'तेज **भासता** है'।

ग) 'तेज **प्रिय** है', क्योंकि तेज, शीत और अन्धकार को दूर करता है।

घ) 'तेज', ऐसा नाम है। और

ड़) 'उष्ण-स्पर्श गुणयुक्त', **रूप** है।

५) **तेज के नाम-रूप के त्याग करने से :-**

क) 'वायु है'। ख) 'वायु **भासता** है'।

ग) 'वायु **प्रिय** है', क्योंकि पसीने को दूर करता है।

घ) 'वायु', ऐसा नाम है। और

ड़) 'रूप रहित एवं स्पर्श गुणयुक्त', **रूप** है।

६) **वायु के नाम-रूप के त्याग करने से :-**

क) 'आकाश है'। ख) 'आकाश **भासता** है'।

ग) 'आकाश **प्रिय** है', क्योंकि रहने फिरने को अवकाश (जगह) देता है।

Scanned with CamScanner

घ) 'आकाश', ऐसा नाम है। और
ड़) 'शब्द गुणयुक्त', **रूप** है।

७) **आकाश के नाम-रूप के त्याग करने से :-**
क) 'पीछे (शेष) क्या है, सो मैं नहीं जानता', ऐसा अज्ञान है।
ख) 'अज्ञान भासता है'
ग) 'अज्ञान, अज्ञानी जीवों को प्रिय है', क्योंकि अज्ञान प्रपञ्च का कारण होने से उन जीवों का निर्वाह करता है।
घ) 'अज्ञान', ऐसा नाम है। और
ड़) 'आवरण-विक्षेप शक्ति वाला, अनादि अनिर्वचनीय, भावरूप', **रूप** है।

८) **अज्ञान के नाम-रूप के त्याग करने से :-**
क) 'कुछ भी नहीं है', ऐसे प्रतीयमान सर्व वस्तुओं का अभाव रहता है।
ख) 'अभाव **भासता** है'।
ग) 'अभाव शून्य-ध्यानियों को **प्रिय** है।'
घ) 'अभाव', ऐसा नाम है। और
ड़) 'सर्व वस्तुओं का अभाव (निषेध-मुख-प्रतीति का विषय)', **रूप** है।

Scanned with CamScanner

९) **अभाव के नाम-रूप के त्याग करने से :-**

क) अभावत्व का स्वरूपभूत अधिष्ठान **सत्** वस्तु ही अवशेष रहता है। **सो**

ख) अभाव के अभावपने को प्रकाशता है, इसलिए **चित्** है। और

ग) दुःख से भिन्न है, इसलिए **आनन्द** है।

इस रीति से -

१) सर्व नाम-रूप में अनुगत, अव्यभिचारी, नाम-रूप का अधिष्ठान ब्रह्म, सामान्य चैतन्य[१५५] है। यह **सत्य** है। और

---

१५५ १) सुषुप्ति, मूर्छा और समाधि का प्रकाशक, **सामान्य चैतन्य** है।

२) 'घट को मैं जानता हूँ' इस रीति से प्रमाता, प्रमाण और प्रमेयरूप त्रिपुटी का प्रकाशक साक्षी, **सामान्य चैतन्य** है।

३) जाग्रदादि अवस्थाओं की सन्धियों का प्रकाशक, **सामान्य चैतन्य** है।

४) ऐसे ही वृत्तियों की सन्धियों का प्रकाशक, **सामान्य चैतन्य** है।

५) अंगुष्ठ के अग्र भाग अर्थात् शरीर के अंग-प्रतिअंग एवं चर्म के समीप सटे हुए भाग का प्रकाशक **सामान्य चैतन्य** है।

- शेष पृष्ठ २४४ पर

Scanned with CamScanner

२) घट के नाम-रूप, पट में नहीं और पट के नाम-रूप, घट में नहीं। इसलिए, परस्पर व्यभिचारी[१५६] - ये नाम-**रूप मिथ्या** हैं।

यह **सामान्य चैतन्य** के जानने में **दृष्टांत** है।

१९६ प्रश्न— **उक्त सामान्य-चैतन्यरूप ब्रह्म की सबसे अधिक सूक्ष्मता और व्यापकता कैसे है ?**

उत्तर— १) जो-जो कार्य है, सो स्थूल और परिच्छिन्न होता है। और

२) जो-जो कारण है, सो सूक्ष्म और व्यापक (अधिक देशवर्ति) होता है। यह नियम है।

ब्रह्म सर्व का कारण है। अत: **सबसे अधिक सूक्ष्म और व्यापक** है। सो अब दिखाते हैं-

---

६) देशांतर में गई हुई वृत्ति के मध्य भाग का प्रकाशक, **सामान्य चैतन्य** है।

७) सूर्य-चन्द्राकार वृत्ति होवे, उसके मध्य भाग का प्रकाशक, **सामान्य चैतन्य** है।

८) 'मेरे (शुद्ध स्वरूप अन्तरात्मा) को मैं चिदाभास नहीं जानता हूँ', ऐसे अज्ञान-विशिष्ट आत्मा अर्थात् जीव-रूप मेरे स्वरूप का प्रकाशक, (शुद्ध) **सामान्य चैतन्य** है।

१५६ जो वस्तु कहीं होती है और कहीं नहीं होती हे, वह **व्यभिचारी** है।

Scanned with CamScanner

१) क) समुद्र-जल से, फेन और लवण कठिन होता है। इससे जाना जाता है कि पृथ्वी, जल का कार्य है।

अत: **पृथ्वी से, जल सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ख) पृथ्वी के पाषाणादि भाग वस्त्र में डालने से बाहिर नहीं निकलते। किन्तु

ग) जल वस्त्र में नहीं ठहरता।

घ) जहाँ-जहाँ पृथ्वी खोद के देखें, वहाँ-वहाँ जल निकलता है। तथा

ड़) पुराणों में, पृथ्वी से दस गुना अधिक देशवर्ति जल कहा गया है।

अत: **पृथ्वी से, जल सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ऐसे ही-

२) क) अग्नि आदि के ताप से शरीर में प्रस्वेद (पसीना) छूटता है और बादलों द्वारा वर्षा होती है। इससे जाना जाता है कि जल अग्नि का कार्य है। अत: जल से, **अग्नि (तेज) सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ख) जल वस्त्र में नहीं ठहरता, परन्तु घट में ठहरता है।

ग) सूर्यादि का प्रकाश घट में भी नहीं ठहरता। तथा

Scanned with CamScanner

घ) पुराणों में, जल से दस गुना अधिक, देशवर्ति तेज कहा गया है।

अत: **जल से, तेज सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

३) क) अग्नि का जन्म और नाश वायु के अधीन है। इससे जाना जाता है कि तेज, वायु का कार्य है। अत: तेज से, वायु सूक्ष्म और व्यापक है।

ख) सूर्यादि का प्रकाश घटादि पात्र में नहीं ठहरता, परन्तु नेत्र से दीखता है और वायु तो नेत्र से भी नहीं दीखता। तथा

ग) पुराणों में, तेज से दस गुना अधिक देशवर्ति वायु कहा गया है।

अत: **तेज से, वायु सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ऐसे ही -

४) क) वायु की उत्पत्ति, स्थिति और लय, आकाश (पोल) में ही होती है। इससे जाना जाता है कि वायु आकाश का कार्य है। अत: **वायु से, आकाश सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ख) वायु नेत्र से नहीं दीखता, परन्तु त्वचा से स्पर्श गुण द्वारा ग्रहण होता है और आकाश तो त्वचा से भी ग्रहण नहीं होता है। तथा

Scanned with CamScanner

ब्रह्म सबसे अधिक सूक्ष्म और व्यापक है।

ग) पुराणों में, वायु से दस गुना अधिक देशवर्ति आकाश कहा गया है।

अत: **वायु से, आकाश सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ऐसे ही -

५) क) 'आकाश से आगे क्या होगा', ऐसा विचार करने से 'मैं नहीं जानता हूँ', ऐसे बुद्धि के कुण्ठी-भाव का आश्रय (विषय), अज्ञान प्रतीत होता है। इससे जाना जाता है कि आकाश अज्ञान का कार्य है। अत: **आकाश से, अज्ञान सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ख) आकाश त्वचा से ग्रहण नहीं होता, परन्तु मन से ग्रहण होता है और अज्ञान मन से भी ग्रहण नहीं होता। तथा

ग) शास्त्र में, आकाश से अनन्त गुना अधिक अज्ञान कहा गया है।

अत: **आकाश से, अज्ञान सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ऐसे ही -

६) क) 'मैं नहीं जानता हूँ' इस अनुभव का विषय जो अज्ञान, उसका प्रकाश जाननेवाले चेतन से होता है। और

(१) 'अज्ञान है'। (२) 'अज्ञान **भासता** है'। और

(३) 'अज्ञान, अज्ञ पुरूष को **प्रिय** है।

Scanned with CamScanner

इस रीति से अज्ञान में अनुस्यूत, अस्ति-भाति-प्रियरूप ब्रह्म-चेतन भासता है। इसलिए अज्ञान, ब्रह्म-चेतन के आश्रित है। अत: **अज्ञान से, ब्रह्म-चेतन सूक्ष्म** और **व्यापक** है।

ख) अज्ञान मन से ग्रहण नहीं होता, परन्तु 'मैं नहीं जानता हूँ', इस अनुभवरूप लिङ्ग करके उसे अज्ञान का अनुमान होता है और ब्रह्म-चेतन, स्वयं-प्रकाशरूप होने से किसी भी प्रमाण का विषय नहीं है। तथा

ग) शरीर में तिल की भाँति, ब्रह्म के एक देश में अज्ञान (माया) स्थित है। यही अज्ञान-विशिष्ट ब्रह्म, विशेष ब्रह्म है और यही **ईश्वर** कहा जाता है। अज्ञान-उपहित ब्रह्म भी सामान्य ब्रह्म ही है एवं शुद्ध स्व-प्रकाश है। जीवन्मुक्त महात्मा, विदेहमुक्ति काल में, इसी में समाते हैं। (अवशेष ब्रह्म) माया-उपाधि द्वारा उपहितपने से भी रहित, अवशेष ब्रह्म शुद्ध स्व-प्रकाश एवम् केवल-ब्रह्म है। ऐसा श्रुति में कहा है।

अत: **अज्ञान से, ब्रह्म-चेतन सूक्ष्म और व्यापक है।**

Scanned with CamScanner

ब्रह्म सबसे अधिक सूक्ष्म और व्यापक है

इस रीति से **सामान्य** चैतन्यरूप ब्रह्म की सर्व प्रपञ्च से **अधिक सूक्ष्मता** और **व्यापकता** है।

१९७ प्रश्न— **सामान्य-चैतन्य के जानने से क्या निश्चय करना ?**

उत्तर—

१) क) अस्ति-भाति-प्रियरूप सामान्य-चैतन्य जो ब्रह्म है, सो मैं हूँ। और

ख) मैं सो अस्ति-भाति-प्रिय रूप सामान्य-चैतन्य-ब्रह्म हूँ। और

२) नाम, रूप, जगत् मेरे में कल्पित हैं।

यह निश्चय करना।

१९८ प्रश्न— **इस रीतिसे निश्चय करने से क्या होता है ?**

उत्तर— इस रीति से निश्चय करने से, सर्व अनर्थ की **निवृत्ति** और परमानन्द की प्राप्ति रूप **मोक्ष** होता है।

इति श्री विचार चन्द्रोद्रये सामान्यविशेषचैतन्य वर्णन नामिका दशम् कला समाप्तः ॥१०॥

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ एकादश कला प्रारम्भः॥११॥

* तत्त्वं पदार्थैक्य निरूपण *

॥ इन्द्र विजय छन्द॥

वाच्य रु लक्ष्य लखी तत्-त्वंपद।
लक्ष्य दुहूँकर एक दृढ़ावै॥
भिन्न जु देशहि काल सु वस्तु रु।
धर्मसमेत उपाधि उडावै॥
जन्म थिती लय कारक मायिक[१५७]।
जाननहार सबी जग भावै॥
ईश्वर वाच्य सु है ततपादहि।
ब्रह्म सु लक्ष्य उपाधि अभावै॥२२॥

'तत्' व 'त्वं' पदों के वाच्य-अर्थ, ईश्वर व जीव और लक्ष्य-अर्थ, ब्रह्म व साक्षी, को लखकर अर्थात् विचारकर, साधक, लक्षणा द्वारा (दुहुंकर) दोनों पदों के लक्ष्यार्थों में एकता का दृढ़ निश्चय करे। ईश्वर व जीव के देश, काल, वस्तु और धर्म आदि, (जु) जो परस्पर भिन्न भिन्न हैं, (सु) उन सहित इनकी उपाधियों को साधक उड़ावे अर्थात् बाध निश्चय करे।

---

१५७ माया उपाधिवान्।

Scanned with CamScanner

ईश्वर, जगत् का जन्म (उत्पत्ति), स्थिति (पालन) और लय (संहार) करने वाले, माया उपाधि वाले, सबके हृदय की जानने वाले, अन्तर्यामी आदि हैं और सभी चराचर-आत्मक जगत् को भाते हैं अर्थात् प्यारे लगते हैं; अथवा सम्पूर्ण जगत् में भावै अर्थात् व्यापक हैं। (सु) वही ईश्वर, 'तत्' पद का वाच्य-अर्थ है। ईश्वर के धर्मों सहित उसकी उपाधि माया का अभाव कर देने पर, अवशेष जो ईश्वर है, वही ब्रह्म है। (सु) वही ब्रह्म, 'तत्' पद का लक्ष्य-अर्थ है॥२२॥

संसृति मानत आपहि में पर-।
तन्त्र अविद्यक[१५८] अल्प जनावै॥
त्वंपद वाच्य सु जीव विवेचित।
लक्ष्य सु साक्षि उपाधि ढ़हावै॥
वाच्य दुअर्थ हि भेद बि है पुनि।
लक्ष्य विभेद न रंचक गावै॥
ब्रह्म अहं इस भाँति जु जानत।
सोई पीताम्बर ब्रह्महि पावै॥२३॥

जीव अपने शुद्ध स्वरूप में जन्म-मरणरूप संसार, पराधीनता, अविद्या उपाधिपना और अल्पज्ञता आदि मानता

---

१५८ अविद्या उपाधिवान्।

Scanned with CamScanner

है। (सु) वही जीव, 'त्वं' पद का वाच्य-अर्थ है। जीव के धर्मों सहित उसकी उपाधि अविद्या को ढ़हाने अर्थात् बाधित कर देने पर, विवेचित जो साक्षी है, (सु) वही साक्षी, 'त्वं' पद का लक्ष्य-अर्थ है।

यद्यपि दोनों पदों के वाच्य (अर्थ हि) अर्थों में (भेद बि) भेद भी है, तथापि विवेकीजन, इनके लक्ष्य-अर्थ में किञ्चित् मात्र भी भेद नहीं गाते हैं। पीताम्बर जी कहते हैं कि इस प्रकार जो "मैं स्वयं ही आत्माभिन्न ब्रह्म हूँ", ऐसा जानता है, (सोई) वही ब्रह्म को प्राप्त होता है अर्थात् ब्रह्म साक्षात्कार करता है॥२३॥

१९९ प्रश्न— **'तत्' पद क्या है ?**

उत्तर— सामवेद की छांदोग्य उपनिषद् के षष्ठ प्रपाठक (अध्याय) में, उद्दालक मुनि ने अपने पुत्र श्वेतकेतु को जो 'तत्त्वमसि'[१५९] महावाक्य का उपदेश किया, उसका प्रथम पद, 'तत्' पद है।

---

१५९ सामवेद के इस 'तत्त्वमसि' महावाक्य की भाँति,
१) 'प्रज्ञानं ब्रह्म', ऋग्वेद का महावाक्य है।
२) 'अहं ब्रह्मास्मि', यजुर्वेद का महावाक्य है। और
३) 'अयमात्मा ब्रह्म', अथर्वणवेद का महावाक्य है।
१) 'तत्' पद का वाच्य-अर्थ ईश्वर और लक्ष्य-अर्थ शुद्ध ब्रह्म है। उपरोक्त तीनों महावाक्यों में 'ब्रह्म' शब्द का भी वाच्य-अर्थ ईश्वर और लक्ष्य-अर्थ शुद्ध ब्रह्म है।

Scanned with CamScanner

२०० प्रश्न— **'त्वं' पद क्या है ?**

उत्तर— इसी 'तत्त्वमसि' महावाक्य का दूसरा पद, 'त्वं' पद है।

२०१ प्रश्न— **वाच्यार्थ और लक्ष्यार्थ किसको कहते हैं?**

उत्तर— शब्द का अर्थ के साथ जो सम्बन्ध है, उसे शब्द की वृत्ति कहते हैं। यह वृत्ति दो प्रकार की होती है- (१) शक्तिवृत्ति और (३) लक्षणावृत्ति।

(१) **शक्ति वृत्ति** :- शब्द में अर्थ के ज्ञान करने का सामर्थ्यरूप जो शब्द का अर्थ केसाथ **साक्षात् सम्बन्ध** है, उसे शब्द की **शक्ति वृत्ति** कहते हैं और इसके द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उसको शब्द का **वाच्य-अर्थ** कहते हैं। इसीको **शक्य-अर्थ** व **मुख्य-अर्थ** भी कहते हैं।

(२) **लक्षणा वृत्ति** :- शक्ति वृत्ति से जाने हुए अर्थ द्वारा जो शब्द का अर्थ के **साथ परम्परारूप सम्बन्ध** है, उसे शब्द की **लक्षणा वृत्ति** कहते हैं और इसके

---

२) त्वं पद का वाच्य-अर्थ जीव और लक्ष्य-अर्थ कूटस्थ साक्षी है। उक्त तीनों महावाक्यों में प्रज्ञानं', 'अहं' और 'अयं-आत्मा'-इन तीनों पदों का वाच्य अर्थ जीव और लक्ष्य-अर्थ कूटस्थ साक्षी है। और

३) **'तत्त्वमसि'** महावाक्य का जो जीव व ब्रह्म की एकता रूप अर्थ है, वही उक्त **तीनों महावाक्यों का अर्थ** है।

Scanned with CamScanner

द्वारा जो अर्थ जाना जाता है, उसे शब्द का **लक्ष्य-अर्थ** कहते हैं।

२०२ प्रश्न— **लक्षणा वृत्ति कितने प्रकार की होती हैं?**

उत्तर— लक्षणा वृत्ति (१) जहत्, (२) अजहत् और (३) भाग-त्याग भेद से, तीन प्रकार की होती है।

२०३ प्रश्न— **तीन प्रकार की लक्षणा के लक्षण और उदाहरण कौन से हैं ?**

उत्तर— (१) जहत् लक्षणा :- जहाँ सम्पूर्ण वाच्य-अर्थ का त्याग करके उसके सम्बन्धी का ग्रहण होता है, उसे **जहत् लक्षणा** कहते हैं।

जैसे किसी पुरुष ने किसी से पूछा कि 'गाय का बाड़ा कहाँ है ?' तब उसने कहा कि 'गङ्गा में गाय का बाड़ा है'। यहाँ 'गङ्गा' पद का वाच्य-अर्थ 'देवनदी का प्रवाह' है। उसमें 'गाय का बाड़ा' होना सम्भव नहीं। इसलिए सम्पूर्ण वाच्य-अर्थ 'देवनदी के प्रवाह' का त्याग करके उसके सम्बन्धी 'तीर' का ग्रहण है अर्थात् 'गंगा के तट पर गाय का बाड़ा है,' यह अर्थ है।

(२) अजहत् लक्षणा :- जहाँ वाच्य-अर्थ का त्याग न करके, उस अर्थ के साथ-साथ उसके सम्बन्धी का भी ग्रहण होता है, उसे **अजहत् लक्षणा** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

जैसे किसी ने कहाँ 'शोण दौड़ता है'। यहाँ 'शोण पद के वाच्य-अर्थ 'लाल रङ्ग' में दौड़ना सम्भव नहीं। अतः 'लाल रङ्ग वाला घोड़ा दौड़ता है'। ऐसे 'शोण' पद का वाच्यार्थ न त्याग कर उस अर्थ के साथ-साथ उसके सम्बन्धी घोड़े-रूप अर्थ का भी ग्रहण होता है।

(३) **भाग-त्याग लक्षणा** : जहाँ विरोधी कुछ वाच्य भाग का त्याग कर,उसके सम्बन्धी अविरोधी कुछ वाच्य भाग का ग्रहण होता है, उसे **भाग-त्याग लक्षणा** कहते हैं। उसी को **जहताजहत् लक्षणा** भी कहते हैं।

जैसे पूर्व किसी देश और काल में देखे हुए पुरुष को अन्य देश और काल में देखने पर, देखने वाला पुरुष कहता है कि 'उस दूर देश और उस भूत काल में जिस पुरुष को देखा था, वही पुरुष इस समीप देश और इस वर्तमान काल में आया है।' यहाँ 'उस देश और काल' तथा इस देश और काल' रूप वाच्य भाग की एकता का विरोध है। इसलिए उनकी दृष्टि त्यागकर 'पुरुष यही है', ऐसे अविरोधी वाच्य भाग का ग्रहण होता है।

२०४ प्रश्न— **तीन प्रकार की लक्षणा में से महावाक्य में कौनसी लक्षणा सम्भव है ?**

Scanned with CamScanner

उत्तर— १) जहाँ जहत् लक्षणा होती है, वहाँ सम्पूर्ण वाच्य-अर्थ का त्याग होता है।

यदि महावाक्य में जहत् लक्षणा मानें तो-

क) 'तत्' व 'त्वं' पदों के वाच्य-अर्थों में प्रविष्ट ब्रह्म चैतन्य और साक्षी-चैतन्य का त्याग होगा। और

ख) उनसे भिन्न, असत्-जड़-दु:खरूप प्रपञ्च का ग्रहण करना होगा अथवा समष्टि-व्यष्टि प्रपञ्चमय उपाधि (विशेषण रूप वाच्य भाग) का भी चेतन के साथ-साथ त्याग करने से, अवशेष रहे शून्य का ग्रहण करना होगा।

इससे महा अनर्थ की प्राप्ति होगी और पुरुषार्थ की सिद्धि नहीं होगी।

इसलिए **महावाक्य में जहत् लक्षणा सम्भव नहीं।**

२) जहाँ अजहत् लक्षणा होती है, वहाँ वाच्य- अर्थ का कुछ भी त्याग नहीं होता, परन्तु अधिक अर्थ का ग्रहण होता है।

यदि महावाक्य में अजहत् लक्षणा मानें तो-

क) 'तत्' व 'त्वं' पदों के वाच्य-अर्थ ज्यों के त्यों बने रहेंगे। और

ख) उसके साथ शून्यरूप अधिक अर्थ का ग्रहण करना होगा। उससे एकता का विरोध दूर नहीं होगा।

Scanned with CamScanner

इसलिए लक्षणा करने का कुछ प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा।

इसलिए **महावाक्य** से अजहत् लक्षणा सम्भव नहीं।

३) जहाँ भाग-त्याग लक्षणा होती है, वहाँ विरोधी भाग का त्यागकर अविरोधी भाग का ग्रहण होता है।

यदि महावाक्य में भाग-त्याग लक्षणा मानें तो-

क) 'तत्' व 'त्वं', पदों के वाच्य अर्थों में से धर्म आदि सहित माया एवं धर्म आदि सहित अविद्या इन विरोधी भागों का त्याग होता है।

और

ख) ईश्वर के जीव के अविरोधी असंग-शुद्ध-चेतन भाग ब्रह्म व साक्षी का ग्रहण होता है।

इससे उनकी एकता भी बनती है और उसी से परम पुरूषार्थ की प्राप्ति होती है।

इसलिए महावाक्य में भाग-त्यागलक्षणा सम्भव है।

२०५ प्रश्न— **'तत्' पद का वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ क्या है ?**

उत्तर—

१) अव्याकृत माया, **ईश्वर का देश** है।

२) उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय **ईश्वर के काल** हैं।

३) सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण-

Scanned with CamScanner

ईश्वर की वस्तु[१६०] अर्थात् सृष्टि की सामग्री हैं।

४) विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत **ईश्वर के शरीर** हैं।

५) वैश्वानर, सूत्रात्मा और अन्तर्यामी- **ईशपने के अभिमानी हैं।**

६) 'मैं एक हूँ, सो बहुरूप होऊँ, ऐसी ईक्षणा (इच्छा) आदि लेकर 'जीवरूप से प्रवेश हुआ',

---

१६० यद्यपि माया और तीन गुण एक ही पदार्थ होने से ईश्वर के देश, वस्तु और शरीर की एकता होती है, तथापि जैसे कुलाल (कुम्हार) को घट बनाने के लिए (१) मृत्तिका रूपी पृथ्वी, देश है। (२) मृत्तिका का पिण्ड, वस्तु है। और (३) शरीरस्थ हड्डी, माँस आदि रूप पृथ्वी का भाग, शरीर है; उनकी एकता का असम्भव नहीं है।

वैसे ही ईश्वर के भी देश आदि की एकता का असम्भव नहीं है। पृथ्वी तत्त्व की एकता होने पर भी उसी पृथ्वी में कुलाल का देश, कुलाल की वस्तु और कुलाल का शरीर-इन तीनों व्यवहारों के भेद में जैसे असम्भवता नहीं; वैसे ही माया तत्त्व के एक होने पर भी ईश्वर के देश, वस्तु और शरीर के व्यवहारों के भेद में असम्भवता नहीं। जैसे एक ही पृथ्वी में तीन व्यवहार सम्भव हैं, वैसे एक ही माया में तीन व्यवहार होते हैं।

Scanned with CamScanner

यहाँ पर्यन्त जो सृष्टि है, सो **ईश्वर का कार्य** है।

७) सर्वशक्तिपना, सर्वज्ञपना, व्यापकपना, एकपना, स्वाधीनपना, समर्थपना, परोक्षपना और मायाउपाधिवान्पना-ये आठ **ईश्वर के धर्म** हैं।

१) इन धर्मों सहित-

क) **माया** ख) उस माया में प्रतिबिम्बरूप **चिदाभास** और ग) उनका अधिष्ठान **ब्रह्म**- ये सर्व मिलकर **ईश्वर** कहा जाता है। वही **'तत्' पद का वाच्य अर्थ** है।

२) उक्त धर्मों सहित माया और चिदाभास भाग का त्याग करके अवशेष रहा विराट्, हिरण्यगर्भ और अव्याकृत, इन तीनों का अधिष्ठान ईश्वर-साक्षी रूप जो शुद्ध ब्रह्म है, वही **'तत्' पद का लक्ष्य अर्थ** है।

२०६ प्रश्न— **बिम्बरूप ब्रह्म का और माया में प्रतिबिम्बरूप ईश्वर का परस्पर अध्यास (अन्योन्याध्यास) कैसे है ?**

(नोट :- निम्न उत्तर में 'ब्रह्म' पद से बिम्बरूप ब्रह्म' तथा 'ईश्वर' पद से 'माया एवं बिम्ब-रहित केवल प्रतिबिम्ब-मात्र समझना।

Scanned with CamScanner

उत्तर— १) ब्रह्म की सत्यता का ईश्वर में संसर्ग (तादात्म्य सम्बन्ध) अध्यस्त है। इसलिए ईश्वर सत्य प्रतीत होता है। और

२) ईश्वर और उसकी जगत् के प्रति उत्पत्ति, पालन तथा प्रलय-रूप कारणता - यह दोनों स्वरूप से ब्रह्म में अध्यस्त हैं। इसलिए ब्रह्म जगत का कारण प्रतीत होता है। इसी का अनुवाद तटस्थ लक्षण के बोधक श्रुति, पुराण और आचार्यों के वचन करते हैं।

इस रीति से **ब्रह्म** और **ईश्वर का परस्पर अध्यास** है।

२०७ प्रश्न— **उक्त अध्यास की निवृत्ति किससे होती है ?**

उत्तर— उक्त अध्यास की निवृत्ति विवेक-ज्ञान से होती है।

२०८ प्रश्न— **'त्वं' पद का वाच्य अर्थ और लक्ष्य अर्थ क्या है ?**

उत्तर—

१) चक्षु, कण्ठ और हृदय - जीव के देश हैं।

२) जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति - जीव के काल हैं।

Scanned with CamScanner

३) स्थूल, सूक्ष्म और कारण - जीव के वस्तु (भोग सामग्री) है।

४) ये ही (स्थूल, सूक्ष्म और कारण) **जीव के शरीर** हैं।

५) विश्व, तैजस और प्राज्ञ-**जीवपने के अभिमानी** हैं।

६) जाग्रत आदि से लेकर मोक्ष पर्यन्त भोगरूप, **जीव का कार्य** हैं।

७) अल्प-शक्तिपना, अल्पज्ञपना, परिच्छिन्नपना, नानापना, पराधीनपना, असमर्थपना, अपरोक्षपना और अविद्या-उपाधिवान्पना-
ये आठ **जीव के धर्म** हैं।

१) इन धर्मों सहित-
क) **अविद्या,** ख) उसमें प्रतिबिम्बरूप **चिदाभास** और ग) उनका अधिष्ठान, **कूटस्थ** - ये सर्व मिलकर जीव कहा जाता है। वही जीव **'त्वं' पद का वाच्य अर्थ** है।

२) उक्त धर्मों सहित अविद्या और चिदाभास भाग का त्याग कर अवशेष रहा जो स्थूल-सूक्ष्म कारण शरीर का अधिष्ठान जीव-साक्षी, कूटस्थ, आत्मा है, वही

Scanned with CamScanner

'त्वं' पद का लक्ष्य अर्थ है।

२०९ प्रश्न— **बिम्बरूप कूटस्थ का और बुद्धि में प्रतिबिम्बरूप जीव का परस्पर अध्यास कैसे है ?**

(नोट :- निम्न उत्तर में 'कूटस्थ' पद से 'बिम्बरूप कूटस्थ' तथा 'जीव' पद से 'अविद्या एवं बिम्ब-रहित, केवल प्रतिबिम्ब मात्र' समझना।)

उत्तर— १) कूटस्थ की सत्यता का संसर्ग (तादात्म्य सम्बन्ध) जीव में अध्यस्त है। इसलिए जीव मिथ्या प्रतीत नहीं होता, किन्तु सत्य प्रतीत होता है। और

२) जीव और उसके कर्त्तापना आदि धर्म-यह दोनों स्वरूप से कूटस्थ में अध्यस्त हैं। इसलिए कूटस्थ अकर्त्ता, अभोक्ता, असंसारी, नित्य-मुक्त, असङ्ग ब्रह्मरूप प्रतीत नहीं होता; किन्तु उससे विपरीत प्रतीत होता है।

इस रीति से **कूटस्थ का और जीव का परस्पर अध्यास** है।

२१० प्रश्न— **उक्त अध्यास की निवृत्ति किससे होती है ?**

उत्तर— उक्त **अध्यास की निवृत्ति** विवेक-ज्ञान से होती है।

Scanned with CamScanner

२११ प्रश्न— **'तत्' और 'त्वं' पद के अर्थ की महावाक्य में कथित एकता कैसे सम्भव है ?**

उत्तर— १) **यद्यपि** 'तत्' और 'त्वं' पदों के वाच्य अर्थ जो ईश्वर और जीव हैं, उनकी एकता का **विरोध** है।

२) **तथापि** 'तत्' पद का लक्ष्य अर्थ 'ब्रह्म' और 'त्वं' पद का लक्ष्य **अर्थ** 'आत्मा', इनकी एकता का कुछ भी **विरोध नहीं**।

ऐसे 'तत्' पद और 'त्वं' पद के अर्थ की महावाक्य में करी हुई एकता सम्भव है।

२१२ प्रश्न— **'मैं ब्रह्म हूँ', ऐसा ब्रह्म-आत्मा की एकता का ज्ञान किसको होता है ?**

उत्तर— यह ज्ञान चिदाभास को होता है।

२१३ प्रश्न— **ब्रह्म से भिन्न चिदाभास अपने को ब्रह्म-रूप करके कैसे जानता है?**

उत्तर— जीवभाव के अधिष्ठान कूटस्थ का ब्रह्म के साथ **मुख्य अभेद** है। इसी को **मुख्य-समानाधिकरण्य** कहते हैं। चिदाभास द्वारा बुद्धिसहित अपने स्वरूप का बाध कर देने पर, ब्रह्म के साथ अभेद हो जाता है। इसको **बाधसमानाधिकरण्य** कहते हैं।

Scanned with CamScanner

(१) चिदाभास अपने स्वरूप का बाध करके अपने आप को 'अहम्' शब्द के लक्ष्यार्थ कूटस्थरूप जानता है।

और फिर

(२) अपने निजरूप कूटस्थ का 'मैं कूटस्थ हूँ' ऐसा निश्चय करके 'मैं ब्रह्म हूँ', ऐसे जानता है।

इस रीति से चिदाभास अपने आपको ब्रह्मरूप करके जानता है।

२१४ प्रश्न— **इन 'तत्' और 'त्वं' पद के लक्ष्यार्थ की एकता में क्या दृष्टान्त हैं ?**

उत्तर— **दृष्टांत :** (१) क) घटरूप उपाधि सहित घटाकाश और मठरूप उपाधि सहित मठाकाश की एकता का **विरोध** है।

ख) तथापि घट-मठ रूप उपाधि की दृष्टि छोड़ कर केवल आकाश की एकता का **विरोध नहीं।**

(२) क) कांच और मृत्तिका की हांडियों में दीपक जलता होवे, उनकी उपाधि, दोनों हांडियों की एकता का **विरोध** है।

ख) तथापि अग्निपने करके दीपक की एकता का **विरोध नहीं।**

Scanned with CamScanner

(३) क) राजा और रेबारी (गड़रिया) में उनकी उपाधि सेना और अजावर्ग (भेड़-बकरियों का समूह) की एकता का **विरोध** है।

ख) तथापि दोनों के मनुष्यपने की एकता का विरोध नहीं।

(४) क) देव नदी में प्रवाहित गङ्गाजल का और कलश में भरे हुए गङ्गाजल का- इन दोनों में इनकी उपाधि, नदी और कलश, की एकता का **विरोध** है।

ख) तथापि दोनों उपाधियाँ त्यागने पर, केवल गङ्गाजल की एकता का **विरोध नहीं**।

(५) क) सागर और जल के बिन्दु में, उनकी उपाधि, सागर और बिन्दु की, एकता का **विरोध** है।

ख) तथापि दोनों उपाधियाँ त्यागने पर, केवल जल की एकता का **विरोध नहीं**।

(६) क) किसी पुरुष को पिता की अपेक्षा से पुत्र और पितामह की अपेक्षा से पौत्र कहते हैं। तद्गत पुत्र और पौत्ररूप उपाधियों की एकता का **विरोध** हैं।

ख) तथापि दोनों उपाधियाँ त्यागने पर केवल पुरुष की एकता का **विरोध नहीं**।

Scanned with CamScanner

(७) जैसे काशी का कोई राजा था। वह हाथी की सवारी पर निकला। उसको किन्हीं यात्रियों ने उस शोभा यात्रा में अच्छी तरह से देखा। फिर वे यात्री अपने देश को चले गए। कुछ दिन पश्चात् अन्य किसी राजा ने आक्रमण करके काशी के राजा को उसका राज्य छीनकर, बाहिर निकाल दिया। तब वह राजा साधु वेश में लँगोटी पहिनकर, अङ्ग में भस्म लगाकर, हाथ में तूम्बी और दण्ड लेकर, नंगे पाँव तीर्थं यात्रा को निकल गया। घूमते-घूमते वह राजा उन यात्रियों के ग्राम में चला गया। तब उनमें से एक यात्री ने उस राजा को देखकर अन्य यात्रियों से कहा कि हमने काशी में जो राजा देखा था, वह यही है। तब अन्य यात्री कहने लगे-

१) **वह** देश अन्य, **यह** देश अन्य।
२) **उसका** काल (अवस्था) अन्य, इसका काल अन्य।
३) **उसकी वस्तु** (सामग्री) अन्य, **इसकी** वस्तु अन्य।
४) **उसका** अभिमान अन्य, **इसका** अभिमान अन्य
५) **उसका** कार्य अन्य, **इसका** कार्य अन्य। और
६) **उसके** धर्म अन्य, **इसके** धर्म अन्य।

इसलिए उस काशी के राजा की और इस भिक्षुक की एकता कैसे बन सकती है ?

Scanned with CamScanner

तब उस प्रथम यात्री ने कहा कि "**उसके** और **इसके**, (१) देश, (२) काल, (३) वस्तु, (४) अभिमान, (५) कार्य और (६) धर्म, इन सभी का त्याग कर देने पर दोनों में अनुगत (अनुस्यूत) जो **पुरुषमात्र** है, सो एक ही है।"

सिद्धान्त :- ऐसे ही जीव और ईश्वर के भी देश और काल आदि का त्याग कर देने पर, दोनों में अनुगत जो चेतनमात्र ब्रह्म और आत्मा है, सो एक ही है। इससे 'ब्रह्म, **सो मैं हूँ**' और '**मैं, सो** ब्रह्म हूँ', ऐसा दृढ़ निश्चय करना ही **तत्त्वज्ञान** है।

इसी से सर्व दुःखों की निवृत्ति और परमानन्द की प्राप्ति-रूप मोक्ष होता है।

इति श्री विचार चन्द्रोदये 'तत्त्वमसि' महावाक्य गत 'तत्त्वं' पदार्थैक्य निरूपण नामिका एकादश कला समाप्तः॥११॥

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ द्वादश कला प्रारम्भः ॥१२॥

* ज्ञानी के कर्म निवृत्ति का प्रकार वर्णन *

॥ तोटक छन्द[१६१] ॥

जिन आतमरूप पयो[१६२] जु भले।
तिस त्रैविधकर्म मिटे सकले ॥
तम[१६३] आवृत्ति आश्रित संचित ले।
निज बोध सु पावक सर्व जले ॥२४॥

जो विवेकीजन (जु) पूर्व वर्णित भाग-त्याग लक्षणा द्वारा ब्रह्माभिन्न आत्मस्वरूप को भली प्रकार से देख लेते हैं अर्थात् दृढ़ अपरोक्ष साक्षात्कार कर लेते हैं, उनके तीनों प्रकार के सर्व कर्म मिट जाते हैं। अज्ञान, उसकी आवरणशक्ति, और उस शक्ति के आश्रित सञ्चित कर्मों को लेकर जो संस्कार आदि थे- वे सभी निजात्म बोधरूपी प्रज्वलित अग्नि में जल जाते हैं ॥२४॥

---

१६१ ठुमरी में गाया जाता है।
१६२ देख्यो।
१६३ अज्ञान की आवरण शक्ति के आश्रित सञ्चित कर्मों को लेकर।

Scanned with CamScanner

जड़ चेतन गांठ विभेद बले।
दृढ़राग दवेष कषाय गले।।
जल में जिम लिप्त न कंजदले[१६४]।
परसे न अगामि जु कर्म मले।।२५।।

(जड़ चेतन गाँठ) चिद्-जड़-ग्रन्थिरूप अन्योन्याध्यास, (विभेद) भेद-भ्रान्ति आदि, सभी इसी निजात्मबोध रूपी प्रज्वलित अग्नि में जल जाते हैं और हिमवत् जमे हुए दृढ़ राग, द्वेष एवं कषाय (राग-द्वेष के संस्कार) भी गलकर बह जाते हैं।

कमल-पत्र जैसे जल में लिप्त नहीं होता, वैसे ही ज्ञानी भी आगामिकर्म रूपी जो मल है, उससे (परसे न) लिपायमान नहीं होता ॥२५॥

इस जन्म अरंभक कर्म फले।
सुखदु:खहि भोगत होत प्रले।।
इस भाँति जु होवत जन्म विले।
पिख[१६५] रूप पीताम्बर स्वं विमले।।२६।।

इस जन्म के आरम्भक प्रारब्धकर्म सुख-दु:खरूप से फले अर्थात् फलते हैं और भोगने से प्रले अर्थात् निवृत्त हो जाते हैं।

---

१६४ कमल का पत्र। १६५ देखिके (देखकर)।

Scanned with CamScanner

पीताम्बरजी कहते हैं कि इस प्रकार कर्मों की निवृत्ति से (जु) जिस क्षण (होवत जन्म विले) जन्म विलय होता है, उसी क्षण, ज्ञानी की (स्व) अपने (रूप) ब्रह्माभिन्न आत्मस्वरूप के (पिख) मात्र प्रबल संस्काराधीन लेशाविद्या की निवृत्ति होकर (विमले) *, विदेहमुक्ति हो जाती है॥२६॥

२१५ प्रश्न— **कर्म क्या है ?**

उत्तर— शरीर, वाणी और मन की क्रिया को **कर्म** कहते हैं।

---

* काष्ठ-आरूढ़ अग्नि से अन्य काष्ठादि का दाह होकर, स्वयं काष्ठ का भी दाह हो जाता है अथवा अंगारस्थ अग्नि से अंगारों के भस्म हो जाने पर, स्वयं वह अग्नि भी सामान्य अग्नि में मिल जाती है। ऐसे ही ज्ञानी के इस जन्म के हेतु प्रारब्ध कर्म के अन्तकाल में, सामान्य अहंकार में रहने वाले ब्रह्म विद्या के संस्कार-आरूढ़ चेतन द्वारा, लेशाविद्या, उसकी विक्षेप शक्ति और उसके आश्रित प्रारब्ध एवं प्रारब्ध-रचित जन्मादि प्रपञ्च सभी का नाश होकर, ज्ञान के संस्कारों का भी विनाश हो जाता है। तत्क्षण काष्ठ-आरूढ़ अग्नि की लौ के सामान्य अग्नि में विलयवत्, 'चिन्मात्र मिलाय विशेषहि कूँ' अर्थात् संस्कार-आरूढ़ चिदाभास अपने शुद्ध सामान्य स्वरूप में मिलकर 'चिद् होय भजे अवशेषहि कूँ' अर्थात् अपने ब्रह्माभिन्न आत्म-स्वरूप को प्राप्त कर, 'नहीं जन्म पीताम्बर शेषहि कूँ' अर्थात् विदेह मुक्ति को प्राप्त होता है।

Scanned with CamScanner

२१६ प्रश्न— **कर्म कितने प्रकार के हैं ?**

उत्तर— कर्म (१) सञ्चित, (२) प्रारब्ध और (३) क्रियमाण (आगामि) भेद से, **तीन प्रकार** के होते हैं।

२१७ प्रश्न— **१) सञ्चित कर्म क्या है ?**

उत्तर— अनेक अतीत (पूर्व) जन्मों में सञ्चय किया कर्म **सञ्चित कर्म** है।

२१८ प्रश्न— **२) प्रारब्ध कर्म क्या है ?**

उत्तर— अनेक सञ्चित कर्मों के मध्य से परिपक्व हुआ और ईश्वर की इच्छा से इस वर्तमान देह का आरम्भक कोई एक सञ्चित कर्म, **प्रारब्ध कर्म** है।

२१९ प्रश्न— **क्रियमाण कर्म क्या है ?**

उत्तर— इस वर्तमान देह में, मरण पर्यन्त जो कर्म किए जाते हैं, वे कर्म **क्रियमाण कर्म** हैं।

२२० प्रश्न— **ज्ञानी के कर्म की निवृत्ति कैसे होती है ?**

उत्तर— १) ज्ञान से अज्ञान के आवरण-अंश की निवृत्ति होती है और आवरण की निवृत्ति होने पर उस आवरण के आश्रित **सञ्चित** अर्थात पूर्व अनेक जन्मों के किए हुए कर्म निवृत्ति (नाश) हो जाते हैं।

२) ज्ञान के पूर्व और पीछे इस जन्म में किए हुए क्रियमाण कर्मों का, (क) 'मैं अकर्त्ता, अभोक्ता, असङ्ग ब्रह्म

Scanned with CamScanner

हूँ, इस निश्चय के बल से (ख) अपने आश्रय-भ्रमज-तादात्म्य के नाश से और (ग) राग-द्वेष के अभाव से, जल में स्थित कमल-पत्र की तरह, यह **क्रियमाण** कर्म ज्ञानी को स्पर्श नहीं कर पाते; किन्तु ज्ञानी के इस जन्म में किए हुए शुभ अशुभ **क्रियमाण** कर्मों को क्रम से सुहृद अर्थात् सकामी भक्त और द्वेषी अर्थात् निंदक पुरुष ग्रहण करते हैं।

(अर्थात् सुहृद, सेवक आदि ज्ञानी के पुण्य फल का भाग पाते हैं और द्वेषी, निंदक आदि उसके पाप फल का भाग प्राप्त करते हैं; क्योंकि स्वयं ज्ञानी तो पुण्य-पाप के फल-भोग से निवृत्त एवं असङ्ग होता है।) और

३) अज्ञान की विक्षेप शक्ति के आश्रित, ज्ञानी के प्रारब्ध अर्थात् पूर्व के किसी एक जन्म में किए इस जन्म के आरम्भक कर्म की, भोग से निवृत्ति होती है।

(नोट :- **आरम्भक कर्म** : योग दर्शन २-१० एवं ४-९ आदि सूत्रों में अथवा अन्य वृहत् ग्रन्थों में देखें।)

इसलिए ज्ञानी सर्व कर्म से मुक्त है; अतः कर्म-रचित जन्मादिक संसार से भी मुक्त है। इस प्रकार **ज्ञानी के कर्म की निवृत्ति** होती है।

इति श्री विचार चन्द्रोदये ज्ञानी कर्म निवृत्ति प्रकार वर्णन नामिका द्वादश कला समाप्तः ॥१२॥

Scanned with CamScanner

प्रारब्ध कर्म

(१) कर्मों की तीव्र-मंद संज्ञाएँ-

जीवों के प्रति पहुँचाने वाले न्यूनाधिक सुख-दुःख, शान्ति-अशान्ति, हित-अहित आदि भेदों को लेकर एवम् उत्तम-मध्यम-कनिष्ट देश, काल, वस्तु, व्यक्ति आदि के भेदों को लेकर, विहित-निषिद्ध क्रियाओं अर्थात् व्यवहारों से न्यूनाधिक धर्म-अधर्म (पुण्य-पाप) रूप अदृष्ट उत्पन्न होते हैं।

"वेद विहित क्रिया-जन्य-मदृष्टं स्वर्ग जनकं सधर्मः।
वेद निषिद्ध क्रिया-जन्य-मदृष्टं नरक जनकं सअधर्मः॥

इन अदृष्टों की तीव्र, तीव्रतर, तीव्रतम अथवा मंद मंदतर, मंदतम आदि अनेक संज्ञाएँ योग-सूत्र, पूर्व-मीमांसा आदिक के वृहत् ग्रन्थों में वर्णन की गई हैं, वहाँ पर देख लेवें।

(देश (काशी आदि), काल (एकादशी आदि), वस्तु (गंगा आदि तीर्थ अथवा मन्दिर आदि), व्यक्ति (जीवन्मुक्त अथवा अन्य अधिकारी)।)

(२) अदृष्ट की उत्पत्ति और एक-अनेक संख्या-

मनुष्य योनि कर्म-भूमि है। इसमें की गई प्रत्येक क्रिया का पुण्यरूप या पापरूप अदृष्ट बनता है। व्यक्ति द्वारा

Scanned with CamScanner

की गई कहीं पर अनेक विहित (श्रौत-स्मार्त आदि) अथवा निषिद्ध क्रियाएँ और कहीं पर एक ही विहित अथवा निषिद्ध क्रिया एक कर्मरूप अदृष्ट को उत्पन्न करती हैं। इस भाँति उत्पन्न हुआ क्रियमाण अदृष्ट कर्म, संचित कर्म में मिल जाता है और संचित कर्म कहलाता है। पुनः फलोन्मुख काल में जब वह संचित कर्म आता है तब, ईश्वर प्रेरणा से, उसकी प्रारब्ध संज्ञा बन जाती है।

(क) श्रौत कर्म-दर्श-पूर्णमासीरूपी अंगीयागात्मक कर्म के साथ अनेक अंगयागात्मक कर्म होते हैं। उन सब अंगयागात्मक कर्मों की पूर्ति के सहित ही उस अंगीयागात्मक कर्म की पूर्ति होती है। इस पूर्ति के होने पर इससे उत्पन्न कमरूप अदृष्ट एक ही होता है और इसका फल स्वर्ग-प्राप्ति भी एक ही होता है। यह अदृष्ट नाना फलात्मक नहीं होता।

(ख) स्मार्त-कर्म-औषधालय, कुआँ, तालाब, धर्मशाला आदि बनाने में व्यक्ति द्वारा अनेक क्रियाएँ होती हैं, परन्तु व्यक्ति का लक्ष्य औषधालय आदि एक ही होने से, इससे उत्पन्न अदृष्ट और तद्जन्य सुखरूप फल भी एक ही होता है। यह अदृष्ट नाना सुखरूप फलात्मक नहीं होता।

अनेक निषिद्ध क्रियाओं से भी इसी भाँति एक ही

Scanned with CamScanner

अदृष्ट की उत्पत्ति होती है।

एक विहित-निषिद्ध क्रिया का एक ही पुण्य-पापरूप अदृष्ट तो साधरणत: होता ही है ; जैसे एक एकादशी आदि के व्रत से एक पुण्यरूप अदृष्ट अथवा असावधानी से एक चींटी मात्र के मर जाने से भी एक मंद पापरूप अदृष्ट उत्पन्न होता है।

इस प्रकार किसी एक पूर्व जन्म में किया हुआ कोई एक संचित कर्म परिपक्व होकर फलोन्मुख होता है; तब ईश्वर-इच्छा से वही कर्म, इस जन्म का आरम्भक होता है और इसी को प्रारब्ध कहते हैं। अनेक अन्य उत्तम-मध्यमादि जाति एवम् न्यूनाधिक आयु-भोग फल देने वाले परिपक्व संचित कर्म भी, ईश्वर-इच्छा से, इसी प्रारब्ध के साथ मिलकर, प्रारब्ध संज्ञक हो जाते हैं और यथा समय अपना-अपना फल देते रहते हैं।

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ त्रयोदश कला प्रारम्भः॥१३॥

* सप्त ज्ञान भूमिका वर्णन *

॥ तोटक छन्द॥

निज बोध कि भूमि सु सप्त अहैं।
इस भाँति वसिष्ठ[१६६] मुनीश कहैं॥
शुभसाधन सम्पत्ति आदि लहै।
श्रवणादिविचार द्वितीय वहै॥२७॥

निज बोध की भूमिकाएँ हैं-वे सात हैं, इस प्रकार योगवासिष्ठ में महामुनि वसिष्ठजी ने कहा है। शुभ-साधन रूपी सम्पत्ति से युक्त होना, 'शुभेच्छा' नाम की पहली भूमिका है। श्रवणादि विचारधारा में निरन्तर प्रवाहित होते रहना, 'सुविचारणा' नाम की दूसरी भूमिका है॥२७॥

निदिध्यासन तीसरभूमि गहै।
अपरोक्ष निजातम चौथि चहै॥
हमता ममता बिन पंचम है।
छटवी सब वस्तु अकार दहै॥२८॥

---

१६६ योगवासिष्ठ ग्रन्थ में।

Scanned with CamScanner

निरन्तर निदिध्यासन करते रहना, 'तनुमानसा' नाम की तीसरी भूमिका है। निज आत्मा के ब्रह्माभिन्नरूप दृढ़-अपरोक्ष ज्ञानयुक्त अन्त:करण की प्राप्ति, 'सत्त्वापत्ति' नाम की चौथी भूमिका है। बाधितानुवृत्ति से रहने वाली अहंता-ममता का भी नहीं रहना, 'असंसक्ति' नाम की पाँचवीं भूमिका है। सब वस्तुओं के आकार का दहन अर्थात् अभाव हो जाना, 'पदार्था-भाविनी', नाम की छठी भूमिका है॥२८॥

सतमी तुरिया जु वरिष्ठित है।
सबवृत्ति विलीन चिदात्म रहै॥
इव[१६७] गाढ़सुषुप्ति न जागत है।
परमानन्द मत्त पीताम्बर है॥२९॥

तुरिया जो सब भूमिकाओं में वरिष्ठ है, सो 'तुरीयगा' नाम की सातवीं भूमिका है। इस अन्तिम भूमिका में ज्ञानी की सब वृत्तियाँ विलीन हो जाती हैं और वह केवल चिदात्मा-रूप से स्थित रहता है। पीताम्बर जी कहते हैं कि परमानन्द में (मत्त) मग्न रहने से यह अवस्था गाढ़ सुषुप्तिवत् है, जिससे ज्ञानी कभी नहीं जागता॥२९॥

---

१६७ गाढ़ सुषुप्ति इव (वत्)।

Scanned with CamScanner

२२१ प्रश्न— **सर्व ज्ञानियों का निश्चय तो एक ही है, फिर भी स्थिति का भेद क्यों है ?**

उत्तर— सर्व ज्ञानियों की स्थिति का भेद, ज्ञान-भूमिका के भेद से है।

२२२ प्रश्न— **ये ज्ञान-भूमिकाएँ कितनी हैं ?**

उत्तर— (१) शुभेच्छा, (२) सुविचारणा, (३) तनुमानसा, (४) सत्त्वापत्ति, (५) असंसक्ति, (६) पदार्थाभाविनी और (७) तुरीयगा- ये **सात ज्ञान-भूमिकाएँ** हैं।

२२३ प्रश्न— **१) शुभेच्छा क्या है ?**

उत्तर— पूर्व जन्म अथवा इस जन्म में किए हुए निष्काम-कर्म और उपासना आदि से शुद्ध और एकाग्रचित्त वाले पुरुष को विवेक, वैराग्य, षट्-सम्पत्ति और मोक्ष की इच्छा-ये चारों साधन हो जाने पर, आत्मा के जानने की तीव्र इच्छा होना; यही **'शुभेच्छा'** नाम, ज्ञान की **प्रथम भूमिका** है।

२२४ प्रश्न— **२) सुविचारणा क्या है ?**

उत्तर— आत्मा के जानने की तीव्र इच्छा से विधिपूर्वक ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाकर, उनके मुख से जीव-ब्रह्म की एकता का बोध कराने वाले वेदान्त वाक्यों

Scanned with CamScanner

को श्रवण करके, उस श्रवण किए अर्थ को अपने मन में घटाने (धारण करने) के लिए अनेक युक्तियों से मनन (विचार) करना; यही 'सुविचारणा' नाम, ज्ञान की **दूसरी भूमिका** है।

२२५ प्रश्न— **३) तनुमानसा क्या है ?**

उत्तर— स्वरूप के साक्षात्कार अर्थात् अपरोक्ष अनुभव के लिए श्रवण एवम् मनन द्वारा निर्णय किए ब्रह्मात्मा की एकता-रूप अर्थ के निरन्तर चिन्तनरूप निदिध्यासन से, स्थूल-मन की अर्थात् बहिर्मुख-मन की सूक्ष्मता अर्थात् अन्तर्मुखता होना; यही **'तनुमानसा'** नाम, ज्ञान की **तीसरी भूमिका** है।

२२६ प्रश्न— **४) सत्त्वापत्ति क्या है ?**

उत्तर— श्रवण, मनन एवं निदिध्यासन द्वारा संशय और विपर्यय से रहित, स्वरूप साक्षात्कार-रूप निर्विकल्प स्थिति के हो जाने पर, तत्त्व-ज्ञानयुक्त मनरूप सत्त्व (शुद्ध अन्त:करण) की प्राप्ति होना; यही 'सत्त्वापत्ति' नाम, ज्ञान की **चतुर्थ भूमिका** है।

२२७ प्रश्न— **५) असंसक्ति क्या है ?**

उत्तर— निर्विकल्प समाधि के अभ्यास की परिपक्वता से, देह में सर्वथा अहंता-ममता गलित होकर, देहादि के प्रति सर्वथा आसक्ति का अभाव होना; यही

Scanned with CamScanner

'असंसक्ति' नाम, ज्ञान की **पंचम् भूमिका** है।

२२८ प्रश्न— **६) पदार्थाभाविनी क्या है ?**

उत्तर— अतिशय निर्विकल्प समाधि के अभ्यास से, देहादि सर्व पदार्थों की अधिष्ठान ब्रह्मरूप से प्रतीति होकर, देहादि सर्व पदार्थों का अभाव अर्थात् अप्रतीति होना; यही **'पदार्थाभाविनी'** नाम, ज्ञान की **षष्ठ भूमिका** है।

२२९ प्रश्न— **७) तुरीयगा क्या है ?**

उत्तर— ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय रूप त्रिपुटी की चतुर्थ और पञ्चम् भूमिकाओं की भाँति भावरूप से तथा षष्ठ भूमिका की भाँति अभावरूप से प्रतीति भी जहाँ नहीं होती, ऐसी स्व-पर (अपने-पराये) से उत्थान-रहित तुरीयपद में मन की स्थिति; यही **'तुरीयगा'** नाम, ज्ञान की **सप्तम् भूमिका** है।

२३० प्रश्न— **ये सात भूमिकाएँ किसके साधन हैं ?**

उत्तर— प्रथम, द्वितीय और तृतीय भूमिकाएँ, **तत्त्व-ज्ञान के साधन** हैं।

चतुर्थ[१६८] भूमिका तो, तत्त्व-ज्ञानरूप होने से, **जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति का साधन** है। और

पञ्चम् षष्ठ और सप्तम् भूमिकाएँ, **जीवन्मुक्ति के विलक्षण-आनन्द के साधन** है।

इति श्री विचार चन्द्रोदये सप्त ज्ञान-भूमिका वर्णन नामिका त्रयोदश कला समाप्तः॥१३॥

Scanned with CamScanner

१६८ १) **कृतोपासक** अर्थात् जिसने ज्ञान से पूर्व, पूर्ण उपासना करी है। और

२) **अकृतोपासक** अर्थात् जिसने ज्ञान से पूर्व, पूर्ण उपासना नहीं करी है ;

इस भेद से **चतुर्थ भूमिका-रूप ज्ञान के अधिकारी दो प्रकार के होते** हैं। उनमें-

१) कृतोपासक तो सम्यक् वैराग्यादि साधन से सम्पन्न होता है और ज्ञान के अनन्तर, अल्पाभ्यास से, तत्काल ही पञ्चम आदि भूमिका में आरूढ़ हो जाता है। और

२) अकृतोपासक में सर्व साधन स्पष्ट प्रतीत नहीं होते, किन्तु एक-दो साधन प्रकट होते हैं औरअन्य साधन गोप्य रहते हैं। इसलिए यदि बुद्धिमान् होवे तो चतुर्थ भूमिकारूप तत्त्व-ज्ञान को पाता है। परन्तु बहुत काल के अभ्यास से कदाचित् ही कोई पञ्चम् आदि भूमिका में आरूढ़ हो पाता है, (झटिति) तत्काल नहीं हो पाता।

(उक्त विषयक लेख पृष्ठ प्रथम कला से आगे परिभाषा (साधना में अधिकारियों के भेद वहाँ देखें।))

ज्ञानी के व्यवहार का विवरण :-

अन्त:करण की सविकल्प व निर्विकल्प दो अवस्थाएँ होती हैं। सविकल्प अवस्था में सविकल्प साक्षात्कार और निर्विकल्प अवस्था में निर्विकल्प साक्षात्कार होता है। ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय-रूप **त्रिपुटी की ब्रह्मरूप से प्रतीति** सहित, अद्वितीय ब्रह्म में अन्त:करण की वृत्ति की स्थिति को,

Scanned with CamScanner

सविकल्प स्थिति अर्थात् संप्रज्ञात समाधि कहते हैं। यही निदिध्यासन, **'तनुमानसा'** नामक तीसरी भूमिका है। इसमें होने वाले आत्माभिन्न ब्रह्म दर्शन को **सविकल्प साक्षात्कार** कहते हैं।

(तनुमानसा = तनु - मानसा। तनु = सूक्ष्म; मानसा = मन की वृत्ति।)

ज्ञाता, ज्ञान और ज्ञेय-रूप **त्रिपुटी के अप्रतीतिकाल** में, अद्वितीय ब्रह्म में, अन्त:करण की वृत्ति की स्थिति को **निर्विकल्प स्थिति अर्थात् असंप्रज्ञात समाधि** कहते हैं। यह अन्त:करण की निर्विकल्प स्थिति ही **सत्त्वापत्ति** है। त्रिपुटी के अप्रतीतिकाल में शुद्ध आत्मा के ब्रह्मरूप से दर्शन को **निर्विकल्प साक्षात्कार** कहते हैं। यही तत्त्वज्ञान है। व्यवहार में 'निर्विकल्प स्थिति' पद, चौथी भूमिका में रहने वाले अन्त:करण की एवं निर्विकल्प 'साक्षात्कार' पद, चौथी भूमिका में होने वाले तत्त्वज्ञान को विषय करते हैं। इन दोनों का वियोग कभी नहीं होता, साथ ही रहते हैं। निर्विकल्प स्थिति, अन्त:करण द्वारा बाह्य-भीतर सभी व्यवहारों के प्रति उपरामता से एवम् ध्यानादि की प्रधानता से होती है। यह योग-बल का फल है। चौथी से लेकर सातवीं भूमिकाओं का विवेचन इसी स्थिति में है।

Scanned with CamScanner

निर्विकल्प साक्षात्कार चौथी भूमिका से पहिले तो दृढ़ वैराग्य-पूर्वक विचार-दृष्टि की प्रधानता से होता है। चौथी भूमिका में विचार-दृष्टि स्थिर हो जाने पर, यह ज्ञान चौथी से लेकर सातवीं भूमिका पर्यन्त, एक समान ही होता है। ज्ञान की वृत्ति के भूमिकारूढ़ होने पर भी इसमें न्यूनाधिक भाव अथवा भूमिका का आरूढ़-अनारूढ़ व्यवहार नहीं होता। निर्विकल्प साक्षात्कार, ज्ञान-बल का फल है। इसमें जगत् के प्रति सतत्व, रमणीयत्व व रसत्व बुद्धि (अर्थात् अर्थाध्यास व ज्ञानाध्यास) जाग्रत में तो क्या, स्वप्न में भी नहीं होती।

(सत्त्वापत्ति = सत्त्व+आपत्ति। सत्त्व=उपरोक्त तत्त्वज्ञानयुक्त शुद्ध अन्त:करण; आपत्ति=प्राप्ति होना।)

निर्विकल्प साक्षात्काररूप तत्त्वज्ञान से ही मूलाविद्या की निवृत्ति होती है। मूलाविद्या की निवृत्ति के उपरांत प्रारब्ध-आधीन एवं व्युत्थान-संस्कार-आधीन, जब जब ज्ञानी की वृत्ति इस निर्विकल्प स्थिति से सविकल्प समाधि, ब्रह्म विचार, उपदेश, खान-पान आदि व्यवहारों में नीचे उतरती है, तब-तब उस वृत्ति द्वारा उन-उन व्यवहारों के न्यूनाधिकपने को लेकर एवम् शान्तपने को लेकर ही चौथी से लेकर सातवीं भूमिकाओं का विवेचन है। उस वृत्ति का

Scanned with CamScanner

गौरव उत्तरोत्तर उन भूमिकाओं की ओर आगे बढ़ने में ही है। अत: ज्ञानी को अतिशय प्रयास करते ही रहना चाहिये।

ज्ञानी को निर्विकल्पकाल में ब्रह्माभिन्न आत्मदर्शन, सविकल्पकाल में त्रिपुटी भान सहित ब्रह्मदर्शन, एवं व्यवहार काल के (१) विचारकाल में व्यक्ति, वस्तु आदि का ब्रह्मरूप से दर्शन तथा (२) अविचारकाल में बाधितानुवृत्ति से जगत्-दर्शन*, स्पष्टरूप से होते हैं। जगत् के प्रति सतत्व, रसत्व एवं रमणीयत्व बुद्धि से रहित व्यवहार को बाधितानुवृत्ति कहते हैं।

(बाधितानुवृत्ति = बाधित + अनु + वृत्ति। बाधित = मिथ्या निश्चय की हुई मिथ्या वस्तु के; अनु = प्रति, अनुसार, वृत्ति = व्यवहार। शब्द-प्रयोग, प्रतीति और लेना-देना आदि क्रिया- इन तीनों को 'व्यवहार' कहते हैं।)

संसारियों को चित्रपट (सिनेमा) में सतत्त्व बुद्धि का और भिष्ठा आदि में रसत्व, रमणीयत्व बुद्धि का अभाव होता है। अज्ञानी के इन दोनों व्यवहारों में विषय भी अलग-अलग, दो हैं और बुद्धि भी अलग-अलग, दो हैं। परन्तु ज्ञानी का तो प्रत्येक विषय में सतत्व, रसत्व एवं रमणीयत्व-इन तीनों से रहित एक ही बुद्धि से व्यवहार होता

* जगत्-दर्शन - देखो पृष्ठ २७७-२७८

Scanned with CamScanner

है। इसी अवस्था को सत्त्वापत्ति नामक चतुर्थ भूमिका कहते हैं। इस अवस्था में ज्ञानी का जाग्रतवत् स्पष्ट रूप से व्यवहार होता है।

बाधितानुवृत्ति का व्यवहार भी घटते-घटते पूर्व की अपेक्षा शान्त होने लगता है और अन्त में जब बाधित अहंता-ममता का भी अभाव होकर, उत्तरोत्तर सविकल्प, निर्विकल्प स्थिति वृद्धि को प्राप्त होने लगती है, तब इसी को **असंसक्ति** नामक पाँचवीं भूमिका कहते हैं। इस अवस्था में ज्ञानी का **स्वप्नवत् अस्पष्ट रूप** से व्यवहार होता है।

(असंसक्ति = अ + सं + सक्ति। अ = नहीं, सं = सम्यक् प्रकारेण; सक्ति = आसक्ति।)

उक्त दोनों अवस्थाओं में ज्ञानी का स्व (अपने) द्वारा व्यवहार होता है।

निर्विकल्प समाधि की अतिशय बाहुल्यता से, देहादि सारे प्रपञ्च की अधिष्ठान ब्रह्मरूप से प्रतीति होने से तथा सारे प्रपञ्च के अत्यान्ताभाव मात्र को विषय करने वाली वृत्ति रहने से, जब सारे प्रपञ्च का अभाव अर्थात् सर्वत्र अप्रतीति होती है, तब इस को पदार्थाभाविनी नाम छठी

Scanned with CamScanner

भूमिका कहते हैं। इसमें स्वयं से तो खान-पान आदि व्यवहार की योग्यता भी रहती नहीं; पर-पुरुष द्वारा दिया हुआ अन्न-जल, प्रवृत्ति प्रवाह के संस्काराधीन, गले के नीचे उतर जाता है। इस अवस्था में ज्ञानी का **सुषुप्तिवत् व्यवहार** होता है।

(पदार्थाभाविनी = पदार्थ + अभाविनी। पदार्थ=देहादि प्रपञ्च; अभाविनी=अभाव को विषय करने वाली।)

चौथी और पाँचवीं भूमिका में जाग्रत् और स्वप्नवत् प्रपञ्च का सद्भाव तथा छठी भूमिका में सुषुप्तिवत् प्रपञ्च का अत्यन्ताभाव अर्थात् असद्भाव-इन सब सद्-असद्भावों का त्याग होकर जब वृत्ति केवल शुद्ध ब्रह्म-विषयक होती है, तब इसको **तुरीयगा** नामक सातवीं भूमिका कहते हैं। इसी को 'योग शास्त्र' में **अद्वैत अवस्थान-रूप समाधि** कहते हैं। इस परम शान्त अवस्था में दूसरों द्वारा दिया हुआ जल तक भी गले के नीचे नहीं उतर पाता। प्राण संचालन भी बिल्कुल अल्प गति से ही होता है। सामान्य अहंकार-रूप अन्त:करण में ब्रह्मविद्या के संस्कारों द्वारा या संस्कार

Scanned with CamScanner

आरूढ़ चेतन द्वारा प्रारब्ध के अन्तकाल में लेशाविद्या की निवृत्ति होकर, विदेह मुक्ति होती है।

---

* जगत्-दर्शन-**दृष्टान्त :-**

१) व्यवहार में, स्थूल दृष्टि से, महल, अटारी आदि दर्शन होते हुए भी पारमार्थिक दृष्टि से, मिट्टी दर्शन होता है।

२) चक्षु दृष्टि से, बहन-बेटी के अङ्गों में सौन्दर्य की प्रतीति होते हुए भी भाव दृष्टि से, उनमें वासनात्मक सुख तथा रमणीयत्व बुद्धि नहीं होती; अपितु शरीरों में बहिन-बेटी का ही प्रत्यक्ष दर्शन होता है।

३) चक्षु दृष्टि से, भगवत् अर्चारूप विग्रह में पाषाण दर्शन होते हुए भी भाव दृष्टि से, चिदानन्दमय ईश्वर दर्शन होते हैं। 'चिदानन्दमय देह तुम्हारी।'

४) रसना दृष्टि से, विषाक्त मिठाई में स्वाद की प्रतीति होते हुए भी, बुद्धि दृष्टि से (विष का ज्ञान होने से), उस मिठाई को खाने की किञ्चित् भी रुचि नहीं होती; अपितु विष की ही प्रत्यक्ष अनुभूति होती है।

५) क्षुधा दृष्टि से, भोजन में रुचि होते हुए भी भाव दृष्टि से, चान्द्रायण आदि व्रतों में स्वादिष्ट और रुचिकर भोजन के प्रति भी प्रवृत्ति नहीं होती; अपितु व्रत का ही दर्शन होता है।

६) राग दृष्टि से, शृङ्गार आदि विषयों में सुख-बुद्धि होते हुए भी, माता व पत्नि का पुत्र व पति के निधनकाल में, दुःख-बुद्धि होने से, उक्त विषयों में किञ्चित् भी रुचि एवं प्रवृत्ति नहीं होती, अपितु खिन्नता ही होती है।

Scanned with CamScanner

उपरोक्त दृष्टान्तों में दोनों प्रकार के विपरीत दर्शन एक ही व्यक्ति को एक साथ होते हैं। किन्तु इन्द्रिय-प्रधान दृष्टियों एवं उनके विषयों का, भाव एवं विचार-प्रधान दृष्टिएँ बाधकर देती हैं और वे बाधित विषय व्यक्ति को प्रभावित एवं मोहित नहीं कर पाते।

ऐसे ही सिद्धान्त में, ज्ञानी को इन्द्रिय दृष्टि से जगत्-दर्शन एवं तत्त्व दृष्टि से ब्रह्म-दर्शन, ये दोनों विपरीत स्वभाव वाले दर्शन एक साथ होते हैं। किन्तु इन्द्रिय-प्रधान दृष्टि एवं उसके विषय जगत् का, तत्त्व-प्रधान दृष्टि बाध कर देती है और वह बाधित जगत् ज्ञानी को प्रभावित एवं मोहित नहीं कर पाता।

कुछ राजस-तामस वृत्तियों के लक्षण

१ राग – १) स्त्री आदिषु इष्ट साधनता बुद्धया स्नेहः।
२) पुनः पुनः विषय अनुरञ्जन इच्छा।

२ द्वेष – १) पर अनिष्ट अभिलाषः। २) वृथा निन्दा।
३) लोकानाम् उद्वेग आचरणम्।

३ काम – १) इष्ट विषय अभिलाषः। २) स्त्री प्रसङ्ग।
३) स्त्रीषु जातः मनुष्याणां स्त्रीणां च पुरुषेषु वा परस्पर कृतः स्नेह।
४) अप्राप्तः विषय प्राप्ति कारण अभावे अपि प्राप्यतां इति आकारः चित्त वृत्ति विशेषः।

४ क्रोध – १) कामित अर्थ विधाता जन्यः बुद्धि क्षोभ विशेषः।
२) इच्छा प्रतिघातात् उत्पद्यमानः ताड़न आक्रोशन आदि हेतुः।

Scanned with CamScanner

५. लोभ=१) प्राप्तेषु अपि विषयेषु अलं बुद्धि राहित्यम्। २) अति तृष्णा। ३) हस्तम् गतस्य अपि वित्तस्य बुद्धिपूर्वकम् उचित व्यय वर्जनम्। ४) परवित्त आदिकम् दृष्टा नेतुं (प्राप्तुं) यः हृदि जायते अभिलाषः द्विज श्रेष्ठ स (अभिलाषः) लोभः परकीर्तितः।

६. मोह=१) ममत्व बुद्धिः। २) चित्तवैकल्यम्। ३) अर्जितस्य द्रव्यस्य विनियोग (प्रयोग) असामर्थ्यम् ४) वस्तु तत्त्व अन्-अवधारिणी चित्तवृत्तिः। ५) हितेषु अहित बुद्धिः अहितेषु हित बुद्धिः वा।

७. मद=१) पर अन्-अभिज्ञत्वेन मनोगर्वः। २) मत् सदृशः कोऽस्ति इति हर्ष बुद्धिः। ३) विद्या आदि निमित्तात् स्वऽस्मिन्न आधिक्य बुद्धिः।

८. मत्सर=१) पर उत्कर्ष असहन पूर्वक स्व उत्कर्ष वाञ्छा। २) स्व समान संपत्ति दर्शन असहनम्। ३) पर अभिमत वारण (निवारण) इच्छा।

९. ईर्ष्या=१) पर सम्पद उत्कर्ष असहिष्णुता। २) पर द्वेषः।

१०. असूया=१) परकीय गुणेषु दोष आरोपः। २) गुणेषु दोष आविष्करणम्।

११. दम्भ=१) वेष भाषा क्रिया चातुर्य आदिभिः स्व महत्त्व प्रकटनम्। २) आडम्बरः। ३) वञ्चकता।

१२. दर्प=१) धन स्वजन विद्या निमित्तः चित्तस्य उत्सेकः (घमंड, अहंकार)। २) शौर्य आदि मदः।

१३. अहंकार=१) अहम् उत्कृष्टः इति आकारक संस्कारः। २) परेषाम् तुच्छीकरणम्।

१४. तृष्णा= १) प्राप्यमाणेषु अपि अर्थेषु अतृप्तिः। २) ईप्सित (वांछित, द्रव्य प्राप्तौ सत्याम् अपि ततः अधिक आकांक्षा। ३) इदम् मे न क्षीयताम् इति इच्छा।

Scanned with CamScanner

१५. गर्व=१) अभिमान आत्मिका चित्तवृत्तिः। २) ऐश्वर्यः रूपः तारुण्यः कुलः विद्या बलैः अपि इष्टलाभ आदिना अन्येषाम् अवज्ञा (अपमानः)।

१६. आलस्यम्=१) कृतेः (क्रिया का) अभावः।
२) चित्त जाड्यम्।

१७. आशा=१) दीर्घ आकांक्षा। २) इदं कृत्वा (कर चुका) इदं करिष्यामि इति संकल्प विकल्प प्रवाह अनुक्रमः।

१८. प्रमाद=१) प्रयत्नेन कर्त्तव्ये कार्ये विस्मृतिः।
२) कर्त्तव्ये अकर्त्तव्यत्व धिया ततः निवृत्तिः।
३) अकर्त्तव्ये कर्त्तव्यत्व धिया तत्र प्रवृत्तिः।

१९. चिन्ता=इष्ट अप्राप्ति अनिष्ट प्राप्ति हेतुको भूलेखन-अधोमुखत्व-आदिकरोमानसो विकार विशेषः।

२०. भय=१) भीतिः। २) परित्रासः। ३) परतोनिष्ट सम्भावना आगामि दुःखानुसंधान जन्यो मनसः उद्वेगः।

२१. मान=१) प्रतिष्ठा। २) चित्तसमुन्नतिः। ३) सर्वत्र अप्रणति अनम्र भावः। ४) आत्मनि पूज्यता बुद्धिः ५) पुरुषान्तरेण संपादितः सत्कारः।

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ चतुर्दश कला प्रारम्भः ॥१४॥

* जीवन्मुक्ति-विदेहमुक्ति वर्णन *

॥ तोटक छन्द ॥

जब जानत है निजरूपहिकूँ।
तब जीवन्मुक्ति समीपहि कूँ॥
भ्रमबंध निवृत्ति सदेहहिकूँ[१६९]।
सुख सम्पत्ति होवत गेहहिकूँ॥३०॥

जब ज्ञानी अपने निज-स्वरूप को (हि) दृढ़-अपरोक्ष रूप से जान लेता है, तब देहादि प्रपञ्च की बाधितानु-वृत्ति से प्रतीति होते हुए भी, उसको भ्रम-रूप बन्धन की निवृत्ति-स्वरूप जीवन्मुक्ति, प्रकाश के होते ही अन्धकार की निवृत्तिवत्, तत्काल ही होती है। देह-रूप गेह के स्वामी जीवात्मा को ही जीवन्मुक्ति-कालीन सुख-रूप सम्पत्ति की प्राप्ति होती है।

विदवान तजै इस देहहिकूँ।
तब पावत मुक्ति विदेहहिकूँ॥

---

१६९ तब शरीर सहित पुरुष को भ्रम-रूप बंध की निवृत्ति-स्वरूप जीवन्मुक्ति समीपहि कूँ अर्थात् तत्काल होती है। यह अर्थ है।

Scanned with CamScanner

तम लेश भजे सद नाशहिकूँ।
तज देत प्रपञ्च अभासहिकूँ॥३१॥

ज्ञानी प्रारब्धान्त में जब ही इस देह को त्यागता है, तब ही विदेहमुक्ति को प्राप्त होता है। प्रारब्ध की हेतु लेशाविद्या शीघ्र ही नाश को प्राप्त हो जाती है और ज्ञानी आभास-रूप इस प्रपञ्च को भी त्याग देता है॥३१॥

सरिता[१७०] इव सागर देशहिकूँ।
चिनमात्र मिलाय विशेषहिकूँ[१७१]॥
चिद होय भजे अवशेषहिकूँ।
नहि जन्म पीताम्बर शेषहिकूँ॥३२॥

जैसे सरिता बहती हुई समुद्र में जाकर मिलती है, तब अपने विशेष नाम-रूप को पूर्णतया त्यागकर एक समुद्र-रूप हो जाती है। वैसे ही विशेष-चैतन्य (चिदाभास) अपने सहित, स्थूल-सूक्ष्म-कारण प्रपञ्च का बाध करता हुआ अर्थात् तीनों प्रपञ्चों को मूलाविद्या में और अपने आपको शुद्ध साक्षी-स्वरूप में मिलाता हुआ, अपने ही शुद्ध, साक्षी, चिन्मात्र-स्वरूप में स्थित होकर, मूलाविद्या के अधिष्ठान-

---

१७० सागर देशहि कूँ सरिता इव अर्थात् नदी की भाँति।
१७१ स्थूल-सूक्ष्म प्रपञ्च सहित चिदाभास रूप विक्षेप को।

Scanned with CamScanner

रूप, शेष बचे हुए ब्रह्म को ही प्राप्त होता है। पीताम्बर जी कहते हैं कि शेष बचे हुए इस ब्रह्म का, फिर कभी भी जन्म नहीं होता॥३२॥

२३१ प्रश्न— **जीवन्मुक्ति क्या है ?**

उत्तर— देहादि प्रपञ्च की प्रतीति के होते, जो ब्रह्म-स्वरूप से स्थिति है, सो जीवन्मुक्ति है।

२३२ प्रश्न— **जीवन्मुक्ति में प्रपञ्च की प्रतीति क्यों होती है ?**

उत्तर— आवरण और विक्षेप-ये दो अविद्या की शक्तियाँ हैं।

उनमें— १) आवरण शक्ति का ज्ञान से नाश होता है, इसलिए ज्ञानी का अन्य दूसरा जन्म नहीं होता। परन्तु २) प्रारब्ध के बल से, दग्ध (सिके हुए) धान्य-कण की भाँति, विक्षेप शक्ति (अविद्या-लेश=लेशाविद्या) रहती है।

इसलिए **जीवन्मुक्ति में प्रपञ्च की प्रतीति होती है ।**

२३३ प्रश्न— **जीवन्मुक्ति में प्रपञ्च की प्रतीति कैसे होती है ?**

उत्तर— १) रज्जु के ज्ञान से सर्प-भ्राँति के मिट जाने पर भी, कम्पादि कुछ काल तक बने

Scanned with CamScanner

रहते हैं एवं भासते भी है।

२) दर्पण में प्रतिबिम्ब के अभाव के ज्ञानी को भी, प्रतिबिम्ब भासता है। और

३) मरुस्थल में जल के अभाव के ज्ञानी को भी, मृगजल भासता है।

ऐसे ही तत्त्वज्ञानी को भी, जीवन्मुक्ति दशा में बाधित हुए प्रपञ्च की प्रतीति होती है।

(इस प्रकरण में तेरहवीं कला के अन्त में 'जगत् दर्शन' टिप्पणी भी देखें।)

२३४ प्रश्न— **बाधित हुए प्रपञ्च की प्रतीति में अन्य दृष्टान्त क्या है ?**

उत्तर— दृष्टान्त : महाभारत के युद्ध में द्रोणाचार्य की मृत्यु के पश्चात्, अश्वत्थामा आदि के साथ युद्ध हुआ। उसमें सत्य-सङ्कल्प श्रीकृष्ण परमात्मा ने यह सङ्कल्प किया, "इस युद्ध की समाप्ति-पर्यन्त, ये रथ और घोड़े ज्यों के त्यों बने रहें।" यह चिन्तन करके युद्ध-भूमि में आए। वहाँ अश्वत्थामा आदि ने ब्रह्मास्त्र (अग्नि-अस्त्र) आदि बहुत से अस्त्र प्रयोग किए, जिससे अर्जुन के रथ और घोड़े उसी क्षण भस्म हो गए। फिर भी श्रीकृष्ण, परमात्मा-रूप सारथि, के सङ्कल्प के बल से वे ज्यों के त्यों बने रहे। जब युद्ध

Scanned with CamScanner

समाप्त हुआ, तब श्रीकृष्ण के रथ से उतरते ही, भस्मी के ढेर हो गए।

सिद्धान्त : ऐसे ही (१) स्थूलदेह-रूप रथ है। (२) उसके पुण्य-पाप-रूप **दो चक्र** (पहिये) हैं। (३) तीन-गुण-रूप **ध्वज** है। (४) पाँच-प्राण-रूप बन्धन हैं। (५) दस-इन्द्रिय-रूप घोड़े है। (६) शुभ-अशुभ शब्दादि-पाँच-विषय रूप **मार्ग** हैं। (७) मन-रूप **लगाम** है। (८) बुद्धि-रूप **सारथि** (श्रीकृष्ण) है।

(९) प्रारब्ध-कर्मरूप उसका सङ्कल्प है।

(१०) अहंकार-रूप बैठने का **स्थान** है।

(११) आत्मा-रूप रथी (अर्जुन) है। और

(१२) वैराग्यादि साधन-रूप **शस्त्र** हैं।

जिज्ञासु ऐसे स्थूलदेह-रूप रथ पर आरूढ़ होकर सत्सङ्ग-रूप **रण-भूमि** में जाता है। उसको गुरु-रूप **अश्वत्थामा** आदि महावाक्य का उपदेश-रूप **ब्रह्मास्त्र** आदि मारते हैं, उससे ज्ञान-रूप **अग्नि** उदय (प्रकट) होकर, उसी क्षण (तत्काल) देहादि प्रपञ्चरूप रथादि सर्व का बाध हो जाता है। परन्तु फिर भी श्रीकृष्णरूप सारथि-स्थानी बुद्धि के प्रारब्ध कर्म-रूप सङ्कल्प के बल से, देहादि का नाश नहीं

Scanned with CamScanner

होता; अपितु पीछे[१७२] भी देहादि की प्रतीति होती है। इसी को **बाधितानुवृत्ति**[१७३] कहते हैं।

बाधित हुए प्रपञ्च की प्रतीति में यह दृष्टान्त है।

२३५ प्रश्न— **विदेह-मुक्ति क्या है ?**

उत्तर— प्रपञ्च की प्रतीति रहित, ब्रह्म-स्वरूप से स्थिति; अर्थात् प्रारब्ध कर्म के भोग से नाश होने के पश्चात् स्थूल-सूक्ष्म शरीर के आकार से परिणाम को प्राप्त हुए अज्ञान का चेतन के सन्मुख महामाया में विलय; यही **विदेह-मुक्ति** है।

---

१७२ जिसका नाश होता है, वह नाश का **प्रतियोगी** है।
(१) **नाश** (घड़े के नाश, के उपरान्त भी उस प्रतियोगी (घड़े) की प्रतीति, ठीकरियों में होती है। और
(२) **बाध** (कल्पित सर्प के बाध) के उपरान्त उस प्रतियोगी (कल्पित सर्प) की प्रतीति नहीं होती, किन्तु तीन काल में उसका अभाव, प्रतीत होता है।
(बाध=दृढ़ अपरोक्ष मिथ्यात्व निश्चय:। त्रिषुकालेषु अत्यन्ताभाव निश्चय:।)
यह **नाश और बाध का भेद** है।

१७३ जैसे कुलाल का चक्र, दंड से फेरने के प्रयत्न के छोड़ने के पश्चात् भी, वेग के बल से फिरता है; वैसे ही बाध हुए पीछे भी, प्रारब्धकर्म से देहादि प्रपंच की जो प्रतीति होती है, वही **बाधितानुवृत्ति** कहलाती है।

Scanned with CamScanner

२३६ प्रश्न— **प्रारब्ध के अन्त होने पर कार्य सहित अज्ञान-लेश का विलय किस साधन से होता है ?**

उत्तर— प्रारब्ध के अन्त हुए अर्थात् मरणावस्था काल में अधिक या न्यून मूर्च्छाकाल हो जाता है। उसमें यद्यपि ब्रह्माकार वृत्ति का होना असम्भव है और विद्वान् के लिए तो शास्त्रविधि भी नहीं है, तथापि सुषुप्ति की भाँति, उस मूर्च्छाकाल में भी ब्रह्म-विद्या के संस्कार बने ही रहते हैं। उन संस्कारों में आरूढ़ चेतन से कार्य सहित अज्ञान-लेश का विलय (नाश) हो जाता है। काष्ठ-आरूढ़ अग्नि से तृणादि का दाह होकर, स्वयं काष्ठ के दाह की भाँति, उन संस्कारों में आरूढ़ चेतनसे प्रपंच का विनाश होकर आप (ज्ञान के संस्कारों) का भी विनाश हो जाता है। तत्पश्चात् असंग, शुद्ध सच्चिदानन्द, स्व-प्रकाश, स्वयं अपना-आप ब्रह्म अवशेष रहता है।,

इति श्री विचार चन्द्रोदये जीन्मुक्ति-विदेहमुक्ति वर्णन नामिका चतुर्दश कला समाप्त:॥१४॥

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः ॥

॥ अथ पंचदश कला प्रारम्भः ॥१५॥

❊ वेदान्त प्रमेय (पदार्थ)[१७४] वर्णन ❊

॥ ललित छन्द (गोपिका गीतवत्)॥

जन तु जानिले[१७५] ज्ञेय अर्थकूँ।
सकल छेद सं-दे अनर्थकूँ॥
मुगति कौन है हेतु ताहिको।
जनक[१७६] बीचको कौन वाहिको॥३३॥

(जन तु) हे जिज्ञासु ! तूँ वेदान्त के प्रमेय-रूप पदार्थों अर्थात् आत्मा व ब्रह्म को एवम् उनकी अभिन्नता को जान

---

१७४ (१) वेदान्त शास्त्र-रूप प्रमाण से जन्य जो यथार्थ ज्ञान है सो **प्रमा** है।
(२) उस प्रमा से जानने योग्य जो पदार्थ हैं, सो प्रमेय हैं। उसका यहाँ कथन है। इसलिये इस (पंचदश) कला के विचार से प्रमेयगत संशय की निवृत्ति होती है।
प्रमेयगत संशय का कथन पंडित पीताम्बरजी रचित बाल बोधिनी टीका सहित बाल-बोध नामक ग्रन्थ के नवम उपदेश में किया है, वहाँ देख लेना चाहिये।

१७५ वेदान्त के प्रमेय रूप पदार्थों को जान ले।

१७६ वाहिको (मोक्ष को और उसके हेतु ज्ञान को) बीच को जनक (अवांतर अर्थात् परंपरा साधन) कौनसे है ?

Scanned with CamScanner

ले और अनर्थस्वरूप सारे सन्देहों का छेदन कर दे। मोक्ष क्या है ? (ताहिको) उस मोक्ष का साक्षात् साधन क्या है ? (वाहिको) ज्ञान द्वारा होनेवाले उस मोक्ष के (बीच को जनक) अवांतर (परम्परा) साधन कौनसे हैं ?

विषय बोधको कौन जानिले।
प्रतक ईशको तत्त्व मानिले॥
अहम्[१७७] अर्थकूँ खूब सोजिले।
'तत' पदार्थकूँ शुद्ध खोजिले॥३४॥

वेदान्त विचारादि-जन्य बोध का विषय क्या है, इसको जान ले। प्रत्यगात्मा (अन्तरात्मा=जीवात्मा) और ईश्वर के तात्त्विक स्वरूपों का मनन कर ले। 'अहं' '(त्वं)' पद और 'तत्' पद के अर्थों को विधि-पूर्वक शोधन कर, दोनों पदों के लक्ष्य अर्थों को खोज ले (भली प्रकार जान ले)।

परमआतमा[१७८] एक मानिले।
तहँ सदाहि ऐश्वर्य आनिले॥

---

१७७ अहं (त्वं) पद के अर्थ को।
१७८ ब्रह्म।

Scanned with CamScanner

सत चिदात्म सो सर्वदा[१७९] अहै।
इस पीताम्बरो ज्ञानकूँ गहै॥३५॥

परम (ब्रह्म) और आत्मा (अन्तरात्मा) दोनों को एक मान कर, उस एकता में सच्चिदादि-रूप ऐश्वर्य सदा ही विद्यमान हैं, ऐसा दृढ़ निश्चय कर ले।

सच्चिदानन्द स्वरूप ब्रह्म और आत्मा की यह एकता, स्वरूप से सर्वदा तीनों कालों में है। पीताम्बर जी कहते हैं कि हे जिज्ञासु ! तूँ इस ज्ञान को ग्रहण कर ले।

२३७ प्रश्न— **मोक्ष का स्वरूप क्या है ?**

उत्तर— (१) कार्य सहित अज्ञानरूप अनर्थ की अर्थात् बंध की निवृत्ति और (२) परमानन्द-रूप ब्रह्म की प्राप्ति।

यह **मोक्ष का स्वरूप** है।

२३८ प्रश्न— **उस मोक्ष का साक्षात् साधन क्या है ?**

उत्तर— ब्रह्म और आत्मा की एकता का अपरोक्ष ज्ञान, **मोक्ष का साक्षात् साधन** है।

२३९ प्रश्न— **ज्ञान द्वारा होने वाले मोक्ष के अवान्तर साधन क्या हैं ?**

उत्तर— निष्काम कर्म और उपासना आदि **मोक्ष के अनेक अवांतर साधन** हैं।

---

१७९ सच्चिदानन्द स्वरूप सो (ब्रह्म और आत्मा की एकता) सर्वदा (तीनों कालों में) है।

Scanned with CamScanner

२४० प्रश्न— **उस ज्ञान का विषय क्या है ?**

उत्तर— आत्मा और ब्रह्म की एकता, **ज्ञान का विषय** है।

२४१ प्रश्न— **आत्मा का स्वरूप क्या है ?**

उत्तर— (१) देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि अज्ञान और शून्य-इन सभी से भिन्न, (२) अकर्त्ता, (३) अभोक्ता, (४) असंग, (५) व्यापक और (६) चेतन।

यह **आत्मा का स्वरूप** है।

२४२ प्रश्न— **ब्रह्म का स्वरूप क्या है ?**

उत्तर— (१) निष्प्रपंच, (२) असंग, (३) परिपूर्ण और (४) चेतन।

यह **ब्रह्म का स्वरूप** है।

२४३ प्रश्न— **ब्रह्म और आत्मा की एकता कैसी है ?**

उत्तर— (१) सच्चिदानन्द, (२) ऐश्वर्य स्वरूप और (३) सदा विद्यमान।

यह **ब्रह्म और आत्मा की एकता** है।

२४४ प्रश्न— **ज्ञान का स्वरूप क्या है ?**

उत्तर— जीव और ब्रह्म के अभेद का निश्चय, **ज्ञान का स्वरूप** है।

२४५ प्रश्न— **ज्ञान का साक्षात् अन्तरंग (समीप का) साधन क्या है ?**

उत्तर— ब्रह्मनिष्ठ गुरु के मुख से महावाक्य के अर्थ का श्रवण, **ज्ञान का साक्षात् अन्तरंग साधन** है।

Scanned with CamScanner

२४६ प्रश्न— **ज्ञान के परम्परा अन्तरंग साधन कौनसे है ?**

उत्तर— (१) विवेक, (२) वैराग्य, (३) षट् संपत्ति (शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा और समाधान); (४) मुमुक्षुता, (५) 'तत्' पद और 'त्वं' पद के अर्थ का शोधन, (६) श्रवण, (७) मनन और (८) निदिध्यासन।

ये आठ, **ज्ञान के परम्परा से अन्तरंग साधन** हैं।

२४७ प्रश्न— **ज्ञान के बहिरंग (दूर के) साधन कौनसे हैं ?**

उत्तर— निष्काम कर्म, निष्काम उपासना आदि **ज्ञान के बहिरंग साधन** है।

२४८ प्रश्न— **ज्ञान के सर्व मिलकर कितने साधन हैं ?**

उत्तर— ज्ञान के उपरोक्त आठ अन्तरंग एवम् दो बहिरंग, सर्व मिलकर **दश** अथवा कुछ अधिक **साधन** हैं।

(गीता अध्याय ४ के श्लोक २४ में व्यापक बुद्धिरूप यज्ञ एवं श्लोक २८ से ३० में १२ यज्ञों का वर्णन देखें। तथा इसी ग्रन्थ में पदार्थ एकादश-विध भी देखें।)

इति श्री विचार चन्द्रोदये वेदांत प्रमेय निरूपण नामिका पंचदश कला समाप्तः ॥१५॥

Scanned with CamScanner

॥ ॐ गुरु परमात्मने नमः॥

॥ अथ षोडश कला प्रारम्भः॥१६॥

* षोडश कला वर्णन *

॥ ललित छन्द ॥

निष्कलं निजं वेदहिं वदे।
षटदशं कला ब्रह्ममें नदे॥
निरवयेव जो निष्कलंक सो।
इकरसं सदा अंगता न सो॥३६॥

(जो) जो सत्ता-स्वरूप सामान्य ब्रह्म है, (सो) उसी ब्रह्म को, (वेदहीं) प्रश्नोपनिषद् आदि, (निजं) निज आत्म-स्वरूप शुद्ध ब्रह्म, (निष्कलं) कला रहित एवं कलना अर्थात् स्फुरण रहित, (निरवयेव) अवयव रहित, (निष्कलंक) कलंक रहित, निर्दोष, (सदा इकरस) आदि-अन्त रहित, सदा एक रस, (अंगता न) अंगपने से या सावयवता से रहित अर्थात् पूर्ण (वदे) वर्णन करते हैं।

(सो) उसी ब्रह्म में , माया का सम्बन्ध आरोपण कर, वे ही वेद, (ब्रह्म में) इस माया-विशिष्ट ब्रह्म में (षटदशं कला नदे) निम्नलिखित सोलह कलाएँ नदते हैं या कथन करते हैं॥१६॥

हिरण्यगर्भ और श्रद्धया नभो।
पवन तेज कं भूमि इन्द्रिभो॥
मन अनाज औ शक्ति[१८०] सत्तपो।
करम लोक नामा मनूजपो[१८१]॥३७॥

Scanned with CamScanner

(१) हिरण्यगर्भ=समष्टि प्राण (ब्रह्मा) औ=और (२) श्रद्धया=श्रद्धा, आस्तिकता, आस्था, (३) नभो=आकाश, (४) पवन=वायु, (५) तेज=अग्नि, पावक, (६) कं=जल (७) भूमि=पृथ्वी, (८) इन्द्रिभो=इन्द्रियों का समुदाय, (९) मन= अन्त:करण, (१०) अनाज=अन्न, (११) शक्ति=वीर्य, बल, सामर्थ्य, (१२) सत्तपो=असत्-भाव-रहित अर्थात् पाखण्ड रहित कायिक, वाचिक एवं मानसिक तप, (१३) करम=वैदिक-लौकिक कर्म, (१४) लोक = इहलोक-परलोक, (१५) नामा = राम-कृष्ण आदि नाम एवम् ॐ नाम औ=और (१६) मनूजपो=मंत्र का जाप॥३७॥

षटदशं कला एहि जानिले।
जड़उपाधि को धर्म मानिले॥
अनुगताश्रयो पुष्पसूत्रवत्।
निज चिदात्म पीताम्बरो हि सत् ॥३८॥

ये ही सोलह कलाएँ हैं,ऐसा जान लो। ये सोलह कलाएँ, ब्रह्म की उपाधि जड़-माया के ही धर्म हैं, ऐसा मान लो। पीताम्बर जी कहते हैं कि पुष्पों (पुष्पमाला) में सूत्र की भाँति, इन सब में अनुगत (व्यापक रूप से ओत-प्रोत) और इन सबका आश्रय (अधिष्ठान) निज चिदात्म स्वरूप ब्रह्म ही सत्य है॥३८॥

इति श्री विचार चन्द्रोदये षोडश: कला वर्णन नामिका षोडश कला समाप्त:॥१६॥

१८० बल। १८१ मन्त्र का जाप।

Scanned with CamScanner

वेदान्त पदार्थ संज्ञा वर्णन

अथवा

लघु वेदान्त कोष

॥ पदार्थ द्विविध ॥२॥

१ अध्यात्म ताप-आत्मा को आश्रय कर वर्तमान स्थूल-सूक्ष्म शरीर अध्यात्म हैं और तद्गत अर्थात् उनमें होने वाले ताप (दुःख) अध्यात्म ताप हैं।

१) आधिताप-मानसिक २) व्याधिताप-शारीरिक।

२ अध्यास-भ्रांति ज्ञान का विषय और भ्रांति-ज्ञान।

१) अर्थाध्यास-भ्रांति का विषय सर्प, देहादि प्रपञ्च।

२) ज्ञानाध्यास-भ्रांति-ज्ञान (सर्प, देहादि प्रपञ्च का ज्ञान)

३ असम्भावना-असम्भव का ज्ञान।

१) प्रमाणगत-प्रमाण (वेद) गत असम्भव का ज्ञान।

२) प्रमेयगत-प्रमेय (प्रमाण के विषय, मोक्ष आदि) गत असम्भव का ज्ञान।

४ अहंकार-अहमिति प्रत्यय।

क) १) शुद्ध-स्वरूप का, २) अशुद्ध-देहादि अनात्मा का।

ख) १) सामान्य-देहादि धर्म के उद्देश्य से रहित केवल 'अहँ (मैं)', ऐसा स्फुरण।

२) विशेष- देहादि धर्म (नाम-जाति आदि) का उद्देश्य करके 'अहँ (मैं)', ऐसा स्फुरण।

ग) १) मुख्य-देहादियुक्त चिदाभास और कूटस्थ (साक्षी) का एकीकरण करके मूढ़ता से सारे सङ्घात में 'अहँ' शब्द को जोड़कर 'अहँ (मैं)', ऐसा स्फुरण (शक्तिवृत्ति से

Scanned with CamScanner

जानने योग्य 'अहँ' शब्द के अर्थ को विषय करनेवाला), मुख्य अहंकार है।

२) अमुख्य-विवेक से (क) व्यवहारकाल में केवल देहादियुक्त चिदाभास में और (ख) परमार्थ दशा में केवल कूटस्थ में, 'अहँ शब्द को जोड़कर 'अहँ (मैं)', ऐसा दो भाँति का स्फुरण (लक्षणावृत्ति से जानने योग्य 'अहँ' शब्द के अर्थ को विषय करनेवाला, अमुख्य अहंकार है।)

४ अज्ञान-

क) १) समष्टि- वन, जाति या जलाशय (तड़ाग) की भाँति एक बुद्धि का विषय।

२) व्यष्टि- वृक्षों, व्यक्तियों या जल-बिन्दुओं की भाँति अनेक बुद्धियों का विषय।

ख) १) मूलाज्ञान- शुद्ध चेतन का आच्छादक अज्ञान।

२) तूलाज्ञान- घटादि-अवछिन्न चेतनका आच्छादक (ढाँपनेवाला) अज्ञान।

६ अज्ञान की शक्ति-अज्ञान का सामर्थ्य।

१) आवरण-अधिष्ठान का आच्छादक, अज्ञान की शक्ति

२) विक्षेप-प्रपञ्च और उसके ज्ञान-रूप विक्षेप का जनक, अज्ञान का सामर्थ्य

७. उपासना-

१) सगुण-कारण-ब्रह्म (ईश्वर) और कार्य-ब्रह्म (हिरण्यगर्भ आदि) की उपासना।

२) निर्गुण-शुद्ध ब्रह्म की उपासना।

८. गन्ध- १)सुगन्ध। २) दुर्गन्ध।

९. जाति-अनेक धर्मियों (आश्रयों) में अनुगत एक धर्म।

Scanned with CamScanner

१) पर-'घट है' ऐसे सर्वत्र अनुगत सत्ता को, न्याय मत में पर श्रेष्ठ जाति कहते हैं।

२) अपर- सत्ता से भिन्न घटत्व आदि जाति को, न्याय में अपर (अश्रेष्ठ) जाति कहते हैं। अपर जाति के निम्न दो भेद हैं-

क) व्याप्य-व्यापक जाति के अन्तर्गत न्यून देशवर्ती जाति, व्याप्य जाति है। जैसे मनुष्य जाति के अन्तर्गत (एक देशगत) ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि व्याप्य जातियाँ है।

ख) व्यापक-व्याप्य जाति से अधिक देश में स्थित जाति, व्यापक जाति है। जैसे ब्राह्मण आदि व्याप्य जाति से अधिक देश में स्थित मनुष्य जाति, व्यापक जाति है।

१०. निग्रह-

१) क्रम- यम-नियम आदि अष्ट-योग के अङ्गों द्वारा क्रम से चित्त का निरोध, क्रम निग्रह है

२) हठ- प्राण-निरोध-रूप हठ से या सांभवी आदि मुद्राओं में से किसी मुद्रा के अभ्यास से चित्त-निरोध, हठ निग्रह है।

११. नि:श्रेयस (मोक्ष)- १) अनर्थ निवृत्ति २) परमानन्द प्राप्ति।

१२. परमहंस संन्यास-

१) विविदिषा-जिज्ञासा से ज्ञान प्राप्ति अर्थ किया संन्यास।

२) विद्वत्- ज्ञान के अनन्तर वासना-क्षय, मनोनाश और ज्ञानाभ्यास से जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्दार्थ संन्यास।

१३. प्रपञ्च- १) बाह्य। २) आंतर।

१४. प्रज्ञा- १) स्थित। २) अस्थित॥

१५. लक्षण-

१) स्वरूप- सदा विद्यमान हुआ व्यावर्त्तक लक्षण।

३) तटस्थ- कदाचित् हुआ व्यावर्त्तक लक्षण।

Scanned with CamScanner

१६. वाक्य- १) अवान्तरवाक्य। २) महावाक्य।
१७. वाद- १) प्रतिबिम्बवाद। २) अवच्छेदवाद।
१८. विपरीत भावना- १) प्रमाणगत। २) प्रमेयगत।
१९. शब्द- १) वर्ण-रूप। २) ध्वनि-रूप।
२०. शब्द सङ्गति- १) शक्तिवृत्ति। २) लक्षणावृत्ति।
२१ सम्पत्ति- १) दैवी। २) आसुरी।
२२. संशय- १) प्रमाणगत। २) प्रमेयगत।
२३. समाधि- १) सविकल्प। २) निर्विकल्प।
२४. सूक्ष्म शरीर- १) समष्टि। २) व्यष्टि।
२५. स्थूल शरीर- १) समष्टि। २) व्यष्टि।

॥ पदार्थ त्रिविध ॥३॥

१. अध्यात्मादि- १) इन्द्रियाँ (अध्यात्म)।
२) देवता (अधिदैव)। ३) विषय अधिभूत।
२. अन्त:करण दोष- १) मल-जन्म-जन्मान्तरों के पाप।
२) विक्षेप- चित्त की चञ्चलता।
३) आवरण- स्वरूप का अज्ञान।
३. अर्थवाद- निन्दा या स्तुति का बोधक वाक्य।

१) अनुवाद- अन्य प्रमाण करके सिद्ध-अर्थ का बोधक वाक्य; जैसे अग्नि हिम का भेषज है', यह वाक्य है।

२) गुणवाद- अन्य प्रमाण-विरूद्ध विधेय-अर्थ का गुण द्वारा स्तावक वाक्य; जैसे प्रकाश-रूप गुण की समता से स्तावक 'यूप (यज्ञ का खम्भ) आदित्य है', यह वाक्य है।

३) भूतार्थवाद- स्वार्थ में प्रमाण हुआ लक्षणा से विधेयार्थ की

Scanned with CamScanner

श्लाघा (प्रशंसा) का बोधक वाक्य; जैसे वज्रहस्त पुरन्दर', यह वाक्य है।

४. अवधि- सीमा। हद्द।

१) बोधक की २) वैराग्य की ३) उपराम (चित्त-निरोध-रूप उपरति अर्थात् उपशम) की अवधि।

५. अवस्था- तीनों देहों के व्यवहार के काल।

१) जाग्रत्। २) स्वप्न। ३) सुषुप्ति

६. आत्मा- १) ज्ञानात्मा (बुद्धि)। २) महानात्मा (महत्तत्व)।

३) शान्तात्मा (शुद्ध ब्रह्म)।

७. आत्मा के भेद- १) मिथ्यात्मा (स्थूल-सूक्ष्म सङ्घात)।

२) गौणात्मा (पुत्र)। ३) मुख्यात्मा। (साक्षी, कूटस्थ)।

८. आनन्द- १) ब्रह्मानन्द- (क) समाधि में आविर्भूत अनावृत्त आनन्द, (ख) सुषुप्तिगत बिंबभूत आवृत आनंद।

२) विषयानन्द- जाग्रत-स्वप्न में विषय की प्राप्ति-रूप निमित्त से एकाग्र हुए चित्त में क्षणिक प्रतिबिम्बित आत्म-स्वरूप-भूत आनन्द; यही लेशानन्द और मात्रानन्द है।

३) वासनानन्द- सुषुप्ति से उत्थानआदि उदासीन दशाओं में अनुभूत आनन्द।

९. आन्धयादि- अन्धत्व आदि नेत्र के धर्म। यहाँ आन्ध्य (अन्धता) बधिरता, मूकता आदि अन्य इन्द्रियों के धर्मों का भी सूचक है। मान्द्य और पटुत्व तो सर्व इन्द्रियों में तुल्य जानना।

१) आन्ध्य- सर्वथा अग्रहण २) मान्द्य- स्वल्प ग्रहण

३) पटुत्व- स्पष्ट ग्रहण।

१०. उद्देशादि- १) उद्देश- नाम का कीर्तन, (नाम-कथन)।

२) लक्षण- असाधारण धर्म (एक में वर्तने वाला धर्म)।

३) परीक्षा- पदकृति (अति-व्याप्ति आदि दोष-विचार)

Scanned with CamScanner

११. एषणा- इच्छा अथवा वासना। १) पुत्रैषणा।
२) वित्तैषणा। ३) लोकैषणा- सर्व लोक मेरी स्तुति करें, कोई भी मेरी निन्दा न करे। ऐसी इच्छा या परलोकेच्छा।
१२. कारण- कर्म के साधन १) मन। २) वाणी ३) काया।
१३. कर्त्तव्यादि- १) कर्त्तव्य- करने योग्य ज्ञान के साधन।
२) ज्ञातव्य- जानने योग्य ज्ञानका विषय (ब्रह्म और आत्मा का एकत्व)।
३) प्राप्तव्य- प्राप्त करने योग्य ज्ञान का फल, मोक्ष।
१४. कर्म- अ) १) पुण्य। २) पाप। ३) मिश्र।
आ) १) सञ्चित- जन्मान्तरों में सञ्चय किए कर्म।
२) आगामि- वर्तमान जन्म में क्रियमाण कर्म।
३) प्रारब्ध- वर्तमान जन्म का आरम्भक कर्म।
१५. कर्मादि- १) कर्म- वेद-विहित कर्म। २) विकर्म- वेद से विरुद्ध कर्म ३) अकर्म- खाँसना आदि सहज कर्म। श्री विनोबा भावे के अनुसार-
१) कर्म- स्वधर्माचरण-रूप कर्म।
२) विकर्म- मन लगाकर किया विशेष कर्म।
३) अकर्म- सहज, स्वभाविक कर्म; श्वास लेना आदि।
१६. कारणवाद-
१) आरम्भवाद- जैसे पितामह आदि निर्मित पुराने गृह जब गिर जाते हैं, तब उनकी ईंटों आदि सामग्री से फिर नवीन ग्रह का आरम्भ होता है। वैसे ही कार्य-रूप पृथ्वी आदि नाश के बाद उनके कारण परमाणु ज्यों के त्यों रहते हैं; उनसे फिर अन्य पृथ्वी आदि का आरम्भ होता है। ऐसे न्यायमत में 'आरम्भवाद' माना है। इसमें कार्य और कारण का भेद रहता है।

Scanned with CamScanner

२) परिणामवाद- जैसे दुग्ध का परिणाम (रूपान्तर) दधि होता है। वैसे ही सांख्यमत में प्रकृति का परिणाम जगत् है और उपासकों के मत में ब्रह्म का परिणाम जगत् और जीव हैं। ऐसे उन्होंने 'परिणामवाद' माना है। इसमें कार्य और कारण का अभेद रहता है।

३) विवर्तवाद- जैसे निर्विकार रज्जु में, रज्जुरूप अधिष्ठान से विषम-सत्ता वाला, अन्यथा-स्वरूप सर्प होता है, सो रज्जु का विवर्त (कल्पित कार्य) है। वैसे ही निर्विकार ब्रह्म में अधिष्ठान ब्रह्म से विषम सत्ता वाला अन्यथा-स्वरूप जगत् होता है, सो ब्रह्म का विवर्त (कल्पित कार्य है। ऐसे वेदान्त में 'विवर्तवाद' माना है। इसमें तो कार्य और कारण का बाधकृत अभेद है।

१७. काल- १) भूत। २) भविष्यत्। ३) वर्तमान।

१८. जाग्रत्- १) जाग्रत-जाग्रत्-वर्तमान जाग्रत् में स्वरूप का साक्षात्कार होना।

२) जाग्रत-स्वप्न- जाग्रत में भूत या भविष्य अर्थ का चिन्तन-रूप मनोराज्य होना।

३) जाग्रत्-सुषुप्ति-जाग्रत में भ्रमसे वृत्ति का जड़ हो जाना।

१९. जीव- अ) १) पारमार्थिक-साक्षी (कूटस्थ) चेतन।

२) व्यावहारिक- अन्त:करणस्थ चिदाभासरूप जीव।

३) प्रातिभासिक- अन्त:करणस्थ चिदाभासरूप व्यावहारिक जीव में स्वप्नकालिक अध्यस्त जीव।

आ १) विश्व- जाग्रत् में तीनों देहों का अभिमानी जीव।

२) तैजस- स्वप्न में स्थूलदेह के अभिमान को छोड़कर, सूक्ष्म और कारण इन दो देहों का अभिमानी, वही जीव।

३) प्राज्ञ- सुषुप्ति में स्थूल-सूक्ष्म देह के अभिमानको छोड़कर, केवल कारण देह का अभिमानी, वही जीव।

Scanned with CamScanner

२०. ताप- दुःख।

१) अध्यात्म-स्थूल-सूक्ष्म शरीर में आधि-व्याधि-रूप दुःख।

२) अधिदैव- देवताओंकृत शीत, उष्ण, अतिवृष्टि, अनावृष्टि, विद्युत्पात, भूकम्पादि दुःख और

३) अधिभूत- स्व-शरीर से भिन्न, चक्षु गोचर प्राणि (चोर, व्याघ्र, शत्रु आदि) से होने वाला दुःख।

२१. नादादि- १) नाद- क) ॐकार, ख) शब्दगुण

ग) परा- आदि चार प्रकार की वाणी।

२) बिन्दु-ॐकार का अलक्ष्यअर्थ-रूप तुरीय पद।

३) कला-ॐकार की अकारादि मात्रा परावाणी-रूप अङ्क (शब्द का अवयव)।

२२. निवृत्ति- तादात्म्य की निवृत्ति।

१) भ्रमज- ज्ञान से भ्रांति अविवेक का नाश होकर, भ्रमज-तादात्म्य की स्वतः ही निवृत्ति होती है।

२) सहज- सहज-तादात्म्य का, ज्ञान से तो बाध और ज्ञानी के देहपात के अनन्तर, नाश होता है।

३) कर्मज- कर्मज-तादात्म्य, प्रारब्ध भोग के अन्त हुए, ज्ञानी का निवृत्त होता है।

२३. पापकर्म- १) उत्कृष्ट। २) मध्यम। ३) सामान्य।

२४. पुण्यकर्म- १) उत्कृष्ट। २) मध्यम। ३) सामान्य।

२५. प्रपञ्च- १) स्थूल। २) सूक्ष्म। ३) कारण।

२६. प्राणायाम- १) पूरक। २) कुम्भक। ३) रेचक।

२७. प्रारब्ध- १) इच्छा। २) अनिच्छा। ३) परेच्छा।

२८. ब्रह्म- १) विराट। २) हिरण्यगर्भ। ३) ईश्वर।

२९. मिश्रकर्म- १) उत्कृष्ट। २) मध्यम। ३) सामान्य।

Scanned with CamScanner

पदार्थ त्रिविध

३०. मूर्ति- १) ब्रह्मा। २) विष्णु। ३) शिव (महेश)।

३१. लक्षण दोष-

१) अव्याप्ति- लक्ष्य के एक देश में लक्षण का वर्तना

२) अतिव्याप्ति- लक्ष्य में व्याप्त होते हुए अलक्ष्य में भी लक्षणा का वर्तना घटित होना।

३) असम्भव- लक्ष्य में लक्षण का बिल्कुल न वर्तना।

३२. लोक- १) स्वर्ग। २) मृत्यु। ३) पाताल।

३३. वादादि- १) वाद- गुरु-शिय का संवाद।

२) जल्प- युक्ति-प्रमाण-कुशल पण्डितों का पर-मत-खण्डक और स्व-मत-मण्डक वाद।

३) वितण्डा- मूर्खों का प्रमाण-युक्ति-रहित वाद। किंवा स्व-पक्ष की स्थापना न कर पर-पक्ष का ही खण्डन करना; जैसे हर्ष मिश्राचार्य के 'खण्डन-खण्ड-खाद्य' ग्रन्थ में है।

३४. विधि वाक्य-

१) अपूर्व- अलौकिक क्रिया का विधायक वाक्य।

२) नियम- प्राप्त दो पक्षों में, एक का विधायक वाक्य।

३) परिसंख्या- उभय पक्ष में,एक के निषेध का विधायक वाक्य।

३५. वेद के काण्ड- १) कर्म। २) उपासना। ३) ज्ञान।

३६. शरीर- १) स्थूल। २) सूक्ष्म। ३) कारण।

३७. श्रवणादि- १) श्रवण। २) मनन। ३) निदिध्यासन।

३८. श्रवणादि फल- १) प्रमाण-संशय नाश (श्रवण फल)।

२) प्रमेय-संशय नाश (मनन फल)।

३) विपर्यय नाश (निदिध्यासन फल)।

३९. सम्बन्ध- १) संयोग। २) समवाय। ३) तादात्म्य।

Scanned with CamScanner

४०. सुषुप्ति-

१) सुषुप्ति-जाग्रत्- सात्विक-वृत्तिपूर्वक सुख-सुषुप्ति।

२) सुषुप्ति स्वप्न- राजस-वृत्तिपूर्वक दुःख सुषुप्ति।

३) सुषुप्ति-सुषुप्ति- तामस-वृत्तिपूर्वक गाढ़-सुषुप्ति।

४१. सुषुप्त्यादि- १) सुषुप्ति। २) मूर्छा। ३) समाधि।

४२. स्वप्न-

१) स्वप्न-जाग्रत्- सत्य अर्थ का स्वप्न में दर्शन।

२) स्वप्न-स्वप्न- स्वप्न में रज्जुगत सर्पादि का दर्शन।

३) स्वप्न-सुषुप्ति- दृष्ट स्वप्न का अस्मरण (विस्मरण)।

४३. हेत्वादि- १) हेतु। २) स्वरूप। ३) फल।

४४. ज्ञातादि- १) ज्ञाता। २) ज्ञान। ३) ज्ञेय।

४५. ज्ञान-प्रतिबंधक- १) संशय, २) असंभावना
३) विपरीत भावना।

४६. ज्ञानादि- १) ज्ञान। २) वैराग्य। ३) उपशम।

॥ पदार्थ चतुर्विध ॥४॥

१. अनुबंध- अपने ज्ञान के अनंतर ग्रन्थ में प्रवृत्तक।

१) अधिकारी- मल-विक्षेप दोष रहित तथा अज्ञान दोष व विवेकादि चारों साधन सहित पुरुष, वेदांत का अधिकारी है।

२) विषय- ब्रह्म व आत्मा की एकता, वेदांत का विषय है।

३) प्रयोजन- सर्व दुःखों की निवृत्ति व परमानन्द की प्राप्ति, वेदान्त का प्रयोजन है।

४) सम्बन्ध- ग्रन्थ और विषय का प्रतिपादक-प्रतिपाद्यता- रूप सम्बन्ध है।

(प्रतिपादक=कथन करने वाला; प्रतिपाद्य=कथन-योग्य)

Scanned with CamScanner

२) अन्त:करण- १) मन-सङ्कल्प-विकल्प-रूप वृत्ति।
२) बुद्धि- निश्चय-रूप वृत्ति।
३) चित्त- चिंतन (स्मरण)-रूप वृत्ति।
४) अहंकार- अहंता-रूप वृत्ति।

३) आर्तादि भक्त-
१) आर्त- आध्यात्मादि दु:खों से व्याकुल।
२) जिज्ञासु- भगवत्-तत्त्व के जानने की इच्छा वाला।
३) अर्थार्थी- इस लोक-परलोक के भोगों का इच्छुक।
४) ज्ञानी- जीवन्मुक्त विद्वान्।

श्री विनोबा भावे कृत अर्थ-

१) आर्त- (विरही)-संसार को 'प्रेम' की दृष्टि से देखता है और ''कर्म'' के द्वारा भगवान के पास पहुँचता है।

२) जिज्ञासु- संसार को 'ज्ञान की दृष्टि से देखता है और ''हृदय'' के द्वारा भगवान् के पास पहुँचता है।

३) अर्थार्थी- संसार को उसके 'कल्याण' की दृष्टि से देखता है और ''बुद्धि'' के द्वारा भगवान् के पास पहुँचता है।

४) ज्ञानी - इसे चींटी से सूर्य पर्यन्त 'एक ही परमात्म तत्त्व' दिखाई देता है व ऐसी ''दिव्य-दृष्टि'' प्राप्त हो जाती है।

४) आश्रम- १) ब्रह्मचर्य २) गृहस्थ ३) वानप्रस्थ ४) संन्यास

५) उत्पत्त्यादि क्रिया- यहाँ 'क्रिया'=कर्मफल
१) उत्पत्ति-आद्य-लक्षण (जन्म); जैसे कुलाल की क्रिया का फल=घट की उत्पत्ति।
२) प्राप्ति- गमन क्रिया का फल= वाँछित देश की प्राप्ति।
३) विकार- अन्य-रूप की प्राप्ति; जैसे पाक (रसोई-रूप क्रिया का फल= अन्न का विकार (पलटना)।

Scanned with CamScanner

४) संस्कार- क) मल की निवृत्ति। ख) गुण की प्राप्ति। इस भेद से संस्कार दो प्रकार के होते हैं।
जैसे- १) वस्त्र-प्रक्षालन (धोना) क्रिया का फल=मल-निवृत्ति
२) कुसुम्भ (रंग) में वस्त्र का मज्जन (डूबाना क्रिया का फल=रक्त (लाल) 'गुण की उत्पत्ति'।

६) चित्त-निरोध युक्ति- १) अध्यात्म-विद्या। २) साधु-सङ्ग।
३) वासना-त्याग। ४) प्राणायाम।

७) धर्मादि- चार पुरुषार्थ।
१) धर्म-सकाम या निष्काम पुण्य।
२) अर्थ-इस लोक और परलोक में भोग के साधन।
३) काम-इसलोक और परलोक का भोग।
४) मोक्ष-दु:ख-निवृत्ति औरसुख-प्राप्ति।

८) पुरुषार्थ- १) धर्म। २) अर्थ। ३) काम। ४) मोक्ष।

९) पूजा-पात्र- १) ब्रह्मनिष्ठ। २) मुमुक्षु।
३) हरिदास (भक्त)। ४) स्व-धर्मनिष्ठ।

१० प्रमाण-
न्याय-शास्त्रानुसार प्रमा-ज्ञान के चार करण (प्रमाण):-
१) प्रत्यक्ष। २) अनुमान। ३) उपमान ४) शब्द।

११. ब्रह्म-विदादि-
१) ब्रह्मवित्-चतुर्थ भूमिकारूढ़ ज्ञानी।
२) ब्रह्मविद्वर-पञ्चम् भूमिकारूढ़ ज्ञानी।
३) ब्रह्मविद्वरीयान्-षष्ठ भूमिकारूढ़ ज्ञानी।
४) ब्रह्मविद्वरिष्ठ-सप्तम् भूमिकारूढ़ ज्ञानी।

१२. भूतग्राम- १) जरायुज-मनुष्य, पशु आदि।
२) अण्डज-पक्षी, सर्प आदि। ३)उद्भिज-वृक्षादि।
४) स्वेदज-यूका (जूँ), मत्कुण (खटमल) आदि।

१३. मैत्र्यादि- १) मैत्री-समान, धनवान, गुणी, ईश्वर-भक्त अथवा विषयी (कर्मी उपासक) पुरुषों में 'ये मेरे हैं', ऐसी बुद्धि।

Scanned with CamScanner

२) करुणा- दुःखी; गुण, धन, सम्पत्ति, विद्या आदि में निकृष्ट; अज्ञजन अथवा जिज्ञासु के प्रति, दया।

३) मुदिता-पुण्यवान, अधिक गुणवान्, ईश्वर अथवा मुक्त, भक्त आदि के प्रति,प्रीति।

४) उपेक्षा- पापिष्ठ, अवगुण-युक्त, द्वेषी और पामर के प्रति, राग-द्वेष से रहितता-रूप, उदासीनता।

१४. मोक्ष द्वारपाल- १) शम २) सन्तोष ३) विचार ४) सत्सङ्ग

१५. योग भूमिका- १) वाणीलय। २) मनोलय।
३) बुद्धिलय। ४) अहंकारलय।

१६. वर्ण- १) ब्राह्मण। २) क्षत्रिय। ३) वैश्य ४) शूद्र।

१७. वर्त्तमान ज्ञान प्रतिबन्ध निवृत्ति हेतु-
१) शमादि-विषयासक्ति का निवर्तक।
२) श्रवण-बुद्धि की मन्दता व स्थूलता का निवर्तक।
३) मनन-कुर्तक का निवर्तक।
४) निदिध्यासन-विपरीत भावना में दुराग्रह का निवर्तक

१८. वर्तमान ज्ञान प्रतिबन्ध- १) विषयासक्ति।
२) बुद्धि-मान्द्य। ३) कुतर्क। ४) विपर्यय-दुराग्रह।

१९. विवेकादि- १) विवेक, २) वैराग्य, ३) षट्-संपत्ति,
४) मुमुक्षुता।

२०. वेद- १) ऋग्। २) यजुष् ३) साम। ४) अथर्वण।

२१. शब्द प्रवृत्ति निमित्त-
१) जाति, २) गुण, ३) क्रिया, ४) संबंध।

२२. संन्यास- १)कुटीचक, २) बहूदक, ३) हंस, ४) परमहंस।

२३. समाधि-विघ्न- १) लय, २) विक्षेप, ३) काषाय,
४) रसास्वाद।

२४. स्पर्श- १) शीत। २) उष्ण। ४) कोमल। ४) कठिन

Scanned with CamScanner

॥ पदार्थ पञ्चविध ॥५॥

१. अभाव- नास्ति प्रतीति का विषय।

१) प्राग्- कार्य की उत्पत्ति से पूर्व कार्य का अभाव।

२) प्रध्वंस- नाश के अनन्तर का अभाव।

३) अन्योऽन्य- परस्पर में परस्पर का अभाव, रूप-भेद; जैसे घट में पट का और पट में घट का अभाव।

४) अत्यन्त- तीनों काल में अभाव; जैसे वायु में रूप का।

५) सामयिक- किसी समय (घटादि उठा लेने पर) भूतल आदि में घटादि का अभाव।

२. अज्ञान के भेद- अज्ञान में वेदान्त आचार्यों के मत के भेद।

१) मायाअविद्या-रूप अज्ञान- विद्यारण्यस्वामी आदि कई आचार्य, अज्ञान को, माया (समष्टि अज्ञानमय ईश्वर की उपाधि) और अविद्या (व्यष्टि अज्ञानमय जीवों की उपाधि)- रूप मानते हैं।

२) ज्ञानक्रियाशक्ति-रूप अज्ञान- कई आचार्य, अज्ञान को, ज्ञान शक्ति और क्रिया शक्ति मानते हैं।

३) विक्षेपआवरण-रूप अज्ञान- कई आचार्य, अज्ञान को, आवरण-रूप और विक्षेप (की हेतु शक्ति) रूप मानते हैं।

४) समष्टि-व्यष्टि-रूप अज्ञान- कई आचार्य, अज्ञान को, समष्टि (ईश्वर की उपाधि) और व्यष्टि (जीव की उपाधि) रूप मानते है।

५) कारण-रूप अज्ञान- कई आचार्य, अज्ञान को, जगत् का उपादान कारण, मूल प्रकृतिमय ईश्वर की उपाधि-रूप मानते हैं औरउस पक्ष में कार्य (अन्तःकरण) उपाधि वाला, जीव माना है।

३. उपवायु-१ नाग- उद्गार का हेतु (कारण), वायु।

२) कूर्म-निमेष-उन्मेष का हेतु, वायु।

Scanned with CamScanner

३) कृकल- छींक का हेतु, वायु।
४) देवदत्त- जमुहाई (उबासी) का हेतु, वायु।
५) धनञ्जय- देह पुष्टि का हेतु, वायु।

४. कर्म-१) नित्य-सदा विहित कर्म; स्नान-सन्ध्या आदि।
२) नैमित्तिक-किसी निमित्त हेतु विहित कर्म; ग्रहण, श्राद्धादि।
३) काम्य-कामना के लिए विधान किया कर्म;यज्ञ-यागादि
४) प्रायश्चित-पाप की निवृत्ति हेतु विधान किया कर्म।
५) निषिद्ध-नहीं करने योग्य कर्म; ब्रह्म हत्यादि।

५. कर्म इन्द्रिय-१) वाक्, २) पाणि, ३) पाद, ४) उपस्थ, ५) गुद।

६. कोश-१) अन्नमय। २) प्राणमय। ३)मनोमय।
४) विज्ञानमय। ५) आनन्दमय।

७. क्लेश-१) अविद्या-चार प्रकार की कार्य-अविद्या:-
क) दु:ख में सुख-बुद्धि। ख) अनात्मा में आत्म-बुद्धि।
ग) अनित्य में नित्य-बुद्धि। घ) अशुचि में शुचि-बुद्धि।
२) अस्मिता-साक्षी (आत्मा) और बुद्धि की एकता का भ्रान्ति-स्वरूप ज्ञान (सामान्य-अहंकार एवं चिदाभास की चिद्-जड़ ग्रन्थि)।
३) राग-दृढ़ आसक्ति (आरूढ़ प्रीति)।
४) द्वेष-क्रोध। ५) अभिनिवेश-मरण का भय।

८. ख्याति-प्रतीति और कथन-रूप व्यवहार।
१) असत्-'शून्यवादी', असत् (नि:स्वरूप) सर्प की रज्जु देश में प्रतीति और कथन मानते हैं।
२) आत्म-'क्षणिक विज्ञानवादी', क्षणिक बुद्धि-रूप आत्मा की सर्प-रूप से प्रतीति और कथन मानते हैं।
३) अन्यथा-'नैयायिक', बम्बी (राफड़ा) आदि दूर देश में स्थित

Scanned with CamScanner

सर्प के दोष के बल से रज्जु-रूप देश में प्रतीति और कथन मानते हैं अथवा रज्जु-रूप ज्ञेय का सर्प-रूप से ज्ञान मानते हैं।

४) अख्याति-'सांख्य-प्रभाकर' मत के अनुसार, 'यह सर्प है'; इसमें 'यह' अंश तो रज्जु के इदंपने का प्रत्यक्ष ज्ञान है और 'सर्प' पूर्व देखे सर्प का स्मृति ज्ञान है। ये दो ज्ञान हैं, जिनके दोष के बल से अख्याति अर्थात् अविवेक (भेद प्रतीति का अभाव) होता है।

५) अनिर्वचनीय-'वेदान्त सिद्धान्त' के अनुसार, रज्जु में, उसकी अविद्या से, अनिर्वचनीय (सत्-असत् से विलक्षण) सर्प और उसका ज्ञान उपजता है। जिसकी ख्याति अर्थात् प्रतीति और कथन होता है।

९. जीवन्मुक्ति केप्रयोजन-यद्यपि जीवन्मुक्ति तो ज्ञानी को सिद्ध है, तथापि यहाँ इस शब्द से जीवन्मुक्ति के विलक्षण आनन्द की अवस्थाओं (पञ्चम् आदि भूमिकाओं) का ग्रहण है। उनके प्रयोजन अर्थात् फल पाँच प्रकार के हैं:-

१) ज्ञान-रक्षा-यद्यपि दृढ़ बोध का एक बार उत्पन्न होने पर नाश नहीं होता है, अतः ज्ञान-रक्षा आप ही सिद्ध है; तथापि यहाँ 'ज्ञान-रक्षा' का अर्थ निरन्तर ब्रह्माकार वृत्ति की स्थिति है।

२) तप-मन और इन्द्रियों की एकाग्रता अथवा शरीर, वाणी और मन का संयम।

३) विसम्वादाभाव-जल्प और वितण्डवाद का अभाव।

४) दुःख-निवृत्ति-दृष्ट (प्रत्यक्ष) दुःख की निवृत्ति।

५) सुख-प्राप्ति-निरावरण, परिपूर्ण और सवृत्तिक-रूप जीन्मुक्ति केविलक्षण आनन्द की प्राप्ति।

१० दृष्टान्त-जगत् के मिथ्यापने में पाँच दृष्टान्त हैं:-

१) शुक्ति में रजत का। २) रज्जु में सर्प का।

३) स्थाणु में पुरुष का। ४) गगन में नीलता का।

Scanned with CamScanner

५) मरीचिका में जल का-मध्याह्नकाल में मरु-भूमि (उषर-भूमि) में प्रतिबिम्बित सूर्य की किरणें, मरीचिका कहलाती हैं। उनमें जो जल भासता है,उसको मृग-जल और जांजू-जल कहते हैं।

११. नियम-१) शौच। २) सन्तोष। ३) तप।

४) स्वाध्याय-स्व-शाखा के वेद-भाग का अथवा गीतादि का नित्य पाठ।

५) ईश्वर प्रणिधान-ॐकारादि ईश्वर उपासना॥

१२. प्रलय-१) नित्य-क्षण-क्षण में सर्व-कार्यों का दीप-ज्योति की भाँति, नाश अथवा सुषुप्ति।

२) नैमित्तिक-ब्रह्मा की रात्रि-रूप निमित्त से भू:आदि नीचे के तीन लोकों का नाश।

३) दिन-ब्रह्मा के दिन में चतुर्दश मन्वन्तर होते हैं; उन सभी का नाश। इसी को अवान्तर प्रलय और मन्वन्तर प्रलय भी कहते हैं। कोई तो इसी को नैमित्तिक प्रलय कहते हैं।

४) महा-ब्रह्मा के शत वर्ष के अनन्तर, ब्रह्मदेव सहित आकाशादि सर्वभूतों का नाश।

५) आत्यन्तिक-ज्ञान से, कारण सहित, सकल जगत् का बाध (अत्यन्त निवृत्ति)।

१३. प्राणादि-१) प्राण २) अपान ३) व्यान ४) उदान ५) समान

१४. भेद (पंचविध) देखो पृष्ठ-१५६ टि.१०८ ।

१५. भ्रम (पंचविध) देखो पृष्ठ -१५६

१६. भ्रम निवर्त्तक दृष्टान्त-देखो पृष्ठ १५७

१७. महायज्ञ-१) देव २) ऋषि ३) पितर ४) मनुष्य ५) भूत

१८. यम-१) अहिंसा। २) सत्य। ३) ब्रह्मचर्य।

४) अपरिग्रह-निर्वाह से अधिक धन का असंग्रह।

५) अस्तेय-चोरी का अभाव।

Scanned with CamScanner

१९. योग भूमिका-१) क्षेप-राग द्वेषादि से चित की चञ्चलता

२) विक्षेप-बहिर्मुख चित्त की कदाचित् ध्यानयुक्तता को, क्षेप से विशेष होने के कारण, विक्षेप कहते हैं।

३) मूढ-निद्रा-तन्द्रादि युक्तता। ४) एकाग्र। ५) निरोध।

२०. वचनादि- १) वचन २) आदान गमन

४) रति ५) मलत्याग।

२१. शब्दादि-१) शब्द, २) स्पर्श ३) रूप, ४) रस, ५) गन्ध।

२२. स्थूल भूत-१) आकाश, २) वायु, ३) तेज ४) जल ५) पृथ्वी

२३. हेत्वाभास-हेतु के लक्षण (साध्य की साधकता) से रहित हुआ, हेतु की भाँति भासता (प्रतीत होता); ऐसा दुष्ट हेतु अथवा हेतु का आभास (दोष)।

१) सव्यभिचार-साध्य (अग्नि) के आश्रय (पर्वत) और अग्नि के अभाव के आश्रय : ह्रद=तालाब) में वर्तने वाला हेतु, सव्यभिचार है। जैसे पर्वत अग्निमान् है: 'प्रमेय होने से' यह हेतु है। इसी को "अनैकान्तिक" हेतु भी कहते हैं।

२) विरुद्ध-साध्य के अभाव से व्याप्त हेतु। जैसे 'शब्द नित्य है। कृतक (क्रिया-जन्य) होने से' यह हेतु है। सो साध्य नित्यता) के अभाव-रूप अनित्यता से व्याप्त है; क्योंकि जो कृतक है सो अनित्य है, घटवत्। इस नियम से।

३) सत्यप्रतिपक्ष-साध्य के अभाव का साधक अन्य हेतु। जैसे शब्द नित्यहै; 'श्रवण होने से', इस हेतु का साध्य (नित्यता) के अभाव का साधक। शब्द अनित्य है; 'कार्य होने से' घट की भाँति यह हेतु है। जो कार्य होता है, सो अनित्य ही होता है।

४) असिद्ध-शब्द गुण है; 'चाक्षुष होने से', रूप की भाँति। यहाँ चाक्षुषत्व-रूप हेतु का स्वरूप शब्द-रूप पक्ष में नहीं है; क्योंकि शब्द श्रवण-जन्य ज्ञान का विषय होता है।

Scanned with CamScanner

५) बाधित-जिसके साध्य का अभाव अन्य प्रमाण से निश्चित होता है। जैसे अग्नि उष्ण नहीं है; 'द्रव्य (वस्तु होने से', इस हेतु का साध्य (अनुष्णता) के अभाव (उष्णता) का ग्रहण त्वक् इन्द्रिय से होता है।

२४. ज्ञान इन्द्रिय- १) श्रोत्र, २) त्वक्,३) चक्षु, ४) जिह्वा, ५) घ्राण।

।। पदार्थ षड्विध ।।६।।

१. अजिह्वत्वादि-यति (संन्यासी) के धर्म विशेष।

१) अजिह्वत्व-रस-विषय की आसक्ति रहितता।

२) नपुंसकत्व-कुमारी, किशोरी (१६ वर्ष की) और वृद्धा स्त्री में समता, निर्विकारिता।

३) पंगुत्व-दिन में एक योजन से अधिक नहीं चलना (अगमन)।

४) अन्धत्व धनुष पर्यन्त से अधिक दृष्टि नहीं फैलाना (अप्रसरण)।

५) बधिरत्व-व्यर्थालाप नहीं सुनना (अश्रवण)।

६) मुगधत्व-व्यवहार में शून्यता (मूढ़ता)।

२. अनादि पदार्थ-उत्पत्ति-रहित पदार्थ।

१) जीव, २) ईश, ३) शुद्ध चेतन, ४) अविद्या,
५) चेतन व अविद्या का सम्बन्ध, ६) जीव व ईश्वर का भेद।

३. अरि-वर्ग-परलोक के विरोधी, आन्तरिक शत्रु-समूह।

१) काम-प्राप्त वस्तु के भोग की इच्छा।

२) क्रोध- द्वेष।

३) लोभ-अप्राप्त वस्तु की प्राप्ति की इच्छा।

४) मोह-आत्मा-अनात्मा या कार्य-अकार्य का अविवेक।

५) मद-गर्व (अहंकार)।

६) मत्सर-पर-उत्कर्ष नहीं सह सकना (असहन)।

४. अवस्था-स्थूल देह के काल।

१) शिशु-एक वर्ष तक। २) कौमार-पाँच वर्ष तक।

३) पौगण्ड-षट् से दस वर्ष तक।

Scanned with CamScanner

४) किशोर-एकादश से पञ्चदश वर्ष तक।
५) यौवन-षोडश से चालीस वर्ष तक।
६) जरा-चालीस वर्ष से ऊपर।

५. ईश्वर के भग-१) समग्र ऐश्वर्य, २) समग्र धर्म, ३) समग्र यश, ४) समग्र श्री, ५) समग्र ज्ञान, ६) समग्र वैराग्य।

६. ईश्वर के ज्ञान-१) उत्पत्ति। २) प्रलय। ३) गति। ४) आगति-इस लोक में जीव के आगमन का ज्ञान। ५) विद्या। ६) अविद्या।

७. ऊर्मि-संसार-रूप सागर की लहरें।
१) जन्म, २) मरण, ३) क्षुधा, ४) तृषा, ५) हर्ष, ६) शोक।

८. कर्म-नित्य-कर्म।
१) स्नान। २) जप। ३) होम। ४) अर्चन-देव-पूजन। ५) आतिथ्य-अभ्यागत आदि का भोजन आदि से सत्कार। ६) वैश्वदेव-अग्नि में हुत-द्रव्य का होम।

९. कौशिक-अन्नमय-कोश (देह) में रहने वाले पदार्थ।
१) त्वक् २) माँस ३) रुधिर ४) मेद, ५) मज्जा, ६) अस्थि।

१०. प्रमाण-१) प्रत्यक्ष-प्रत्यक्ष प्रमा के करण, श्रोत्र आदि पाँच ज्ञान इन्द्रियें, एवं अन्त:करण।

२) अनुमान-अनुमिति प्रमा के करण, लिङ्ग का ज्ञान; जैसे पर्वत में अग्नि के ज्ञान का हेतु धूम-रूप लिङ्ग का ज्ञान।

३) उपमान-उपमिति प्रमा के करण, सादृश्य का ज्ञान; जैसे गवय (रोझ अर्थात् नील गाय) में गौ के सादृश्य का ज्ञान।

४) शब्द-शाब्दी प्रमा के करण, लौकिक-वैदिक शब्द।

५) अर्थापत्ति-अर्थापत्ति प्रमा के करण, उपपाद्य का ज्ञान; जैसे दिन में न खाने वाले (अभोजी) स्थूल पुरुष के रात्रि में भोजन के ज्ञान-

Scanned with CamScanner

रूप अर्थापत्ति प्रमा का हेतु स्थूलता (उपपाद्य) का ज्ञान।

६) अनुपलब्धि-अभाव प्रमा के करण, पदार्थ की अप्रतीति; जैसे गृह में घट के अभाव के ज्ञान का हेतु, घट की अप्रतीति।

११. भ्रम-१) कुल, २) गोत्र, ३) जाति, ४) वर्ण,
५) आश्रम, ६) नाम।

१२. रस-१) मधुर। २) आम्ल। ३) लवण।
४) कटुक। ५) कषाय। ६) तिक्त।

१३. लिङ्ग-वेद-वाक्य के तात्पर्य के निश्चायक लिङ्ग।
१) उपक्रम-उपसंहार-आदि-अन्त की एकरूपता।
२) अभ्यास-बारम्बार पठन।
३) अपूर्वता-अलौकिकता (अनूठापन)।
४) फल-मोक्ष। ५) अर्थवाद-स्तुति।
६) उपपत्ति-अनुकूल युक्ति-दृष्टान्त।

१४. विकार- १) जन्म। २) अस्तिपना (प्रकटता) ३) वृद्धि
४) विपरिणाम ५) अपक्षय ६) विनाश।

१५. वेद-अङ्ग-१) शिक्षा। २) कल्प। ३) व्याकरण।
४) निरुक्त। ५) छन्द। ६) ज्योतिष।

१६. शमादि-१) शम। २) दम। ३) उपरति।
४) तितिक्षा। ५) श्रद्धा। ६) समाधान।

१७. शास्त्र-१) सांख्य। २) योग। ३) न्याय।
४) वैशेषिक। ५) पूर्व-मीमांसा। ६) उत्तर मीमांसा।

१८. समाधि-
१) बाह्य-दृश्यानुविद्ध। २) आंतर-दृश्यानुविद्ध।
३) बाह्य-शब्दानुविद्ध। ४) आंतर-शब्दानुविद्ध।
५) बाह्य-निर्विकल्प। ६) आंतर-निर्विकल्प।

१९. सूत्र-१) जैमिनीय। २) आश्वलायन। ३) आपस्तम्ब।
४) बौधायन्। ५) कात्यायन। ६) वैखानसीय।

Scanned with CamScanner

।। पदार्थ सप्तविध ।।७।।

१. अतलादि-१) अतल। २ वितल। ३) सुतल।
४) तलातल। ५) रसातल। ६) महातल। ७) पाताल।

२. अवस्था-सप्त, चिदाभास की - १) अज्ञान। २) आवरण।
३) विक्षेप। ४) परोक्षज्ञान। ५) अपरोक्षज्ञान। ६) शोकनाश।
७) हर्ष प्राप्ति (निरंकुश-तृप्ति)।

३. चेतन-१) ईश्वरचेतन-माया-विशिष्ट चेतन।
२) जीवचेतन-अविद्या-विशिष्ट चेतन।
३) शुद्धचेतन-निरुपाधिक चेतन।
४) प्रमाताचेतन-प्रमातासंज्ञक अन्त:करण से अवच्छिन्न चेतन।
५) प्रमाणचेतन-इंद्रियों द्वारा बाहिर निकलकर घटादि विषय पर्यन्त पहुँची वृत्ति प्रमाण है; उससे अवच्छिन्न चेतन।
६) प्रमेयचेतन-प्रमेय घटादि विषयों से अवच्छिन्न चेतन।
७) प्रमाचेतन-घटादि विषयाकार हुई वृत्ति प्रमा है; उससे अवच्छिन्न चेतन अथवा उसमें प्रतिबिम्बित चेतन। इसी को 'प्रमितिचेतन' और 'फलचेतन' भी कहते हैं।

४. द्रव्यादि पदार्थ-नैयायिक मत में द्रव्य आदि सप्त पदार्थ
१) द्रव्य-गुणों के आश्रय-रूप पदार्थ निम्न ९ द्रव्य।
क) पृथ्वी। ख) जल। ग) तेज। घ) वायु।
ड़) आकाश। च) काल। छ) दिशा। ज) आत्मा।
झ) मन।
२) गुण-'रूप' से लेकर 'संस्कार' पर्यन्त, २४ गुण।
३) कर्म-पञ्चविध कर्म :- क) उत्क्षेपण (ऊपर फैंकना)।
ख) अपक्षेपण (नीचे फैंकना)।
ग) आकुंचन। घ) प्रसारण। ड़) गमन।
४) सामान्य-पर और अपर भेद से द्विविध जाति।
५) समवाय-वेदान्त में जहाँ जहाँ तादात्म्य सम्बन्ध माना है, न्याय में तहाँ तहाँ सम्बन्ध विशेष (नित्य-सम्बन्ध) माना है।

Scanned with CamScanner

६) अभाव-पञ्चविध, नास्ति प्रतीति के विषय-रूप पदार्थ;
क) प्रागभाव। ख) प्रध्वंसाभाव। ग) अन्योऽन्याभाव।
घ) अत्यन्ताभाव। ड़) सामयिकाभाव।
७) विशेष-परमाणुओं के मध्यगत अनन्त अवकाश-रूप पदार्थ।

५. धातु-१) रस-भुक्त अर्थात् खाये-पीये अन्न-जल के तीन विभाग हो जाते हैं। (क) सूक्ष्म विभाग-पुण्य-पाप, (ख) स्थूल विभाग-मल और (ग) मध्यम विभाग-अन्न-जल का सार अर्थात् रस।
२) रुधिर। ३) माँस। ४) मेद-श्वेत माँस (चर्बी)।
५) मज्जा-अस्थिगत सचिक्कण (चिकना) पदार्थ। ६) अस्थि।
७) रेत (वीर्य-रज)।

६. भूरादि लोक-१) भूः। २) भुवः। ३) स्वः।
४) महः। ५) जन। ६) तप। ७) सत्य।

७. मौनादि-१) मौन, २) योगासन, ३) योग, ४) तितिक्षा,
५) एकान्तशीलता, ६) निःस्पृहता, ७) समता।

८. रूप-१) शुक्ल। २) कृष्ण। ३) पीत। ४) रक्त।
५) हरित। ६) कपिश। ७) चित्र।

९. व्यसन-१) तन। २) मन। ३) क्रोध। ४) विषय।
५) धन। ६) राज्य। ७) सेवक।

१०. ज्ञान भूमिका- १) शुभेच्छा। २) सुविचारणा। ३) तनुमानसा।
४) सत्त्वा-पत्ति। ५) असंसक्ति ६) पदार्थाभाविनी ७) तुरीयगा।

॥ पदार्थ अष्टविध ॥८॥

१. पाश-१) दया। २) शङ्का। ३) भय। ४) लज्जा।
५) निद्रा। ६) कुल। ७) शील। ८) धन।

२. पुरी-१) ज्ञानेन्द्रिय-पंचक। २) कर्मेन्द्रिय-पंचक।
३) अन्तःकरण-चतुष्टय। ४) प्राणादि-पंचक।
५) भूत-पंचक। ६) काम।
७) त्रिविध-कर्म। ८) वासना।

Scanned with CamScanner

३. प्रकृति-१) पृथ्वी। २) जल। ३) अग्नि।
४) वायु। ५) आकाश।
६) मन-समष्टि मन-रूप अहंकार।
७) बुद्धि-समष्टि बुद्धि-रूप महत्तत्व।
८) अहंकार-महत्तत्त्व से पूर्व, शुद्ध अहंकार का कारण, अज्ञान-रूप मूल प्रकृति।

४. ब्रह्मचर्य के अङ्ग-निम्न अष्ट-मैथुन से विपरीत (अदर्शन, अस्पर्शन आदि) :-
१) स्त्री का दर्शन, २) स्पर्शन, ३) केलि-चौपड़ आदि क्रीड़ा।
४) कीर्तन, ५) गुह्य-भाषण, ६) संङ्कल्प-चिंतन (स्मरण)।
७) निश्चय, ८) शारीरिक-सम्बन्ध (संभोग)।

५. मद-१) कुल मद। २) शील-मद। ३) धन-मद।
४) रूप-मद। ५) यौवन-मद। ६) विद्या-मद।
७) तप-मद। ८) राज्य-मद।

६. मूर्ति-मद-१) पृथ्वी-मद-अस्थि, माँसादि पृथ्वी के तत्त्वों का अभिमान।
२) जल-मद-शुक्र, शोणितादि जल तत्त्वों का अभिमान।
३) तेज मद-क्षुधा आदि तेज के तत्त्वों की अधिकता।
४) पवन-मद-चलन, धावन आदि वायु तत्त्वों से युक्तता।
५) आकाश-मद-काम, क्रोधादि आकाश तत्त्वों से युक्तता।
६) चन्द्र-मद- शीतलता-रूप चन्द्र के गुण से युक्तता।
७) सूर्य-मद-संताप (क्रोधादि) रूप सूर्य के गुण से युक्तता।
८) आत्म-मद-विद्या, धन, कुल आदि आत्मा के सम्बन्धियों का अभिमान।

७. शब्द-शक्ति ग्रहण-हेतु-१) व्याकरण। २) उपमान।
३) कोश। ४)आप्त-वाक्य। ५) वृद्ध-व्यवहार।

Scanned with CamScanner

६) वाक्य-शेष। ७) विवरण। ८) सिद्ध-पद की सन्निधि।

८. समाधि के अङ्ग-१) यम। २) नियम। ३) आसन।
४) प्राणायाम। ५) प्रत्याहार। ६) धारणा। ७) ध्यान।
८) सविकल्प समाधि।

॥ पदार्थ नवविध॥९॥

१. तत्त्व-किसी महात्मा ने लिङ्ग-देह के ये नव तत्त्व माने हैं:-
१) श्रोत्र। २) त्वक्। ३) चक्षु। ४) जिह्वा। ५) घ्राण।
६) मन। ७) बुद्धि। ८) चित्त। ९) अहंकार।

२. संसार-१) ज्ञाता। २) ज्ञान। ३) ज्ञेय। ४) भोक्ता।
५) भोग्य। ६) भोग। ७) कर्त्ता; ८) करण। ९) क्रिया।

॥ पदार्थ दशविध॥१०॥

१. नाड़ी और देवता-

नाड़ी-	देवता
१) इड़ा (चन्द्र) वाम नासिकागत चन्द्रनाड़ी।	हरि।
२) पिङ्गला (सूर्य) दक्षिण नासिकागत सूर्यनाड़ी।	ब्रह्मा।
३) सुषुम्णा (मध्यमा) नासिका के मध्यगत नाड़ी।	रुद्र।
४) गांधारी (दक्षिण=दायाँ, जीवणा नेत्र)।	इन्द्र।
५) हस्ति-जिह्वा (बाम=बायाँ, डावा नेत्र)।	वरुण।
६) पूषा (दक्षिण कर्ण=दायाँ कान)।	ईश्वर।
७) यशस्विनी (बाम कर्ण=बायाँ कान)।	ब्रह्मा।
८) कुहू (गुदा)।	पृथ्वी।
९) अलंबुषा (मेढ्र)।	सूर्य।
१०) शङ्खिनी (नाभि)।	चन्द्र।

२. शृङ्गारादि रस- १) शृङ्गार। २) वीर। ३) करुणा।
४) अद्भुत। ५) हास्य। ६) भयानक। ७) वीभत्स।
८) रौद्र। ९) शाँत। १०) प्रेम-भक्ति या ज्ञान-रस।

Scanned with CamScanner

॥ पदार्थ एकादशविध ॥११॥

१. ज्ञान-साधन-१) विवेक। २) वैराग्य। ३) षट्-सम्पत्ति। ४) मुमुक्षुता। ५) गुरूपसत्ति-विधिपूर्वक गुरु के शरण जाना। ६) श्रवण। ७) तत्त्व-ज्ञानाभ्यास। ८) मनन। ९) निदिध्यासन। १०) मनोनाश- रज-तम से, सत्त्वगुण का तिरस्कार-रूप, मन के स्थूलभाव का नाश अर्थात् ब्रह्माभ्यास की प्रबलता से, रज-तम के तिरस्कार द्वारा सत्त्वगुण का आविर्भाव होना। ११) वासना-क्षय।

॥ पदार्थ द्वादशविध ॥१२॥

१. अनात्मा के धर्म-१) अनित्य। २) विनाशी। ३) अशुद्ध। ४) नाना। ५) क्षेत्र। ६) आश्रित। ७) विकारी। ८) पर-प्रकाश्य। ९) हेतुमान्। १०) व्याप्य-परिच्छिन्न (देशकाल-वस्तुकृत परिच्छेद वाला)। ११) सङ्गी। १२) आवृत।

२. आत्मा के धर्म-१) नित्य-उत्पत्ति और नाश से रहित। २) अव्यय-घटने-बढ़ने से रहित। ३) एक-सजातीय भेद से रहित। ४) शुद्ध-माया-अविद्या-रूप मल से रहित। ५) क्षेत्रज्ञ-शरीर-रूप क्षेत्र का ज्ञाता। ६) आश्रय-अधिष्ठान। ७) अविक्रिय-अविकारी। ८) स्व-प्रकाश-अपने प्रकाश में अन्य (स्व-पर) प्रकाश की अपेक्षा से रहित हुआ, सर्व का प्रकाशक। ९) हेतु- जाले का कारण उर्णनाभि (मकड़ी) की भाँति, और नख और रोम (केश) के कारण मनुष्य की भाँति, जगत् का अभिन्न निमित्त (विवर्त) उपादान कारण।

Scanned with CamScanner

१०) व्यापक-अपरिच्छिन्न, परिपूर्ण।
११) असङ्गी-सजातीय, विजातीय, स्वगत सम्बन्ध-रहित।
१२) अनावृत-सर्वथा आवरण से रहित।

३. ब्राह्मण के व्रत-१) ज्ञान। २) सत्य। ३) शम। ४) दम।
५) श्रुत-शास्त्राभ्यास। ६) लज्जा। ७) तितिक्षा।
८) अमात्सर्य-पर (दूसरे) के उत्कर्ष के न सहने (असहन) रूप मत्सर से रहित।
९) अनूअसूया-गुणों में दोष का आरोप-रूप असूया से रहितता।
१०) यज्ञ। ११) दान।
१२) धैर्य-काम और क्रोध के वेग को रोकना।

४. महत्ता-हेतु-मैध-१) धनाढ्यता। २) अभिजन-कुटुम्ब।
३) रूप। ४) तप। ५) श्रुत-शास्त्राभ्यास।
६) ओज-इन्द्रियों का तेज। ७) तेज-काया की कान्ति।
८) प्रभाव। ९) बल। १०) पौरुष ११) बुद्धि। १२) योग।

।। पदार्थ त्रयोदशविध ।।१३।।

१. भागवत-धर्म (भगवद्भक्तों के धर्म) :-
१. सकाम कर्म के फल का विपरीत दर्शन।
२. धन-गृह-पुत्रादि में दुःख-बुद्धि और चल-बुद्धि।
३. परलोक विषय में नश्वर-बुद्धि।
४. शब्द-ब्रह्म और पर-ब्रह्म में कुशल गुरु के प्रति गमन।
५. गुरु में ईश्वर-बुद्धि और निष्कपट सेवा।
६. परमेश्वर में सर्व-कर्म समर्पण।
७. भक्ति-वैराग्य सहित स्वरूपानुभव; साधु-सङ्गः।
८. शौच, तप, तितिक्षा और मौन।
९. स्वाध्याय, आर्जव (सरल स्वभाव), ब्रह्मचर्य अहिंसा और

Scanned with CamScanner

द्वन्द्व-समत्व (शीत-उष्णादि द्वन्द्व-धर्म सहने का स्वभाव)।

१०. सर्वत्र आत्मा-रूप ईश्वर का दर्शन।

११. कैवल्य (एकाकी रहना), अनिकेत (गृह न बाँधना), एकान्त (विविक्त), चीर-वस्त्र और सन्तोष।

१२. सर्वभूतों में आत्मा के भगवद्भाव का दर्शन और भगवद्रूप आत्मा में सर्वभूतों का दर्शन।

१३. जन्म, कर्म, वर्णाश्रम आदि से देह में निरभिमान और स्व-पर बुद्धि का अभाव।

॥ पदार्थ चतुर्दशविध ॥१४॥

त्रिपुटी १४- देखो पञ्चम् कला, पृष्ठ १२९

॥ पदार्थ पञ्चदशविध ॥१५॥

१. माया के नाम-१) माया। २) अविद्या। ३) प्रकृति। ४) शक्ति। ५) सत्यता। ६) मूला। ७) तूला। ८) योनि। ९) अव्यक्त। १०) अव्याकृत। ११) अजा। १२) अज्ञान। १३) तमः। १४) तुच्छा। १५) अनिर्वचनीया।

॥ पदार्थ षोडशविध ॥१६॥

१. कला-१) हिरण्यगर्भ। २) श्रद्धा। ३) आकाश। ४) वायु। ५) तेज। ६) जल। ७) पृथ्वी। ८) दशेन्द्रिय। ९) मन। १०) अन्न। ११) बल। १२) तप। १३) मन्त्र। १४) कर्म। १५) लोक। १६) नाम।

इति श्री विचार चन्द्रोदये वेदांत पदार्थ संज्ञा वर्णन अथवा लघु वेदांत कोश समाप्त :।

Scanned with CamScanner

॥ षट्-दर्शन सार-दर्शक पत्रक॥

षट्-दर्शन	(१) पूर्व मीमांसा	२) उत्तर मीमांसा (वेदांत)
१ जगत्	स्वरूप से अनादि अनन्त प्रवाह-रूप संयोग-वियोगवान्	नाम-रूप क्रियात्मक माया का परिणाम चेतन का विवर्त
२ जगत्कारण	जीव, अदृष्ट और परमाणु	अभिन्न निमित्तोपादन ईश्वर
३ ईश्वर	नहीं	माया विशिष्ट चेतन
४ जीव	जड़-चेतनात्मक विभु, नाना कर्त्ता-भोक्ता	अविद्या विशिष्ट चेतन
५ बन्ध हेतु	निषिद्ध कर्म	अविद्या
६ बन्ध	नरकादि दुःख सम्बन्ध	अविद्या-तत्कार्य
७ मोक्ष	स्वर्ग-प्राप्ति	अविद्या-तत्कार्य निवृत्ति पूर्वक परमानन्द ब्रह्म-प्राप्ति
८ मोक्ष-साधन	वेद विहित कर्म	ब्रह्मात्मैक्य ज्ञान
९ अधिकारी	कर्म फलासक्त	मल-विक्षेप दोषरहित चतुष्टय-साधन सम्पन्न
१० प्रकटकर्त्ता आचार्य	जैमिनी	वेद व्यास
११ प्रधान-काण्ड	कर्म-काण्ड	ज्ञान-काण्ड
१२ वाद	आरम्भवाद	विवर्तवाद
१३ आत्मापरिणाम संख्या	विभु नाना	विभु एक
१४ प्रमाण	षट् (६)	षट् (६)
१५ ख्याति	अख्याति	अनिर्वचनीय
१६ सत्ता	जीव-जगत् परमार्थ-सत्ता	परमार्थ-रूप आत्म-सत्ता, व्यावहारिक और प्राति-भासिक जगत्-सत्ता
१७ उपयोग	चित्त शुद्धि	तत्त्व-ज्ञानपूर्वक मोक्ष

Scanned with CamScanner

॥ षट्-दर्शन सार-दर्शक पत्रक॥

(३) न्याय व ४ वैशेषिक	(५) सांख्य	(६) योग
१ परमाणु आरंभित संयोगवियोगजन्य आकृति विशेष	प्रकृति परिणाम त्रयोविंशति (२३) तत्त्वात्मक	प्रकृति परिणाम त्रयोविंशति (२३) तत्त्वात्मक
२ परमाणु और ईश्वरादि नव ९)	त्रिगुणात्मक प्रकृति	कर्मानुसार प्रकृति और तन्नियात्मक ईश्वर
३ नित्य इच्छा ज्ञानादि गुणवान विभु-कर्त्ता विशेष	नहीं	क्लेश कर्म विपाक आशय असंबद्ध पुरुष-विशेष
४ ज्ञानादि चतुर्दश गुणवान् कर्त्ताभोक्ता जड़ विभु नाना	असङ्ग चेतन विभु नाना भोक्ता	असङ्ग चेतन विभु नाना कर्त्ता-भोक्ता
५ अज्ञान	अविवेक	अविवेक
६ एक-विंशति(२१)दुःख	अध्यात्मादि त्रिविध दुःख	प्रकृति पुरुष संयोग-जन्य अविद्यादि पञ्च क्लेश
७ एक विंशति (२१) दुःख-ध्वंस	त्रिविध दुःख ध्वंस	प्रकृति पुरुष संयोगाभाव पूर्वक पञ्च क्लेश निवृत्ति
८ इतर-भिन्नात्मक ज्ञान	प्रकृति-पुरुष विवेक	निर्विकल्प समाधिपूर्वक विवेक
९ दुःख-जिज्ञासु कुतर्की	संदिग्ध विरक्त	विक्षिप्त चित्तवान्
१० गौतम व कणाद.	कपिल	पतञ्जलि
११ ज्ञान-काण्ड	ज्ञान-काण्ड	उपासना-काण्ड
१२ आरम्भवाद	परिणामवाद	परिणामवाद
१३ विभु नाना	विभु नाना	विभु नाना
१४ प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द (४)*	प्रत्यक्ष, अनुमान, शब्द (३)	प्रत्यक्ष अनुमान, शब्द (३)
१५ अन्यथा	अख्याति	अख्याति
१६ जीव-जगत् परमार्थ-सत्ता	जीव-जगत् परमार्थ-सत्ता	जीव जगत् परमार्थ-सत्ता
१७ मनन	'त्वं' पदार्थ शोधन	चित्तैकाग्र

* वैशेषिक-आचार्य कणाद। प्रमाण (२)-प्रत्यक्ष और अनुमान।

Scanned with CamScanner

षट्-दर्शन का समन्वय

पामर पुरुषों को, उनके स्वाभाविक पाप प्रवृत्ति से हटाकर पुण्य कर्मों में प्रवृत्त कराने के निमित्त "पूर्व मीमांसा" की रचना आचार्य शिरोमणि श्री जैमिनीजी द्वारा की गई। इसमें कञ्चन-कामिनी आदि पदार्थों के एहिलौकिक-पारलौकिक इच्छा वाले पुरुषों को सांसारिक सुखों की तुच्छता एवं हेयता बताकर, उनके भावानुरूप, स्वर्ग के अनुपम सुखों को सर्वोपरि वर्णन किया। यह कथन न तो वेदान्त का सिद्धान्त ही है और न आचार्य शिरोमणि की मान्यता ही; अपितु प्रभु-प्राप्ति को लक्ष्य कर, उपोद्घात दृष्टि से, पामर पुरुषों को ऊपर उठाकर प्रथम चरण में विषयी पुरुषों की स्थिति में आरूढ़ कराने-रूप, उनकी कृपा ही है; क्योंकि स्वर्ग की कामना, निषिद्ध कर्मो का सर्वथा त्याग एवं सकाम कर्मों का अधिकाधिक ग्रहण कराने में हेतु होती है। फलस्वरूप, निषिद्ध-कर्म-जन्य मल की निवृत्ति-रूप और पुण्यों की वृद्धि-रूप, अन्तःकरण की निर्मलता होती है।

तदुपरांत 'न्याय और वैशेषिक' द्वारा बुद्धि कुशाग्र होने पर, 'ते तं भुक्त्वा स्वर्गलोकं विशालं, क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशंति', 'तद्यथेह कर्म चितो लोकः क्षीयते। एवमेवामुत्र पुण्य चितो लोकः क्षीयते', 'आ ब्रह्म भुवनाल्लोकाः पुनरावर्तिनोऽर्जुन', 'नास्त्यकृतः कृतेन', 'न कर्मणा न प्रजया न धनेन त्यागेनैक अमृतत्त्व मानशुः', इत्यादि शुभ-विचार उत्पन्न होने से, स्वर्ग की कामना भी त्याग होकर, शुभ-कर्म-जन्य मल की निवृत्ति होकर, निष्काम कर्म में प्रवृत्ति होती है। इससे चित्त में तीव्र वैराग्य अथवा प्रभु के प्रति अति विरहात्मक तीव्र-भक्ति का प्रादुर्भाव होकर, 'योग' द्वारा

Scanned with CamScanner

चित्त वृत्तियों का निरोध, पञ्च-क्लेशों की निवृत्ति आदि लाभ होते हैं। यह, विषयी पुरुष का जिज्ञासु कोटि में पहुँचना-रूप, दूसरा चरण हैं। इसमें गुण-जन्य मल की भी निवृत्ति-रूप तथा जिज्ञासु के अपने साक्षी स्वरूप में स्थिति-रूप, अन्तःकरण की निर्मलता होती है।

अब 'सांख्य' द्वारा आत्मा व अनात्मा का विवेक दृढ़ कर, 'वेदान्त' द्वारा अनात्मा का दृढ़-मिथ्यात्व निश्चय-रूप अत्यन्त अभाव कर, और 'सांख्य' विवेचित आत्माओं की भिन्नता का बाध कर, ब्रह्माभिन्न आत्मा में स्थिति-रूप लाभ को प्राप्त कर, प्राणी कृतकृत्य हो जाता है। यह जिज्ञासु का जीवन्मुक्ति-भूमि में पहुँचना-रूप, अन्तिम चरण है।

इस प्रकार विभिन्न दर्शनों में परस्पर विरोधी भावों का जो आभास प्रतीत होता है, उसका समन्वय भली-भाँति हृदयङ्गम कर लेना चाहिए।

पामर- येन केन-प्रकारेण निरंकुश-वृत्ति से उपार्जन अथवा/और भोग करने वाले पुरुष 'पामर कोटि' के होते हैं।

विषयी- वेद-विधि के अंकुश-युक्त-वृत्ति से उपार्जन अथवा/और भोग भोगने वाले पुरुष 'विषयी कोटि' के होते हैं।

जिज्ञासु- क) येन-केन-प्रकारेण प्रभु की प्राप्ति करने वाले 'कृतोपासक जिज्ञासु' है; जैसे शुक-सनकादि।

ख) भगवत्-प्राप्ति में अबाधक भोगों सहित प्रभु प्राप्ति की ओर चलने वाले 'अकृतोपासक जिज्ञासु' हैं; जैसे राजा जनक, देवी द्रौपदी, भक्तराज नरसी आदि।

श्री विचार चन्द्रोदय शुद्धां धिय समाप्य।
विचार्येति परानन्द तत्त्वज्ञानमवाप्य॥

Scanned with CamScanner

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री पीताम्बरजी कृत

श्री विचार चन्द्रोदय

Scanned with CamScanner

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ पण्डित श्री पीताम्बरजी कृत

श्री विचार चन्द्रोदय

व्याख्याकार

योगी पूर्णनाथ

Scanned with CamScanner